हिन्दी भाषा की शिक्षण-विधि

लेखक

शत्रुघ्न प्रसाद सिन्हा

एम० ए०, एम० एड० (पटना),

ए० डी० ई० (लन्दन), सी० ई० भी० जी० (दिल्ली)

प्रकाशक

दिल्ली पुस्तक सदन

दिल्ली : : पटना

अक्टूबर १६६१]

[मूल्य ६.५० न० पै०

दो शब्द

व्यक्तियों से समाज बनता है, किन्तु समाज व्यक्तियों का समूह नहीं है। व्यक्ति जब एक-दूसरे से सामान्य सम्बन्धों और पारस्परिक व्यवहारो में जुटता है, तभी समाज का निर्माण होता है। भाषा वह एक-मात्र साधन है जिससे व्यक्ति एक-दूसरे से जुट कर समाज की परिधि में बंधते है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि व्यक्ति के जीवन का आधार प्राण-वायु है तो समाज के जीवन का आधार भाषा है।

जिस तरह वायु और जल नैसर्गिक और सहज-प्राप्य वस्तुएँ है, उसी तरह वाणी भी नैसर्गिक और सहज प्राप्य वस्तु हैं। इसीलिए, हम संभवतः वाणी की महत्ता को आकने मे अक्सर असमर्थ रह जाते है। जब तक हम जगे हुए रहते हैं तब तक हम किसी न किसी प्रसंग में कुछ न कुछ बोलते ही रहते हैं और हम में से कुछ तो ऐसे भी होते है जो सोए हुए होने पर भी बर्राते रहते हैं इसलिए शायद वाणी का महत्त्व आकना हमारे लिए कठिन हो जाता है। किन्तु सच तो यह है कि भाषा ही हमारी यथार्थ अभिव्यक्ति का वह सूक्ष्म प्रमाण है जो दूसरों के लिए बुद्धि सवेद्य है। वर्ण, शब्द और वाक्यों में उच्चरित होने वाला व्यक्ति का विचार ही उसकी यथार्थ अभिव्यक्ति है। अत: वर्ण से लेकर वाक्य तक एवं वाक्य से लेकर कला कृति तक-भाषा और साहित्य- के शिक्षण और अध्ययन के बिना व्यक्ति और समाज की यथार्थ अभिव्यक्ति का ज्ञान नहीं हो सकता।

जिस प्रकार समान-धर्मा बूंदों के गतिशील समूह से नदी बनती है, और पुनः नदियों के महामिलन से समुद्र बनता है, सम्भवतः उसी तरह व्यक्तियों से समाज और विभिन्न समाजों से एक बृहत् राष्ट्र का निर्माण होता है। अतः भाषा की महत्ता उत्तरोत्तर विकसित होकर राष्ट्र भाषा में प्रतिष्ठित होती है। यह स्पष्ट है कि जिस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय संबद्धता अथवा अन्तस्समाजीय सम्पर्क राष्ट्रीय एकताके लिए अनिवार्य है, उसी प्रकार राष्ट्र-भाषा का अध्ययन और उसकासम्यक ज्ञान भी राष्ट्र-भावना की समृद्धि के लिये अनिवार्य है।

प्राथमिक विद्यालय से लेकर विश्वविद्यालय तक हमारे ज्ञानार्जन की प्रक्रिया चलती रहती है। किन्तु खेद है कि इस ज्ञानार्जन की प्रक्रिया में यदि

सबसे उपेक्षित कोई विषय है तो वह भाषा का ज्ञान है। इस अपर्याप्त एवं त्रुटिपूर्ण भाषा ज्ञान का दुष्परिणाम यह होता है कि व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के विचार, उच्चार एवं आचार में एकात्म-भाव नहीं आ पाता।

इस अभाव की पूर्ति के लिये "हिन्दी भाषा की शिक्षण विधि" नामक प्रस्तुत पुस्तक में हमारे विद्वान मित्र श्री शत्रुघ्न प्रसाद सिन्हा जी ने हिन्दी भाषा के शिक्षण की विविध समस्याओं का अत्यन्त वैज्ञानिक रीति से विवेचन किया है। वर्णो के लिखित एवं उच्चरित स्वरूप से लेकर साहित्य के विभिन्न स्वरूपों की शिक्षण की प्रक्रिया इस पुस्तक में बतलाई गयी हैं। इसकी शैली अत्यन्त आकर्षक और प्रभावशाली है। उच्चारण-विज्ञान, अर्थ-विज्ञान एवं भाषा-विज्ञान के सिद्धान्तों और मान्यताओं का सुन्दर उपयोग करते हुए विद्वान लेखक ने हिन्दी एवं अहिन्दी भाषा-भाषी, सभी के लिये इस पुस्तक को सहज ग्राह्य बना दिया है। लेखक का यह प्रयास अभिनन्दनीय है।

मेरा विश्वास है कि हिन्दी की शिक्षण, अध्ययन और अध्यापन से संबंध रखने वाली सभी संस्थाओं में यह पुस्तक पूर्ण रूप से समादृत होगी।

अनन्त चतुर्दशी
२३-९-६१
पटना

नवल किशोर गौड़
संयुक्त-शिक्षा-निदेशक,
[सामाजिक], बिहार

"हिन्दी भाषा की शिक्षण-विधि" में हिन्दी शिक्षण के उद्देश्य और शैली पर लेखक के अनुभव एवं चिन्तन की अभिनव छाप मिलती है।

इस विषय के शिक्षण में रुचि रखने वाले शिक्षकों को इस रचना से प्रेरणा मिलने की आशा है। मुझे विश्वास है कि शिक्षा-जगत में लेखक के इस प्रयास का स्वागत होगा।

भगवान प्रसाद
उपशिक्षा निदेशक
(बुनियादी एवं प्राथमिक)
बिहार

पटना
१२ सितम्बर, १९६१

अपनी ओर से:—

'शिक्षा सिद्धात प्रवेशिका' के बाद 'हिन्दी भाषा की शिक्षण-विधि' शिक्षा-जगत् को मेरी दूसरी भट है।

आज हिन्दी हमारे सामने तीन रूपों मे है—राष्ट्र भाषा हिन्दी, राजभाषा या क्षेत्रीय भाषा हिन्दी और शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हिन्दी। अतएव इसे स्पष्ट करने की आवश्यकता नही है कि शिक्षण के क्षेत्र में हिन्दी का अभूतपूर्व स्थान निर्विवाद है। विधान के अंगीकृत होने के बाद आज लगभग ग्यारह वर्ष बीत गये लेकिन जिस गति से उसकी प्रगति अपेक्षित थी वह पूरी नहीं हो पायी है। इनके कई कारणो मे यह भी एक मूल कारण है कि हिन्दी के शिक्षरा की व्यवस्था अभी पूर्ण रूप से ठीक नही हो पायी है और हमे अभी भी बहुत कुछ करना बाकी है।

राष्ट्र की भावनात्मक एकता को सुसंगठित रखने के लिए, राष्ट्रभाषा के सूत्र मे सभी देशवासियों को बांधना प्रत्येक शिक्षाशास्त्री, शिक्षक और शिक्षित नागरिक का मौलिक कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व है। अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी के उचित प्रचार और व्यापक प्रसार के लिए महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम की आवश्यकता है। क्षेत्रीयभाषा के रूप में जिन राज्यों में हिन्दी स्वीकृत है वहाँ सरकारी पत्राचार, विचार-विनियम आदि के लिए हिन्दी को सूक्ष्म, शक्तिशाली और सबल बनाने का कर्त्तव्य भी उन्ही समाज-सेवियों पर है जिसकी कल्पना केवल मात्र समुचित शिक्षण व्यवस्था से ही साकार हो सकती है। जिन क्षेत्रों में हिन्दी मातृभाषा है और प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय का शिक्षा तक के लिए शिक्षा का माध्यम स्वीकृत है वहा तो इसकी सबसे बड़ी महत्ता है। इन क्षेत्रों में हिन्दी सम्पूर्ण शिक्षा पद्धति के अन्तर्गत अन्तर्धारा का काम करती है। और यह किसी प्रकार की अति-शयोक्ति नही कि शिक्षा के सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति हिन्दी की उत्तम शिक्षण व्यवस्था से ही सम्भव है। क्योकि मानव जीवन में भाषा का अभूतपूर्व, अलौकिक, आश्चर्यचनक और महत्त्वपूर्ण स्थान है।

छात्रों की हिन्दी भाषा की उपलब्धि जाँच से सामान्यतया विदित होता है कि हिन्दी-शिक्षण का स्तर आश्चर्यजनक रूप से नीचे की ओर गिर रहा है। और स्थिति मे यदि समय पर सुधार नही लाया गया तो सम्पूर्ण शिक्षा के हा विकृत होने की आशंका है। इस विषम स्थिति से निकलने और उस पर विजय पाने का एकमात्र निदान यही है कि हिन्दी भाषा के शिक्षण की समुचित व्यवस्था की जाय और क्रमशः उसका स्तर भी ऊँचा किया जाय। इसका प्रत्यक्ष दायित्व हमारे प्राथमिक और माध्यमिक और महाविद्यालय के भी शिक्षको पर है जो हमे इसे विषम स्थिति से उबार सकते है। अतएव यह स्पष्ट है कि हमारी प्रशिक्षण संस्थाओ को अग्रदूत का काम करना होगा और उन्हे हिन्दी की उचित और पर्याप्त प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी होगी।

इन्ही उद्देश्यों को दृष्टिगत रखते हुये इस पुस्तक के लिखने का प्रयास किया गया है।

हिन्दी के महत्त्व को समझते हुए पुस्तक में उसके विभिन्न अंगों को शिक्षण प्रविधि के आधुनिकतम सिद्धान्तो, निष्कर्षो और मान्यताओ से परिवेष्टित करने की चेष्टा की गयी है। हिन्दी भाषा के शिक्षण मे मैंने आवश्यक समझा है कि पाठको के सामने बृटिश-शासनकाल से आज तक का एक ऐतिहासिक सिंहावलोकन प्रस्तुत किया जाय जिसमे उन्हें मालूम हो जाय कि हिन्दी किन-किन रास्तों से गुजरी है। इसके लिए एक स्वतंत्र अध्याय देने का लोभ मैं संवरण नही कर सका। इसके साथ ही, पुस्तक के अन्त में हिन्दी शिक्षण की समस्याओं का भी विधिवत विवेचन करके पाठकों के सामने शिक्षण के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों रूपों को प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है इन समस्याओं में प्रमुख समस्या यह है कि किस प्रकार अहिन्दी क्षेत्रों मे हिन्दी प्रिय बनायी जाय जिस पर एक अलग अध्याय में विचार किया गया है। मेरी समझ से किसी भी भाषा-शिक्षक के लिए उस भाषा-शास्त्र के निष्कर्षो और नियमों की एक सबल पूर्वपीठिका आवश्यक है, अतएव प्रारम्भ में हिन्दी भाषा और साहित्य पर विशद रूप से विवेचन सम्मिलित है। भाषा-शास्त्र को प्रायः नीरस और कट विषय कहा जाता है लेकिन मैंने यह ध्यान रखा है कि इसे अधिक से अधिक आकर्षक, सरल तथा अलंकारमय बनाया जाय। इसको मैंने प्रशिक्षण संस्थाओं के अपने विगत ११ वर्षों के अनुभव से भी अलंकृत करके पुस्तक की व्यावहारिक उपयोगिता बढाने की कोशिश की है। आशा है कि शिक्षकों को काफी सहायता मिलेगी।

पुस्तक के लिखने में सबसे अधिक प्रेरणा और सहायता पटना विश्वविद्यालय, शिक्षा-विभाग के प्राध्यापक और पटना ट्रेनिंग कालेज के प्रसार सेवा विभाग के समायोजक और मेरे परम मित्र श्री राजाराम सिंह, एम० ए० (पटना), एम० ० (लंदन) से मिली है, उनके साथ विचार-विमर्श के क्रम में मुझे उनके मौलिक दृष्टिकाण से अनेक सुझाव मिले है। साथ ही, उन्होंने अपने विभाग के पुस्तकालय का स्वच्छन्दतापूर्वक उपयोग करने के लिये हर प्रकार की सुविधा भी दी। मै श्री सिंह का आभारी हूँ। मैं उन सभी लेखको का भी आभारी हूँ जिनकी पुस्तकों या निबन्धो आदि से मैने पर्याप्त लाभ उठाया है और यथास्थान उनका उद्धरण भी दिया है।

मेरे धन्यवाद के सबसे प्रमुख पात्र मेरे साथी श्री नित्यदेव प्रसाद एम० ए०, डिप-इन-एड है जिन्होने इस पुस्तक के लिखने मे मेरी बडी सहायता की। प्रथम तीन अध्यायों को मूर्तरूप देने का सारा श्रेय श्री प्रसाद को ही है।

पटना ट्रेनिग कालेज के प्राध्यापक श्री बैजनाथ राय और पटना ट्रेनिग स्कूल के सहायक शिक्षक श्री अगद प्रसाद भी हमारे धन्यवाद के पात्र है जिन्होने इस पुस्तक के अनेक उलझनपूर्ण स्थलों पर अपने व्यावहारिक अनुभवो से मुझे लाभान्वित किया है।

इस पुस्तक की भूमिका लिखने का जो कष्ट पूज्य श्री नवल किशोर गौड़, संयुक्त शिक्षा निदेशक (सामाजिक), बिहार ने किया है उनका आभार प्रदर्शन या धन्यवाद ज्ञापन मेरे जैसे अल्पज्ञ के लिये धृष्ठता ही होगी। उनके लिए जो भाव हैं उन्हें मै व्यक्त नही कर सकता। केवल तना ही कह सकता हूँ कि मेरे लिए यह सौभाग्य की बात है कि उन्होंने अपने व्यस्त जीवन मे भी इस पुस्तक को आद्योपात पढ़ कर अपने भावों को मूर्तरूप देने का कष्ट किया है। विश्वास है कि उनका आशीर्वाद मुझे सदा ही प्रेरणा देता रहेगा।

अन्त में मै श्री कमलेश्वर दयाल सिन्हा को धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता जिनका यदि सहयोग नही होता तो यह पुस्तक शायद समय पर न लिखी जाती और न समय पर प्रकाशित ही होती।

इस पुस्तक से यदि प्रशिक्षण संस्थाओं के शिक्षकों और छात्रों का कुछ भी लाभ हुआ तो मैं अपना परिश्रम सार्थक समझूँगा। पुस्तक में यथास्थान

जो त्रुटियाँ रह गयी है उनके लिए मै क्षमा प्रार्थी हूँ और आशा करता हूँ कि अगले संस्करण मे उनका परिष्कार हो जायगा । साथ ही, उन सभी अनुभवी शिक्षकों के सुझावो का स्वागत होगा जो मेरे पास भेजे जायेगे और अगले संस्करण मे उनको भी यथोचित स्थान देने की चेष्टा की जायगी ।

गाधी-जयन्ती
२ अक्टूबर, १९६१
पटना

शत्रुघ्न प्रसाद सिन्हा

विषय-सूच

अध्याय १

भाषा का महत्व

भाषा एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने विचारों का आदान-प्रदान करता है। यदि भाषा न होती तो हमारा व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन दुरूह बन जाता और ज्ञान-विज्ञान का उत्तरोत्तर उत्कर्ष नही होता। न हम अपने मनोगत भावों को सरलता, स्पष्टता और सुगमता से दूसरो तक पहुँचा पाते और न दूसरे ही ऐसा कर पाते। भाषा न रहने पर हमारा जीवन कितना अव्यवस्थित रहता इसकी कल्पना शायद हम नही कर सकते। सभवत: हमारे सभी कार्य रुक जाते और भाव-प्रकाशन केवल इंगित और इशारो के द्वारा अस्पष्ट और अपूर्ण होता। मनुष्य न अपनी आवश्यकताएँ प्रगट कर पाता और न दूसरों की सहायता ही कर सकता। परिणाम यह होता कि मानव अपनी आदिम अवस्था मे ही रहता और शायद मानसिक गत्यावरोध के कारण पशुओं जैसा ही व्यवहार करता। तब शायद मनुष्य इस विकसित अवस्था में न पहुँच पाता कि वह चन्द्रलोक तक आने-जाने का प्रयत्न करे और आकाश के अनगिनत रहस्यो का पता लगा सके। यह भाषा की ही देन है कि हम अपने कार्य सम्पादन हेतु दूसरो से परामर्श लेते हैं और ज्ञान की पुस्तकों का अध्ययन कर स्वयं अपना मार्ग निर्माण कर सकते हैं। विश्व की सभी भाषाओं मे भाषा की महिमा सर्वदा ही गायी गयी है। लिपि और भाषा की दृष्टि से चाहे जो भी विभेद आये, लेकिन वास्तव में उनका मन्तव्य, लक्ष्य और उद्देश्य एक ही है।

यदि हम इन विभिन्न मतों का वैज्ञानिक विश्लेषण करें तो भाषा के महत्व सम्बन्धी निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं।

(क) भाषा हमारे भाव प्रकाशन का सरलतम साधन है।

(ख) भाषा के द्वारा विचारों का आदान प्रदान होता है।

(ग) भाषा साहित्य का जननी है। साहित्य का सृजन कर्त्ता और पोषक तथा संस्कृति की प्रेरणा है।

(घ) भाषा ज्ञानार्जन का एक विशिष्ट साधन है।
(ङ) भाषा मानसिक शान्ति और अलौकिक आनन्द का स्रोत है।
(च) भाषा राष्ट्रीय भावना का प्रतीत है।

(क) भाषा भाव-प्रकाशन का सरलतम साधन है—विश्व के सभी जीवधारियों के लिये भाव प्रकाशन एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, एक नैसर्गिक पुकार है। यही प्रकाशन कई रूप ग्रहण करता है। यही भेद जीवधारी की आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए विचारणीय है।

पशु-पक्षी की प्रारम्भिक या एकमात्र आवश्यकता उसकी भूख शान्ति, शरीर रक्षा तथा जाति रक्षा से सम्बन्धित है। यह किसी प्रकार से भी देखने से उसकी शारीरिक आवश्यकताओ की कोटि में आता है। अतएव इनका भाव-प्रकाशन केवल इन्ही आवश्यकताओ की पूर्ति की सीमा से नियन्त्रित रहता है। इन आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिये जानवर भी अपने भाव प्रकाशित करते हैं जिसका एकमात्र माध्यम उनकी 'पुकार' है। हाथी का चिग्घारना, घोड़ों का हिनहिनाना, गायों की डकार, पक्षी का कलरव उनके भाव-प्रकाशन के ही विभिन्न माध्यम हैं। इस नैसर्गिक-प्रक्रिया के और सामाजिक वातावरण के अनुमार पशु जिस माध्यम का प्रयोग करते हैं उन्हें हम साहचर्य और पर्यवेक्षण से पहचान लेते हैं। इसके अभाव में उनकी बोली पकड़ना भी असभव है।

मनुष्य का स्थान सभी जीवधारियों में सर्वोच्च है। उमका विचार, कल्पना और तर्क की शक्ति ही उसकी एकमात्र विशेषता है जिसके बल पर वह इस स्थान पर प्रतिष्ठित है। मनुष्य के भाव-प्रकाशन की प्रेरणा उसकी शारीरिक आवश्यकताओं के साथ ही मानसिक मांगों (demands) से भी मिलती है। उसके भाव-प्रकाशन न केवल भूख की शान्ति, प्राण रक्षा या जाति रक्षा से सम्बन्धित है वरन् उसके मस्तिष्क के विचार, तर्क, चिन्तन, दिल की उमंग, उमश तथा उसाँस से भी पूर्णतया उत्प्रेरित होते हैं। इन भावों के प्रकाशन के निमित्त उसे एक माध्यम की आवश्यकता प्रतीत होती है। उसे उसका सहारा लेना पड़ता है। 'वाणी' ही इमका एकमात्र सहारा और आवश्यकताओं का एकमात्र पूरक है। वाणी के अभाव में उसका प्रकाशन संभव नहीं।

गूंगों को वाणी का जो अभिशाप मिलता है उसके कारण उनके मनोगत तथा प्रारम्भिक आवश्यकता की पूर्त्ति केवल मात्र इशारा द्वारा होता है।

संकेत का सहारा वाणी की अपूर्णता का द्योतक है तथा वह पूर्ण रूप से स्पष्ट और सार्थक नही हो सकता है । कभी सार्थक और निरर्थक भी हो सकता है । गूँगों में भाव-प्रकाशन की विवशता इतनी तीव्र होती है कि यदि उन्हें व्यक्त करने का अवसर तथा उचित माध्यम नहीं मिला तो उन्हें मानसिक असंतुलन का शिकार होना पड़ता है । मनोवैज्ञानिकों ने इस स्थिति का सम्यक् अध्ययन करके यह बताया है कि ऐसे मनुष्यों को अभिव्यक्ति के लिये उद्योग का या अन्य स्थूल क्रियाशीलनो का ही सहारा लेना चाहिये । शिक्षाविदों ने इस श्रेणी के बच्चों के लिये विशेष शिक्षा (special education) का प्रबन्ध किया है ।

अतएव यह स्पष्ट है कि चाहे पशु या मनुष्य या कोई जीवधारी भी भाव-प्रकाशन की आवश्यकता अनुभव करता है। और सभी सुविधानुसार उपलब्ध साधनों का उपयोग करते है । गूँगों के भाव-प्रकाशन की कठिनाइयाँ हम भली-भाँति समझ सकते है । वाणी इसका सर्वश्रेष्ठ साधन है । इस प्रकार भाषा और विचार का सम्बन्ध अविच्छिन्न है । मन में विचार तथा मनोवेगो का उद्‌भव होता है । हम मानसिक तर्क करते हैं । जब हम अपने विचार स्थिर कर लेते हैं तो पास बैठे व्यक्ति के सम्मुख अपने विचार रखते है । यदि वह हमारे विचारों से सहमत नही होता तो फिर उससे तर्क करते है । यदि विचारों का प्रकाशन न हो तो कालक्रम मे सोचने की, अनुभव करने की तथा कार्य करने की शक्ति कुंठित हो जाती है और मनुष्य का मानसिक विकास रुक जाता है । इन सारे क्रिया-कलापो के संचालन की मूल शक्ति और मूल माध्यम भाषा ही है ।

इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि भाव-प्रकाशन सभी जीवधारियों के लिये एक नैसर्गिक आवश्यकता है । मानव के विशिष्ट स्थान के कारण यही उनका एकमात्र कलेवर है । अतएव भाषा की सबसे बड़ी महत्ता यही है कि वह मानव की सबसे बड़ी समस्या, पुकार, तथा आवश्यकता की पूर्त्ति करती है ।

इस प्रकार यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि "भावाभिव्यक्ति के लिए भाषा के अतिरिक्त अन्यान्य साधन अपूर्ण, अनिश्चित, भ्रामक, संशयोत्पादक तथा असमर्थ रहते हैं। जीवन की सम्पूर्ण प्रवृत्तियों अथवा विचारों का स्पष्टीकरण अन्य साधनों द्वारा नहीं हो सकता ।"*

* अभिनव भाषा विज्ञान, आचार्य नरेन्द्रनाथ, पृ० १६

(ख) भाषा के द्वारा ही विचारों का आदान-प्रदान संभव है—भाषा का दूसरी प्रमुख महत्ता इस बात से है कि इसके द्वारा मनुष्य का सामाजिक जीवन सुन्दर, स्वस्थ तथा सुगम बन पाता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह केवल अपने में ही सीमित नही रह सकता है। वह दूसरों के सम्पर्क मे आता है और उसी प्रकार दूसरे भी उसके सम्पर्क मे आते है। वर्तमान सभ्यता ने तो देश और राष्ट्र की भौगोलिक सीमाओं को बहुत दूर तक मिटा दिया है। उनका पारस्परिक सम्बन्ध और सामीप्य इतना स्पष्ट हो गया है कि एक राष्ट्र के सदस्य दूसरे राष्ट्र के सदस्य से खुलकर मिलते है और अपने आचार-विचार से एक दूसरो को बहुत अशो तक प्रभावित भी करते है। यह सम्पर्क, सम्बन्ध तथा सामीप्य भाषा के माध्यम से ही स्थापित हो रहा है। सभी सभ्य देशों में अन्य देशों की भाषा के अध्ययन पर विशेष बल देना यह प्रमाणित करता है कि विचारो के आदान-प्रदान की कड़ी और भी स्थायी और सुदृढ बनायी जा रहा है।

भाव प्रकाशन का स्पष्ट माध्यम भाषा है यह ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है। हम अपने विचार दूसरो तक पहुँचाते है, इसी प्रकार दूसरे भी इसी माध्यम के द्वारा अपने मनोभव हम तक लाते है। इस प्रकार, समाज मे विचारों का आदान-प्रदान निरन्तर होता रहता है और मनुष्य अपने वैयक्तिक तथा सामाजिक प्रश्नों का हल भी इसी प्रकार निकाल लेना है। यदि आदान-प्रदान न हो तो मानसिक गत्यावरोध की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जो उसकी विवशताओं का द्योतक है। भावो के आदान-प्रदान में ही ज्ञान-विज्ञान की इतनी वृद्धि संभव हो सकी है और आदिम युग का मनुष्य सभ्यता की वर्त्तमान उच्च कोटि पर पहुँच सका है। जिन जातियों की भाषा उन्नत नहीं है उनका विचार विनिमय का क्षेत्र बहुत सीमित और कुंठित पाया गया है। विचारों का विस्तृत क्षेत्र, व्यापकता तथा स्थायित्व भाषा की ही देन है। अतएव भाषा की महत्ता मनुष्य के सामाजिक जीवन से सम्बद्ध है। मनुष्य और मनुष्य के बीच की कड़ी भाषा ही है जिसकी ओर हमारा स्पष्ट ध्यान जाना चाहिये।

भाषा केवल व्यक्ति के लिये ही नही, वरन् राष्ट्रों और जातियों के लिए भी आपसी विचार के आदान-प्रदान का एक प्रमुख भावशाली साधन है। आज अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों को हल करने के लिए देशों के आपसी मतभेद, तनाव तथा विरोध की भावनाओं को दूर करने के लिए बहुत-सी संस्थाएँ विचारों

के आदान-प्रदान का कार्य कर रही है। राजनैतिक, व्यापार-सम्बन्धी, सीमा-सम्बन्धी तथा अनेक प्रकार के वाद विवादों को मिटाने के लिए भाषा का सर्वत्र सहारा लिया जा रहा है। सद्भावना मंडल, शिष्ट मंडल, व्यापार मडल, सांस्कृतिक मडल तथा अनेक ऐसे दल दूसरे देशों मे भेजे जाते है जो केवल वार्त्तालाप, विचार-विनिमय के द्वारा ही अनेक कड़वे प्रश्नों को आसानी से हल कर रहे है। जहाँ यह भी सत्य है कि भाषा के अनेक तरह की तनाव की स्थिति उत्पन्न होती है, वहाँ यह भी अक्षरशः सत्य है कि भाषा के माध्यम से ही तनाव की स्थिति रफू भी हो जाती है। इस प्रकार भाषा के महत्व का क्षेत्र व्यापक तथा विशद है।

जहाँ भाषा-सम्बन्धी कठिनाइयाँ है वहाँ एक दूसरे की भाषा को सीखने का प्रयत्न किया जा रहा है। भाषा के माध्यम से ही उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, रीति-रिवाज, संस्कृति के मूल तत्त्वो का अध्ययन करके उनसे स्थायी सम्बन्ध स्थापित किया जा रहा है। अनेक देशो ने अपने विश्वविद्यालयों मे दूसरे देशो की भाषाओं के अध्ययन के लिए पूर्ण व्यवस्था भी कर दी है।

अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर जहाँ एक-दूसरे की भाषा समझने की व्यावहारिक कठिनाइयाँ है वहाँ दुभाषियों (interpreters) का माध्यम अपना कर भावों का आदान-प्रदान हो रहा है। आज के वैज्ञानिक युग ने तो दुभाषी-यंत्रों का भी आविष्कार कर दिया है जो अपने यन्त्रों के सहारे वक्ता के भाषण का अनुवाद इच्छित कई अन्य भाषाओं मे भी कर देती है।

इस प्रकार भाषा का महत्त्व इतना विस्तृत, व्यापक और विशाल है कि वह न केवल एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के सम्पर्क मे लाती है, वरन् समुदाय-समुदाय को, जाति-जाति को, राष्ट्र-राष्ट्र को तथा इस प्रकार सम्पूर्ण मानव को अपने विचारों के आदान-प्रदान के योग्य बनाती है। अतएव भाषा सम्पूर्ण मानव-जाति के जीवन को एक बहुत बड़ी नैसर्गिक आवश्यकता पूरी करती है। भाषा मानव-समाज की रचना और संरक्षण का एक मात्र साधन है।

(ग) भाषा साहित्य की जननी, संस्कृति का पोषक तथा सभ्यता की प्रेरणा है–भाषा का पूर्वरूप बोली है, तथा उसका उत्तरोत्तर रूप साहित्य है। साहित्य का निर्माण कुछ एकाएक नहीं हो गया होगा। विश्व की सभी

जातियों की भाषा का व्यापक अध्ययन यह पुष्ट करता है कि बोली मे ही जन श्रुतियो के आधार पर आख्यायिकाओ का सग्रह हुआ होगा और लोक-गीतो के आधार पर कविता की सृष्टि का प्रयत्न किया गया होगा । प्रारम्भ में साहित्य बेडौल रूप मे रहा होगा और निरन्तर छाँट-तराश के बाद आज उसका रूप इतना हृदयग्राही और मनोरंजक हो सका है । साहित्य तत्कालीन समाज का एक स्पष्ट प्रतिबिम्ब है । इस प्रकार भाषा साहित्य की जननी है भाषा के क्रमिक विकास से साहित्य मे भी क्रमिक विकास पाया जाता है ।

जब मनुष्य की भाषा लिपि बद्ध होती है तो वह विभिन्न वर्गों मे विभाजित होती है । उसकी कल्पना, तथा रागात्मक, संवेगात्मक एव रचनात्मक, भावनाओं और चिन्तन, तर्क आदि का संकलन काव्य, गद्य, अभिनय, आख्यायि-काओं, निबन्ध, उपन्यास, कहानी आदि की सज्ञा पाता है । यही साहित्य के आभूपण है जो भाषा के विकसित रूप का विविध दर्शन कराते हैं । जिस देश या जाति की भाषा विकसित नहीं रहती उनका साहित्य भी प्रौढ नही रहता, उनके व्यक्त भाव सीमित क्षेत्र में ही रहते है । इसके विपरीत विशाल साहित्य, प्रौढ़ी भाषा का ही प्रतिरूप है । "साहित्य समाज का साधन है वह उसके उत्थान-पतन का साधन है, साहित्य के उन्नत होने से उन्नत और उसके पतन से समाज पतित होता है । साहित्य वह आलोक है जो देश को अन्धकार रहित, जाति-मुख को उज्ज्वल और समाज के प्रभाहीन नेत्रों को सप्रभ रखता है । वह सबल जाति का बल, निर्जीव जाति का जीवन, उत्साहहीन जाति का उत्साह, पराक्रमी जाति का पराक्रम, अध्यवसायशील जाति का अध्यवसाय, साहसी जाति का साहस और कर्त्तव्य-परायण जाति का कर्त्तव्य है।*

साहित्य देश की सांस्कृतिक अनुभूतियों, आदर्शों, तथा आकाक्षाओं का संक्षिप्त रूप है। किसी राष्ट्र की संस्कृति का पता लगाना हो तो उनके साहित्य का अध्ययन परमावश्यक है । भारत में वेद, उपनिषद्, त्रिपिटक, गीता, महाभारत, रामायण आदि हमारे साहित्य की ऐसी कृतियाँ हैं जिनमें हमारी संस्कृति सुरक्षित है । सभी जातियों के इतिहास में संस्कृति के निर्माण में भाषा का अभूतपूर्व स्थान सभी को विदित है । बाइबल,कुरान, ओडेसी जिन्दाविस्ता आदि प्रसिद्ध ग्रन्थ इसके ज्वलन्त प्रमाण है जिनमें ईसाई संस्कृति,

* हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, हरिऔध, पृ० ८१

इस्लामी संस्कृति, पारसी संस्कृति आदि की स्पष्ट झलक मिलती है। अतएव भाषा, साहित्य एवं संस्कृति के ही स्पष्ट और स्थायी आधार पर देश जीवित रह सकता है। जिन जातियों में आज भाषा का विकास नही हो पाया है, स्वाभाविक रूप से उनका साहित्य भी विकसित नही है तथा सस्कृति भी अपने प्रारम्भिक काल जैसा ही है। इसके विपरीत, जिन देशों की भाषा की उन्नति होती गयी है, उनका साहित्य और सभ्यता एव उनकी संस्कात भी विकसित होती गयी। आज भाषा के स्पष्ट और अस्पष्ट रूप के कारण ही विश्व मे क्रमशः प्रगतिशील, उन्नत तथा पिछड़ी जातियों का अलग-अलग रूप देखने को मिलता है।

भाषा से जिस साहित्य का निर्माण होता है वह न केवल उस जाति की रागात्मक या संवेगात्मक आदि अनुभूतियों का ही संकलन करती है वरन् उसका वास्तविक रूप तब निखरता है जब उसमे जाति के रहन-सहन की शैली, खान-पान के ढंग, तौर-तरीके, बोल-चाल का स्तर और उसकी प्राजलता, भौतिक समृद्धि और आध्यात्मिक आनन्द तथा अनेक अव्यक्त भावनाओं और अवस्थाओ का चित्र अकित रहता है। निस्सन्देह साहित्य के माध्यम से भाषा उस जाति की विशेषताओं का प्रतिबिम्ब तथा प्रतिछाया प्रस्तुत करती है; वह उसकी सभ्यता और सस्कृति का प्राजल रूप है। साहित्य मे हमारी संस्कृति को स्थायी रूप देकर भाषा उसे सुरक्षित रखती है। "प्रत्येक समय के साहित्य में उस काल के परिवर्त्तनों और सस्कारो का चिन्ह मौजूद रहता है। इसलिए जैसे-जैसे समय की गति बदलती रहती है, साहित्य भी उसी प्रकार विकसित और परिवर्तित होता रहता है।"*

अतएव भाषा का महत्व इसी बात में है कि वह संस्कृति का पोषक और सभ्यता का द्योतक है। भाषा के द्वारा साहित्य का सृजन होता है और इस प्रकार देश की संस्कृति का स्रोत अजस्र प्रवाहित रहता है।

(घ) भाषा ज्ञानार्जन का एक विशेष साधन है—मनुष्य मे ज्ञान की खोज एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। वह ज्ञान देखकर, सुनकर तथा चिन्तन कर के प्राप्त करता है। इन सभी क्रियाशीलनो मे भाषा का कितना महत्व है यह संभवतः अब स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। भाषा साहित्य का सृजन करती है, उसके विकास से ही साहित्य का क्रमिक निर्माण और विकास होता है। साहित्य बड़ा ही व्यापक शब्द है। इसके अन्तर्गत ज्ञान-विज्ञान की सारी

---

* हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, हरिऔध पृ० ८०

परिधियाँ आ जाती हैं। इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, धर्मशास्त्र, विज्ञान, गणित, ज्योतिषशास्त्र इत्यादि सभी अंगों का निर्माण भाषा के ही माध्यम से हुआ है। प्राचीन काल से आती हुई विभिन्न परम्पराओं का नित नवीन निरूपण हो रहा है। भाषा के ही माध्यम से मनुष्य ने अपने ज्ञान पुंज को प्राकृतिक विज्ञान (natural sciences) तथा समाज विज्ञान–(social sciences) दो खण्डों मे विभक्त किया है। यह भाषा की ही देन है जिसके कारण आज हम अपने ज्ञानकोष को नित्य नये-नये वर्गों मे वर्गीकृत करते है। इन ज्ञान खण्डों का भाषा कितना स्थायी, स्पष्ट तथा स्वस्थ आधार है यह हमे मालूम है। हमें इन दोनो स्थितियों की स्पष्ट कल्पना और अभूतपूर्व अनुभव कर लेना चाहिये कि भाषा के अभाव मे ज्ञान का क्या स्थान रहता। तथा भाषा के विद्यमान होने पर हम किस स्तर पर आ गये हैं। हमारा साहित्य कहाँ जाता! हमारा विज्ञान कहाँ रहता!

विज्ञान का क्षेत्र रोमांचकारी रहस्यों से भरा पडा है वह भाषा की ही देन है जो व्यक्ति को चिन्तन के लिए प्रेरित कर सकी और विचारों को लिपिबद्ध करने की कला दे सकी। अभी हाल ही मे सोवियत रूस के यूरी गैगरिन नामक व्यक्ति ने अन्तरिक्ष तक पहुँचने मे काफी सफलता प्राप्त कर विश्व को आश्चर्यचकित कर दिया है। अन्तरिक्ष की यात्रा कुछ एक दिन या अचानक की घटना नही है। यह भी एक भाव प्रकाशन है जिसकी क्रमिक योजना रूसी वैज्ञानिकों के द्वारा पहले से ही तैयार हो रही थी जिसका एकमात्र आधार और माध्यम भाषा ही थी। वायुमण्डल, सौर-जगत् और नक्षत्रलोक की बहुत सी अनदेखी वस्तुओं का ज्ञान, विज्ञान की पुस्तकों से ही प्राप्त हो सका था। पृथ्वी के निर्माण से लेकर आज तक के इतिहास का ज्ञान भी हमें पुस्तकों के द्वारा ही आसानी से उपलब्ध हो जाता है। अतः यह स्वयं सिद्ध है कि पुस्तकें ज्ञानार्जन का एक प्रधान साधन हैं। परन्तु पुस्तकों का निर्माण तब तक संभव नहीं था जब तक हमें विचारों को पंक्तिबद्ध करने के लिए कोई-भाषा नहीं मिलती। बडे-बड़े धर्म प्रवर्त्तको तथा नीतिज्ञों ने जो ज्ञान के दिव्य संदेश दिये थे वे भी भाषा के ही द्वारा जनता के हृदय तक आज पहुँच पाये। यदि भाषा न होती तो महात्मा बुद्ध, महावीर, ईशामसीह, पैगम्बर हजरत के हृदय में उठने वाले क्रान्तिकारी विचार भीतर ही भीतर सिमट कर रह जाते और विश्व उनके बहुमूल्य उपदेशों से सर्वथा वंचित रह जाता। तब शायद कृष्ण की गीता या हजरत की कुरान शरीफ या कोई भी पुस्तक हम देख नहीं पाते।

अतएव भाषा एक ऐसा आवश्यक साधन है, एक महत्वपूर्ण माध्यम है जिसके द्वारा ज्ञान देने वाले महापुरुष और ज्ञान अर्जन करने वाला शिक्षार्थी भी समान रूप से लाभान्वित होते है। इन दोनो को मिलानेवाली कड़ी भाषा ही है वरन् मनुष्य-मनुष्य का पारस्परिक अवलम्बन तथा ज्ञान पिपासा और ज्ञान प्राप्ति शायद कल्पना मे भी नही समा सकती।

(च) भाषा मानसिक शान्ति तथा आनन्द का स्रोत है--मानव जीवन की सफलता इसी मे है कि वह पूर्णता प्राप्त करने का प्रयत्न करे। यह पूर्णता ब्रह्मानद का ही दूसरा नाम है। यह सत्य है कि पूर्ण सफलता विरले ही महापुरुषो को मिल पाती है। हम जीवन के चाहे जिस क्षेत्र मे जाएँ कुछ न कुछ उत्तरदायित्व ग्रहण करना ही पड़ेगा। और हमें स्वयं आगे बढ़ना पड़ेगा। इसी प्रकार व्यक्तित्व का विकास होता है। पग-पग पर हमारे सम्मुख विरोधी परिस्थितियाँ आ खड़ी होगी। इनके आगे हथियार डाल देना जीवन की सबसे बड़ी हार होगी। ऐसी दशा में मनुष्य के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि अपने मे योग्यता पूर्वक भाव-ग्रहण तथा भाव-प्रकाशन की क्षमता पैदा कर सके। यदि यह शक्ति वह उत्पन्न नही कर सकता तो उसे मानसिक शान्ति नही मिल सकती और वह बराबर मँझधार मे ही फँसा रहेगा। भाव-ग्रहण तथा भाव-प्रकाशन मे भाषा का महत्वपूर्ण स्थान निर्दिष्ट किया जा चुका है।

लेकिन भाषा का महत्व यही तक सीमित नही है वह जीवन की एक बड़ी प्रेरणा का माध्यम है। मानव साहित्य के अध्ययन से उस प्रेरणा को प्राप्त करता है। साहित्य के अध्ययन से उस प्रेरणा ही नही मिलती वरन् उसे अपने मानसिक स्तर को उसे कोटि तक पहुँचाने मे सफलता मिलती है जहाँ जीवन की कठिनाइयाँ, मुसीबतें, विवशताएँ तथा कटु-मधु आदि के बीच में भी एक अभूतपूर्व आनन्द अनुभव होता है। साहित्य की कृतियाँ इस आनन्द का स्रोत है। मनुष्य के जीवन का रागात्मक पक्ष भी साहित्य में दिग्दर्शित होता है। काव्य का अध्ययन इन रागात्मक संवेगो का आदर्श रूप प्रस्तुत करता है। कहा भी गया है कि साहित्य ब्रह्मानन्द का स्वरूप है। अतः इस ब्रह्मानन्द की प्राप्ति का एकमात्र साधन भाषा ही है। जो व्यक्ति भाषा से विहीन है वह इस आनन्द का अनुभव नही कर पाता। जो व्यक्ति भाषा का ज्ञान रखता है वह सतत प्रयास से इस ब्रह्मानन्द की प्राप्ति का क्षमता पैदा कर सकता है।

अतएव स्पष्ट है कि भाषा का अध्ययन कितना बहुमूल्य और महत्वपूर्ण है। यह जीवन का एक आवश्यक अंग है। भापा का अध्ययन आनन्द दायक है। मनुष्य जीवन के प्रारम्भ से अन्त तक के सभी क्षेत्रों, सभी क्रियाकलापों तथा सभी परिस्थितियों मे भापा, भूख तथा प्यास से भी आवश्यक प्रतीत होती है। यह कहना अत्युक्ति नही होगी कि भूख और प्यास की शान्ति का माध्यम भी हमारी भापा ही है। भापा न केवल इन आवश्यकताओं की ही पूर्ति करती है वह हमारे मनोवेगो, रागात्मक संवेगों तथा हृदय की उमग को उद्वेलित करने का एक माध्यम है। भाषा ही ब्रह्मानन्द की प्राप्ति का सहायक संबल है जिसकी महिमा विश्व के सभी साहित्यों मे गायी गयी है।

(च) भाषा राष्ट्रीय भावना का प्रतीक है—भापा का महत्व केवल इस बात पर अवलम्बित नही है कि वह व्यक्ति को अपने भावों को दूसरो तक व्यक्त कर पहुँचाने का एक सुलभ साधन सदैव प्रस्तुत करती है या उन्हें ज्ञानार्जन के एक विशेष माध्यम से लैश करती है, या उन्हें ब्रह्मानन्द की प्राप्ति की एक विशेष प्रणाली से परिचित करती है—वरन् वह उन्हें एक ऐसे सूत्र में बाँधने का भी महत्वपूर्ण कार्य करती है जिसे हम राष्ट्रीयता की संज्ञा दे सकते हैं।

विश्व में सभी जातियों की अपनी भापा होती है, उसका रूप चाहे कितना भी विकसित या अविकसित क्यों न हो। उस भाषा में जातिगत विशेषताओं और प्राकृतिक वातावरण एव मानव के विभिन्न क्रियाशीलनों का विशद् वर्णन मिलता है। वह जातिगत अनुभूतियों, विश्व की जातीय व्याख्याओं, विश्वासों और धारणाओं का प्रतिविम्ब प्रस्तुत करती है। जब भाषा जाति की संस्कृति और सभ्यता का पोषक है तब निस्सन्देह वह एक जातीय चरित्र (racial character) का निर्माण करती है। यही जातीय क्षेत्र राष्ट्रीय-सीमा से मिल जाती है तो एक राष्ट्रीय-चरित्र का निर्माण होता है। भापा का जितना व्यापक प्रभाव मानव के चरित्र पर पड़ता है उतना अन्य किसी साधन का नहीं। निकोलस हंस ने भी अपनी पुस्तक Comparative Education के ४० वें पन्ने में लिखा है कि "एक राष्ट्रीय-चरित्र के निर्माण में किसी अन्य प्रभावों की अपेक्षा भाषा का प्रभाव अधिक महत्वपूर्ण है।" भाषा का यही सर्वव्यापक महत्व है।

जब किसी राष्ट्र की मातृभाषा और राष्ट्र भाषा एक ही रहती है तो भाषा और भी महत्वपूर्ण, गौरवपूर्ण तथा ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित होती है। एक-भाषी (Unilingual) देशो में एक समष्टिगत संस्कृति (Composite Culture) का निर्माण होता है और उनके नागरिको में राष्ट्रीय ऐक्य की एक भावना (sense of national solidarity) उन्हें सदा उद्वेलित करती है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की एक भाषा है जो उसके राष्ट्रीय ऐक्य का परिचायक है।

लेकिन द्विभाषी (bi-lingual) राष्ट्रों में भाषा सम्बन्धी प्रश्न विभिन्न रूपों मे खडे होते है। बेल्जियम इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है जहाँ दक्षिण खण्ड में फ्रेंच तथा उत्तर खण्ड में जर्मन भाषा का उपयोग वहाँ की बहुत-सी समस्याओं को जन्म देती है। वहाँ के राजनैतिक जीवन का उतार-चढ़ाव भाषा के महत्व को हमारे सामने सच्चे अर्थ में प्रस्तुत करता है।

बहु-भाषी (Multilingual) देशों में मातृभाषा और राष्ट्रभाषा का सम्मिलित प्रश्न वहाँ के राजनैतिक शासकों और नेताओं का प्रत्यक्ष सरदर्द रहता है। भारतवर्ष इसका ज्वलन्त उदाहरण है जहाँ सविधान के अनुसार १४ क्षेत्रीय भाषाएँ स्वीकृत हैं तथा अनेक अन्य भाषाएँ भी है जो भाषा-सम्बन्धी समस्याओं को उत्पन्न करने के पर्याप्त कारण है। भारत के भाषा-सम्बन्धी, सर्वेक्षण के अनुसार इस देश में १७९ भाषाएँ तथा ५४४ बोलियाँ है। राजनैतिक खिचों को उत्पन्न करने, राष्ट्रीय ऐक्य की भावना को तिरस्कृत करने तथा राष्ट्र-विरोधी अनेक भावनाओं को व्यक्त करने की आये दिन, घटनाएँ सुनने को मिलती है। मातृभाषा और राष्ट्रभाषा के प्रश्न को उचित ढंग से सुलझा सकने के कारण ही भारतीय राष्ट्र की समुदायिकता दृढ रह सकती है। पाकिस्तान मे भाषा सम्बन्धी खड़े किये गये विवाद या हाल ही में आसाम की राजभाषा के प्रश्न को ध्वंसात्मक तरीके से हल करने के अनेक सुझाव यह प्रमाणित करते हैं कि राष्ट्र के जीवन में भाषा का कितना गौरवपूर्ण पद प्रतिष्ठित है तथा उसे कितना महत्व प्राप्त है। राष्ट्रभाषा के उचित प्रभाव से जिस देश का राष्ट्रीय भाव सुसंगठित, स्वस्थ, सुन्दर तथा सुव्यवस्थित है वास्तव में भाषा का सर्वव्यापक महत्व यही है।

अतएव भाषा सम्बन्धी अनेक अन्य महत्वों का सम्यक् विवेचन यहाँ प्रस्तुत न करके भी हम इतना कह सकते है कि व्यक्ति के जीवन में, राष्ट्र के जीवन मे तथा इस प्रकार सम्पूर्ण मानव जाति के जीवन में भाषा का स्थान, निर्विवाद ही, अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा गौरवपूर्ण है। भाषा का महत्व शब्दो मे सीमाबद्ध नही किया जा सकता। वह केवल कल्पना, विचार तथा तर्क और चिन्तनकी अनुभूत वस्तु है।

अध्याय २

हिन्दी शिक्षण के उद्देश्य

हिन्दी का जो विकसित रूप आज हम देखते है वह गत ५० वर्षो के प्रयत्न और सक्रिय आन्दोलन का परिणाम है। स्वतत्रता प्राप्ति के हेतु अखिल भारतीय काग्रेस ने एक लम्बी अवधि तक शान्तिपूर्ण आन्दोलन चलाया। उसी सिलसिले मे कांग्रेस के कुछ बडे नेताओं ने यह सोचा कि यदि हमारे देश का साहित्य नहीं पनपता तो हम मानसिक गुलामी से कभी भी छुटकारा न पा सकेगे। अग्रेजी भाषा तो सारे देश पर छा गयी थी और सरकारी कार्यालयों मे इसी का व्यवहार होता था। स्कूलो एव विश्वविद्यालयो मे अग्रेजी ही शिक्षा का माध्यम (medium of instruction) थी। अंग्रेजी का प्रभाव हमारे जीवन के विभिन्न अगों पर इतना गहरा हुआ कि हम इसे जान भी न सके। हमारे खान-पान, हमारे पहनावे, हमारे तौर तरीके सभी अंग्रेजों की सभ्यता में ढल गए और इस तरह अनजाने ही हम अपनी प्राचीन सस्कृति और सभ्यता से दूर हटते गए। हमारा गौरवमय अतीत हमारी आँखो से ओझल हो गया। अब हमें पावन गंगा और यमुना की सुन्दर धारा विस्मृत हो गयी और उसके बदले हम टेम्स के किनारे घूमने लगे। कोकिला का 'कूहू-कूहू' नाइटिंगेल की चहक के सामने बहुत फीका लगने लगा। कालिदास तथा बालिमकि की रचनाएँ हमें उतना प्रभावित नही करने लगी जितनी शेक्सपियर की। यह मानसिक आत्मसमर्पण देश के लिए कितना घातक और विनाशकारी हुआ इसका सही-सही अन्दाज लगाना बहुत ही कठिन है। देश की इस गिरती हुई मानसिक अवस्था से सभी का सशंकित होना स्वाभाविक था।

शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी हो जाने के कारण देश की अपनी भाषाओं का विकास रुक गया है। मातृभाषाएँ हेय दृष्टि से देखी जाने लगीं और अंग्रेजी ही पढ़ने में लोग अपनी प्रतिष्ठा समझने लगे। लेकिन शिक्षा की दृष्टि से इसमें बहुत-सी त्रुटियाँ आ गयीं। शिक्षा के विदेशी माध्यम से जो हानि हुई

उसका उल्लेख करते हुए महात्मा गाँधी ने कहा है "कि इस विदेशी माध्यम के कारण बच्चों को अनावश्यक मानसिक थकान होती है, उनके स्नायुयों पर अधिक जोर पड़ता है, उन्हे केवल रटने और नकल करने की आदत हो जाती है, वे मौलिक विचार और काम के अयोग्य हो जाते है और अपनी शिक्षा परिवार अथवा समाज पर निथारने मे असमर्थ हो जाते हैं।* संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि विदेशी माध्यम के द्वारा शिक्षित बालक अपना सम्पूर्ण व्यक्तित्व प्राप्त करने में असमर्थ हो जाता है और इसी कारण वह सफल नागरिक भी नहीं बन पाता। इस दयनीय अवस्था से महात्मा गाधी तथा देश के अन्य नेता बहुत चिंतित हुए। शिक्षा के उपयुक्त माध्यम पर गोष्ठियाँ होती रही और सन् १९४२ ई० में महात्मा गाँधी ने स्पष्ट शब्दों मे कहा कि मनुष्य के मस्तिष्क के विकास के लिए मातृभाषा वैसी ही स्वाभाविक है जैसा बच्चे के शारीरिक विकास के लिए माँ का दूध।* यों तो गान्धीजी ने भाषा सम्बन्धी विचार दक्षिण अफ्रिका के प्रवास के बाद ही व्यक्त किया था। इस तरह अंग्रेजी के विपरीत देश की क्षेत्रीय भाषाओं को प्रोत्साहन देने के प्रयत्न किए गए और कालान्तर में ऐसी स्थिति आ गयी कि अंग्रेजी इस देश में अंतिम घड़ियाँ गिन रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद यह प्रश्न बडा पेचीदा था कि भारत की राष्ट्रभाषा के पद पर किस भाषा को बिठाया जाए। इस पर बहुत दिनों तक वाद-विवाद हुए। अंग्रेजी के कुछ समर्थकों ने यह दलील पेश की कि अंग्रेजी एक बड़ी ही समर्थ भाषा है और विश्व में उसका प्रयोग हैं इसलिए अँग्रेजी को ही राष्ट्रभाषा बना दिया जाए। परन्तु महात्मा गाँधी ने बहुत पहले ही सन् १९२१ ई० में कहा था कि अंग्रेजी के मोह का त्याग स्वराज्य के सारभूत

* The Foreign Medium has caused brain fog, put an undue strain upon the nerves of our children, made them crammers and imitators, unfitted them for original work and thought and disabled them for filtrating their learning to the family or the masses.

—*M. K. Gandhi* (*Young India 1-9-21*)

* ....the mother tongue is as natural for the development of the man's mind as mother's milk is for the development of the infant's body.

—*M. K. Gandhi* (*Foreword to Medium of Instruction.*)

तत्वों में से एक है।* अंग्रेजी के विपक्ष में सबसे बडा तर्क यह था कि वह भारत की मिट्टी में तो पैदा हुई नहीं थी। राष्ट्रभाषा का श्रेष्ठ पद तो उसे ही मिल सकता था जिसका प्रचलन इस उप महादेश के इस छोर से उस छोर तक हो और जिसे यहाँ की चालीस करोड जनता मे से अधिकाधिक संख्या स्वीकार करती हो। सभी पहलुओ से जाँच करने पर हिन्दी ही इस कसौटी पर खरी उतरी और भारतीय संविधान ने इसे राष्ट्रभाषा के सम्मानित पद पर प्रतिष्ठापित किया। सरकारी संरक्षण प्राप्त कर लेने पर भी हिन्दी की मर्यादा अभी अक्षुण्ण नहीं हो पायी है। देश में अराजकता फैलाने वाले बहुत से व्यक्तियों ने भाषा विवाद तथा प्रान्तीयता की जो टेढ़ी समस्या पैदा कर दी है उससे हिन्दी के समर्थकों को थोडी निराशा तो अवश्य हुई है परन्तु तौभी वह दिन दूर नही जब हिन्दी सारे भारत के जन-जन का कन्ठहार बन कर रहेगी।

भारतीय सविधान ने देश में चौदह क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग स्वीकार किया हे। सविधान की आठवी अनुसूची मे उनका नाम इस प्रकार दिया गया है। आसामी, बंगला, गुजराती, हिन्दी, कन्नड, काश्मीरी, मलयालम, मराठी, उडिया, पंजाबी, संस्कृत, तामिल, तेलगू और उर्दू। राजकाज के प्रयोग के लिए १९६५ ई० तक अंग्रेजी भी बनी रहेगी। परन्तु सरकार ने अपनी नीति स्पष्ट कर दी है कि धीरे-धीरे सभी काम हिन्दी मे ही होंगे और इस तरह अंग्रेजी कार्यालयों से अपदस्थ होती जायगी। यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि ऐसा निर्णय इसलिए कदापि न हुआ है कि सरकार को अंग्रेजी के प्रति कोई घृणा हो। यह सभी स्वीकार करते है कि अंग्रेजी विश्व की धनी भाषाओं में से एक है। परन्तु सब कुछ होकर भी वह हमारी अपनी नही। अपने देश की उपेक्षित भाषाओं के प्रति भी हमारा यह कर्त्तव्य हो जाता है कि उनके उत्थान तथा निरन्तर विकास के लिए हम सचेष्ट हो जाएँ और उन्हें इतना समृद्ध बना दें कि वे विश्व की अन्य भाषाओं से होड़ ले सकें। भारत के कुछ राज्यों में जैसे बिहार, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, राजस्थान तथा मध्यप्रदेश मे हिन्दी राज्यभाषा तथा मातृभाषा, दोनों पदों पर प्रतिष्ठित है। कुछ विश्वविद्यालयों, जैसे पटना, बिहार, नागपुर और सागर आदि ने हिन्दी को विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा का माध्यम स्वीकार कर

* To get rid of the infatuation for English is the essentials of swaraj.

—M. K. Gandhi, Young India—2-2-1921)

लिया है। विज्ञान के तकनीकी शब्दो तथा विदेशी पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद विशिष्ट विद्वानो के संरक्षण मे तैयार किया जा रहा है। अभी हाल मे ही भारत सरकार के शिक्षा मत्रालय ने एक हिन्दी समिति संगठित की है जिसे वैज्ञानिक पुस्तको के अनुवाद का भार सौंपा गया है। बिहार की राज्य सरकार ने हिन्दी के सुनियोजित उत्थान के लिए एक विशिष्ट संस्था की स्थापना की है जिसका नाम राष्ट्रभाषा परिषद् है। अभी तक इस संस्था ने ७३ प्राचीन बहुमूल्य ग्रन्थों का प्रकाशन किया है। इसी के तत्वावधान मे हिन्दी के शब्दकोष का भी प्रकाशन शीघ्र होने वाला है। नवनालन्दा महाविहार नालन्दा ने त्रिपटिक के ३२ खण्डों का सुयोग्य प्रकाशन देवनागरी लिपि में किया है। इस तरह यह बात स्पष्ट है कि विभिन्न सस्थाओं के द्वारा हिन्दी को समृद्ध बनाने का प्रयत्न हो रहा है। साथ ही एक शुभ लक्षण और दृष्टिगोचर हो रहा है कि हिन्दी के समर्थक अन्य भाषाओं के प्रति उतने ही उदार और सहिष्णु हैं जितने हिन्दी के। अन्य भाषाओ के चलत शब्दों को यथासाध्य आत्मसात किया जा रहा है। लिखने की शैली तथा व्याकरण के नियमों के कट्टरपन मे भी उचित सुधार किए जा रहे हैं और इस तरह अहिन्दी भाषियों के लिए हिन्दी सुगम और ग्राह्य बनायी जा रही है।

हिन्दी शिक्षण का सामान्य उद्देश्य

किसी भी भाषा के शिक्षण के पीछे कुछ उद्देश्य रहते है। यदि उन उद्देश्यों की पूर्त्ति हो जाती है तो उस भाषा का शिक्षण सफल कहलाता है अन्यथा असफल। चूँकि हिन्दी भी एक भाषा है अतः वे ही उद्देश्य इस पर भी लागू हैं। किसी भी भाषा की शिक्षा के साथ दो मुख्य उद्देश्य, यथा भाव-ग्रहण तथा भाव-प्रकाशन, जुटे हुए हैं। भाव-ग्रहण का अर्थ है विचार ग्रहण करना और भाव-प्रकाशन का अर्थ है विचार की अभिव्यक्ति। इन दो उद्देश्यों के साथ ही अन्य उद्देश्य भी दृष्टिगोचर होते हैं जिनका सम्यक विवेचन किया जाना आवश्यक है।

सामान्य उद्देश्य

१. **भाव-ग्रहण** :—ऊपर कहा जा चुका है कि अन्य भाषाओं की तरह हिन्दी के अध्ययन का भी प्रमुख उद्देश्य भाव-ग्रहण की क्षमता पैदा करना है। यह भाव-ग्रहण दो विधियों से होता है; सुनकर तथा पढ़ कर। इन्ही दो माध्यमों से मनुष्य औरों के विचारों, तर्कों, अभिप्रायों आदि को समझ लेता है।

(क) सुनकर (श्रवग) :—भाव-ग्रहग की आदि प्रणाली श्रवण ही है। जब लिखने का कला आवष्कृत नही हुयी थी तो मनुष्य अपने सभी कार्य इसी प्रक्रिया के द्वारा किया करते थे। सुनने मे शान्ति, तत्परता, ध्यान मग्नता तथा एक प्रकार का चौकन्नापन आवश्यक है जिनसे सुननेवाला औरों के मन्तव्य समझ सकता है। सुनने में जो अपेक्षित शर्त्तें है भाषा-शिक्षण का उद्देश्य उन्ही शर्त्तो को अक्षरशः पूरा करना है। पशु की ओर देखिये। इनकी भाषा इतनी सीमित है कि वे केवल सुनकर ही भाव-ग्रहण या बोलकर ही भाव-प्रकाशन कर सकते है और कर लेते है। जब पशु अपना भाव व्यक्त करता है, जो उसकी आवश्यकताओं का व्यक्त रूप है, तो सुननेवाला जानवर अपने कान खडे करके, ध्यान लगा कर, बोली को समझने की कोशिश करता है। इस प्रकार जब भाव-ग्रहण कर लेता है तब उसकी प्रतिक्रिया होती है और वह उसका उत्तर अपनी बोली में या अपने कार्य के द्वारा देता है। इससे स्पष्ट है कि भाव-ग्रहण में सुनने का एक विशेष महत्व है। अतएव भाषा-शिक्षण का यह एक महत्वपूर्ण उद्देश्य होना चाहिये कि शिक्षक विद्यार्थी को इस योग्य बनाये कि वह ठीक से औरौं के विचारो को सुन सके। सुनने का पहला सम्बन्ध हमारे कान, मस्तिष्क तथा ग्रहण-शक्ति से है। इनमें जो शारीरिक तथा मानसिक क्रियाये होती है उनकी ओर शिक्षक का ध्यान जाना चाहिये। भाषा शिक्षण का यह आवश्यक उद्देश्य है कि अभ्यास द्वारा श्रवण शक्तियो को प्रशिक्षित किया जाय। अतएव जो व्यक्ति शब्द-भाडार नही रखता, सुनने में ध्यान नही देता और श्रवण मे उन अपेक्षित क्रियाओं का विधिवत पालन नहीं करता वह कदापि औरों के भावों को ठीक से समझ नहीं सकता। भाव-ग्रहण मे जिस मनोयोग की आवश्यकता है उसे नही देने से वह औरों के भावों से सर्वथा वचित रह जाता है। अतः भाषा की दृष्टि से हिन्दी शिक्षण का भी यह एक प्रमुख उद्देश्य है कि सुनने की कला को प्रशिक्षित, सुदृढ तथा पुष्ट बनाया जाय जिसमें विद्यार्थी सुनकर औरों के मनोभावों को ठीक तरह से समझ सके।

(ख) पढ़कर (पठन) :—लेखन-कला के आविष्कार केपहले मनुष्य का भाव-ग्रहण केवल सुनने की कला तक ही सीमित था। लेकिन जब उसने अपने भावो को लिपिबद्ध करने की कला सीख ली है, यह ज्ञान प्राप्त कर लिया है, तब से पढकर ही भाव-ग्रहण करने का विशेष महत्व बढ़ गया है। जो मनुष्य हिन्दी भाषा का ज्ञान रखता है वह मुद्रित तथा लिखित भावों का

अध्ययन करके भी भाव-ग्रहण कर सकता है। इसके विपरीत जो व्यक्ति भाषा का ज्ञान नही रखता, लिपि की जानकारी नही रखता वह औरों के विचारों को केवल सुनकर भले ही जानले, लेकिन वह भाव-ग्रहण के एक विशेष साधन से सर्वथा वंचित और अनभिज्ञ रह जाता है। साक्षर और निरक्षर व्यक्ति में यही भेद है कि जहाँ एक अक्षर को देख कर ही उसको समझ कर व्यक्त कर सकता है, वही निरक्षर काले अक्षर को भैंस के बराबर ही समझता है। पढ़ने मे उसका ज्ञान-क्षेत्र विस्तृत होता रहता है। वह न केवल औरों के भावों को सुगमता से समझ लेता है वरन् वह उनका उचित मूल्याकण भी कर सकता है। हिन्दी भाषी इस प्रकार अपने बहुल और प्रचुर साहित्य का अध्ययन करके न केवल अपने जीवन की दैनिक आवश्यकताओ की ही पूर्त्ति करता है वरन् वह अपने को उस आनन्द से भी लाभान्वित करता है जो किसी भी भाषा और साहित्य की तरह हिन्दी का भी एक प्रमुख उद्देश्य और लक्ष्य है।

पढ़ने के लिये अक्षर-ज्ञान, वर्ण-विन्यास की जानकारी, शब्द और वाक्य रचना का परिचय, व्याकरण और रचना के नियमो का ज्ञान, खण्ड का शाब्दिक अर्थ और भावार्थ का विशेष महत्व है जो हमारे भावों को स्पष्ट ही नही, सुग्राह्य तथा सुगम भी बना देता है। वह न केवल भाषा के माध्यम से औरों के भावों को शीघ्रता से ग्रहण कर लेता है वरन् उनके आन्तरिक आनन्द को भी प्राप्न करता है; उसे जिस आनन्द का अनुभव होता है उसे साहित्यकों ने ब्रह्मानन्द का संज्ञा दी है। पठन द्वारा भाव-ग्रहण का एक विशेष विज्ञान है जिसमे हमारे विभिन्न शारीरिक तन्तु—आँख, कण्ठ, जीह्वा, तथा मस्तिष्क कार्य करते हैं। पढने की क्रिया को जितना आसान और सरल समझा जाता है वास्तव में वह उतना सरल नही है। वस्तुतः वाचने की यान्त्रिकता (mechanics of reading) बडा ही क्लिष्ट, विषम तथा विशद है। इसके लिये शिक्षक और छात्र को सतत् प्रयत्न और नियमित अभ्यास करना पड़ता है। पढ़ने का वास्तविक उद्देश्य है कि—

(क) बालक शब्दों का उच्चारण ठीक से कर सके।
(ख) शब्दों का अर्थ ठीक से जान सके।
(ग) गद्य या पद्य के भावार्थ को समझ सके।
(घ) उस प्रसंग के सभी आवश्यक सम्बन्धित तथा सार्थक प्रश्नों का समुचित उत्तर दे सके।

(च) शब्द-भंडार को नियमित रूप से बढ़ा सके क्योंकि शब्दों के भंडार पर ही उसके भाव-ग्रहण और भाव-प्रकाशन की क्रियाएँ अवलम्बित हैं ।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि पढ़ने का एक प्रमुख स्थान है तथा हिन्दी-शिक्षण का यह एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है कि बालक को पढ़ने की कला की जानकारी हो तथा उसमे सभी विशेषताएँ आ जायें जो एक कुशल वाचक के लिये आवश्यक है ।

इन दोनों उद्देश्यों के सम्मिलित अध्ययन से यह प्रमाणित हो जाता है कि हिन्दी भाषा के शिक्षण का एक स्पष्ट उद्देश्य है कि विद्यार्थी में हिन्दी का स्पष्ट ज्ञान हो तथा उसमे विचार-संग्रह की क्षमता भी उत्पन्न हो । विद्यार्थी इतना समर्थ हो सके कि वह सुनकर और पढ़कर स्पष्ट विचारो का सग्रह और उनका उपयोग स्पष्ट रूप से कर सके । आरम्भ मे थोडी कठिनाई अवश्य होती है परन्तु शनैः-शनैः बच्चों में यह क्षमता आती जाती है । वर्ग मे अध्यापक का शिक्षण तथा स्वाध्याय द्वारा ज्ञान अर्जन दोनों उसके मस्तिस्क में नवीन विचार पैदा करते हैं । विद्यार्थी इन्हों माध्यमो से भाव-ग्रहण करता और स्पष्ट भावो का ज्ञान-कोप मे जमा कर भविष्य मे उनका उपयोग करता है । शिक्षक का यह कर्त्तव्यहो जाता है कि मौखिक तथा लिखित दोनो रूपों में बच्चों को हिन्दी के स्पष्ट ज्ञान और प्रयोग से परिचित करावे । आरम्भ में भाषा की शुद्धता पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता पर विद्वानों ने जोर नहीं डाला है, शुद्धता तो अभ्यास के द्वारा धीरे-धीरे स्वयं आ जाती है ।

मनुष्य का काम केवल भाव-ग्रहण से ही नहीं चल सकता । इसके साथ-साथ भाव-प्रकाशन की भी क्षमता अवश्य होनी चाहिए । मान लीजिए, आप दूसरों से जो विचार ग्रहण करते हैं वे स्पष्ट हैं । आपको भी अपने विचार दूसरों के सम्मुख रखने हैं। यदि विचारों के प्रकटीकरण मे आप अस्पष्ट हुए तो आपका भाव-प्रकाशन दोष-पूर्ण समझा जायगा । इसलिए बच्चों मे ऐसी क्षमता पैदा करनी चाहिए कि वे स्पष्ट विचारों को स्पष्टता पूर्वक व्यक्त कर सकें । अतएव स्पष्ट है कि भाषा शिक्षण के सामान्य उद्देश्यों के आधार पर हिन्दी शिक्षण का भी यह एक विशेष उद्देश्य है ।

२. भाव-प्रकाशन :—जिस प्रकार भाव-ग्रहण के प्रमुख अंग पढना या सुनना है उसी प्रकार भाव-प्रकाशन के भी प्रमुख अंग बोलना लिखना है । अतएव हमारा ध्यान इन दोनों आवश्यक उद्देश्यों की ओर भी जाना चाहिये ।

(क) बोलना :—अपने भावों को व्यक्त करने का स्पष्ट, सरल तथा सुगम साधन "बोलना" है। यह मनुष्य जाति क्या, सभी जीवधारियों का प्रारम्भिक नैसर्गिक साधन है। लिपि के आविष्कार के पहले मनुष्य अपने भावों को इंगित इशारों से ही व्यक्त करता था, धीरे-धीरे उसमे बोलकर भाव-व्यक्त करने की क्षमता आती गयी। कालान्तर मे शब्द-भण्डार मे वृद्धि होती गयी और मानव के बोलने में भी अनेक रूपता आयी। इस प्रकार बोलकर भावाभिव्यक्ति जीवन मे बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

बोलने की कुछ प्रारम्भिक शर्ते है जिनकी ओर सभी बोलनेवालों का ध्यान जाना चाहिये। सर्वप्रथम, शब्द का भाडार इतना पर्याप्त हो कि वह सभी प्रकार के विचारों, सदेशों तथा मनोभव को व्यक्त करने मे समर्थ हो सके। जिनके पास शब्द-भाडार की कमी है वे अपने भाव व्यक्त करने मे असमर्थ रहते है। यह मूक स्थिति आज के युग मे मानव के लिये अच्छी नही कि वह अपने भावों को पूर्णरूप से व्यक्त भी न कर सके। बालकों और वयस्कों के भाव-प्रकाशन में यही अन्तर है कि एक के पास दूसरे से शब्द भांडार अधिक है। अतएव भाषा के शिक्षण से लडको मे शब्द-भंडार की वृद्धि होती है।

शब्द-भांडार के अतिरिक्त बोलने की एक विशेष शर्त और है। बोलनेवाला अपने भाव को इस प्रकार व्यक्त कर सके कि सुननेवाला विशेप रूप से प्रभावित हो। वक्तृत्व स्वयं एक कला है जिसका प्रमुख उद्देश्य औरों पर अपने विचारों का स्पष्ट प्रभाव डालना तथा उन्हें अपने विचार से सर्वथा सहमत होने के लिये बाध्य करना। मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओ से सुननेवाला आप से आप बोलनेवाले के सामने आत्मससर्पण कर देता है। जो जनता से मत (votes) मागने जाते है वे अपने को इस कला में अधिक पटु बना लेते है। वक्तृत्व से, प्रभावपूर्ण भाषण से दूसरों को दृढ़ता से निर्णय कराने योग्य बना देना ही भाषा-शिक्षण का एक मात्र उद्देश्य है।

अतएव हिन्दी-शिक्षण का यह उद्देश्य है कि हिन्दी भाषी अपने भावों को शुद्ध भाषा में स्पष्ट, सरल तथा प्रभावपूर्ण तरीके से व्यक्त करने की क्षमता रखें। बोलने में न केवल प्रभाव का ही ख्याल रखना है, व्याकरण और रचना के कुछेक नियमों के अन्तर्गत शुद्धता पर भी आवश्यक ध्यान रखना है। प्रत्येक भाषा में व्याकरण और रचना के कुछेक ऐसे परम्परागत नियम, उपनियम आदि हैं जिनसे परिचय प्राप्त करना भाषा-अध्ययन की आवश्यक शर्त है।

भाषा के जीवन मे ऐसे क्षण भी आते हैं जहाँ व्यवहार, सम्पर्क से, विकास-क्रम मे उन नियमो मे समयानुसार संशोधन, काट-छाँट तथा कुछ नये नियम भी जोड़ने पडतेहै। हिन्दी भाषा के लिये भी यह सत्य है। अतएव हिन्दी शिक्षण का यह भी एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है कि हिन्दी भाषी को परम्परागत तथा अर्वाचीन व्याकरण-सम्बन्धी नियमो का व्यापक विधान मालूम हो जाय।

बोलने में शैली भी आवश्यक है जो सरल, सुबोध और प्रभावोत्पादक हों। अतएव हिन्दी-शिक्षण का यह आवश्यक उद्देश्य है कि हिन्दी का विद्यार्थी उत्तम शैली में भाव व्यक्त करने की क्षमता उत्पन्न कर सके।

(ख) **लिखना :**—लिपि के आविष्कार के बाद से लिखकर भाव प्रकाशन एक विशेष साधन मानव के सामने उपलब्ध हो गया है। जो हमारे सामने नही है, परोक्ष मे है, हमसे दूर है उनके पास तक अपने भाव पहुँचाने का यही एक महत्वपूर्ण साधन है। लिखना एक ऐसी कला है जिसके द्वारा विषय से ही नही उसकी लिखावट से भी हमे लेखक के मनोभाव को समझने का पर्याप्त अवसर मिलता है। लिखने मे जो शारीरिक प्रक्रियाएँ होती हैं उनकी ओर भी हमारा ध्यान जाना चाहिये। लिखने में शरीर के प्रमुख अग—हाथ, आँख, नाड़ी, तथा मस्तिष्क को विशेष श्रम करना पड़ता है। लिखने का उद्देश्य है कि हम अपने भावो को अच्छे अक्षरों में साफ-साफ सुन्दर तरीके से लिखे। गन्दी लिखावट की अपेक्षा साफ और सुन्दर लिखाबट आँखों को अधिक प्रिय, सुन्दर और ग्राह्य प्रतीत होती है। लिखने के नियमित अभ्यास से हम सुन्दर अक्षरों के लिखने की कला सीख सकते है। अतएव भाषा शिक्षण का यह स्पष्ट उद्देश्य है कि विद्यार्थी में लिखने की क्रिया का अभ्यास हो। लिखकर उसे अपने मनोभव राग-रंग, सुख-दुख, आदि व्यक्त करने की क्षमता प्राप्त हो हिन्दी-शिक्षण के लिये भी यही शत-प्रतिशत सत्य है।

लिखने का सम्बन्ध हमारी शैली से है। जिस प्रकार अच्छी शैली अपना कर अपने भाषण तथा वक्तव्य द्वारा दूसरों को आत्मसमर्पण करने के लिये बाध्य कर देते है उसी प्रकार अच्छी शैली के अपनाने से हमारी रचना पढ़कर हमारा पाठक भी अपना आत्मसमर्पण कर सकता है। जर्मनी में फिचे (Fitche) की लेखनी ने, फ्रास मे रूसो (Rousseau) की कलम ने तथा इस प्रकार विश्व के प्रायः सभी देशों में लेखनी ने तलवार का काम किया है। बड़ी-बड़ी क्रान्तियाँ कलमों के बल पर ही सफल भी हुई हैं। अच्छी

शैली अपनाकर हम औरो पर अपना स्थायी प्रभाव छोडते है। जिन लेखकों की शैली ठीक नही उतरती, उनके भाव प्रभावोत्पादक नही होते। अतएव हिन्दी-भाषा को और भी प्रभावशाली तथा स्थायी बनाने के लिये हिन्दी-शिक्षण की व्यवस्था आवश्यक है क्योकि यही इसका प्रमुख उद्देश्य है।

भाव-ग्रहण और भाव-प्रकाशन के जिन चार प्रमुख साधनो का उल्लेख ऊपर किया गया है वास्तव मे भाषा के अध्ययन मे वे सामान्य उद्देश्य है जिनका पारस्परिक सम्बन्ध अक्षुण्ण तथा अविच्छिन्न है। अतएव स्पष्ट है कि हिन्दी शिक्षण का भी यह सामान्य उद्देश्य है कि हिन्दी-भाषी अपने भावों को स्पष्ट, सरल, सुबोध, तथा सुगमतापूर्वक औरो के पास प्रभावपूर्ण और स्थायी तरीके से पहुँचा सकें। साथ ही औरो के भावो को भी उसी प्रकार स्पष्ट, सरल, सुबोध तथा सुगमतापूर्वक समझ सके।

हिन्दी-शिक्षण के विशेष उद्देश्य

हिन्दी-शिक्षण के उपरोक्त सामान्य उद्देश्यों का चर्चा के बाद उनके विशेष उद्देश्यों की ओर भी हमारा ध्यान जाना आवश्यक है।

(क) हिन्दी भाषियों मे भावों के आदान-प्रदान का उद्देश्यः—हिन्दी-शिक्षण का सर्वप्रथम विशेष उद्देश्य यह है कि हम इस माध्यम से हिन्दी बोलनेवाले सभी भारतीय और विदेशियों के भावो को उचित रूप मे समझने मे समर्थ हो सकें तथा उन्हें समझाने में भी सफल हों। जब एक भाषा के बोलने वाले एक दूसरे के सम्पर्क में आते है तो भाव-प्रकाशन या भाव-ग्रहण का एक ही माध्यम होने के कारण, उन्हें एक अनुकूल परिस्थिति मिल जाती है। यह अनुकूल परिस्थिति इन्हें भावों को व्यक्त करने या ग्रहण करने में आवश्यक प्रेरणा, उत्साह तथा एक विशेष माध्यम प्रस्तुत करती है। सम्भाषण के क्रम मे वे न केवल आपसी आवश्यकताओ की ही पूर्त्ति करते हैं वे साथ ही अपने रागात्मक, संवेगात्मक एव भावात्मक विचारों को व्यक्त और ग्रहण करने का स्वर्ण अवसर भी प्राप्त करते है। अतएव हिन्दी-भाषी-क्षेत्रों मे, या हिन्दी भाषियों के बीच भाव-प्रकाशन या भाव-ग्रहण का एक सुन्दर समन्वय ही उपस्थित करना हिन्दी-शिक्षा का सर्वप्रथम महत्वपूर्ण उद्देश्य है।

(ख) हिन्दी-शिक्षण और राष्ट्रीय भावना का उद्देश्यः — हिन्दी-शिक्षण का वास्तविक उद्देश्य यह है कि हिन्दी-भाषी व्यक्तियों, राज्यों तथा समुदायों का आपसी सम्बन्ध और सम्पर्क स्थायी, स्वस्थ, स्पष्ट तथा संगठित हो। हिन्दी

आज न केवल उत्तर भारत के विभिन्न राज्यो की मातृभाषा ही है वरन् उसे तो समस्त भारत संघ की राष्ट्रभाषा होने का गौरव भी प्राप्त है । मातृभाषा के अध्ययन से जिस प्रकार मातृभूमि के प्रति प्रेम, आस्था, ममता, मोह, आदर तथा प्रतिष्ठा के भाव उत्पन्न और स्थापित होकर सुदृढ और स्थायी होते है, उसी प्रकार हिन्दी के अध्ययन से राष्ट्र की एकता, भारतीय राष्ट्र की व्यापकता, राष्ट्रीय-भावना, भारतीयता, भारतीय संस्कृति और सभ्यता के प्रति प्रेम, ममता, मोह, आस्था, आदर तथा प्रतिष्ठा आदि के सुन्दर भाव प्रदर्शित होने का सुन्दर अवसर मिलता है । इस प्रकार एक समान भाषा होने के कारण हिन्दी भारतीय समाज के सुदृढीकरण की परिचायिका है। हिन्दी के अध्ययन से हमारा देश प्रेम, राष्ट्र-प्रेम, तथा भारतीय सघ का प्रेम प्रदर्शित और पुष्ट होता है । भाषा के प्रति प्रेम देश-प्रेम का सकेत है अतएव हिन्दी हमारी राष्ट्रीय भावना का सजीव प्रतीक है । और हिन्दी-शिक्षण का वास्तविक उद्देश्य यही है कि समस्त भारतीय राष्ट्र को एक सूत्र मे देश-प्रेम मे बाँधा जाय ।

हिन्दी हमारी मातृभाषा और राष्ट्रभाषा दोनो है। मातृभाषा एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा उसको व्यवहार मे लाने वाला समुदाय एक सूत्र मे पिरो दिया जाता है। इस तरह एक ठोस समाज अथवा संगठित राष्ट्र की स्थापना होती है। यह संगठन राष्ट्र के लिए कितना आवश्यक है इस पर विशेष विचार विमर्श करने की आवश्यकता नही । इस तरह यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी हमारी राष्ट्रीय भावना का प्रतीक है । हिन्दी-शिक्षकों पर यह बडा उत्तरदायित्व है कि वे आरम्भ से ही बच्चों मे इस भाषा के सफल प्रयोग द्वारा राष्ट्रीयता की भावना का विकास करें ।

(ग) **हिन्दी और भारतीय संस्कृति के अध्ययन का उद्देश्यः**—हिन्दी भाषा के इतिहास का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि संस्कृति, प्राकृत तथा तदनन्तर अपभ्रंश भाषाओ के विकास-क्रम को ही अन्तिम चरण मे वर्त्तमान हिन्दी-भाषा का स्थान निर्दिष्ट है अतएव आज की हिन्दी का अध्ययन करने के लिये उसका ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का परिचय अत्यावश्यक है। हिन्दी-भाषा और साहित्य में न केवल ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, धर्म, तर्कशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, इतिहास, भूगोल, कृषिशास्त्र तथा प्राकृतिक विज्ञान और सामाजिक विज्ञान का अपार विशाल ज्ञानभंडार उपलब्ध है वरन् वह भारत-भूमि की अक्षुण्ण सभ्यता, संस्कृति, भारतीय राष्ट्र के उतार-चढाव, उन्नति-अवनति, सुनहले और शुष्क

जीवन तलवारों की खनखनाहट तथा सुर-संगम की सरस कहानी है । हिन्दी का अध्ययन न केवल हमें अपनी मातृभूमि की बहुल सम्पत्ति से ही परिचित कराता है वह हमे इसकी मूलभूत विशेपताग्रो तथा इसके सुनहले पूर्व, स्वस्थ, वर्तमान तथा आकाक्षा भरे भविष्य से भी परिचित कराना है । अतएव स्पष्ट है कि हिन्दी शिक्षण का विशेप उद्देश्य यह है कि वह हमारी संस्कृति और सभ्यता से परिचय कराने मे सहायक और इस कार कितना उपयोगी, प्रभावपूर्ण तथा महत्वपूर्ण है । जिस भाषा के माध्यम मे इस देश की संस्कृति सुरक्षित और पोपित रही है, उसका अध्ययन कितना गौरवमय है यही उसका एकमात्र उद्देश्य है ।

(घ) हिन्दी-शिक्षण से चरित्र-निर्माण का उद्देश्य:—परम्परा से भारतीय जीवन आदर्श जीवन का सकेत और प्रतिरूप रहा है जिसके अन्तर्गत शान्ति, आनन्द, अहिसा, तथा परोपकार की विशेपताएँ सन्निहित रही है । हिन्दी इन सभी विशेषताओं का संकलित रूप है । जो व्यक्ति हिन्दी का अध्ययन करता है वह वास्तव मे भारत के आदर्श जीवन के मूलगत सिद्धान्तों से स्वयं परिचित होता है । कहा भी गया है कि भाषा के अध्ययन से मनुष्य का चरित्र निर्मित और गठित होता हैं । भारतीय जीवन मे तुलसीदास की रामायण का जो प्रभाव पड़ा है उसकी छाप भारतवासियो के चरित्र के विश्लेषणात्मक अध्ययन के पश्चात् हम जान सकते है । भाषा के सम्यक् अध्ययन से मनुष्य का चरित्र किस सीमा तक निर्मित होता है यह फिचे (Fitche) के निम्नाकित उद्धरण से स्पष्ट है "मनुष्यों द्वारा निर्मित होने की अपेक्षा भाषा स्वयं उनका निर्माण करता है ।" (Language forms men more than it is formed by them.)

(च) हिन्दी-भाषा के क्षेत्र-विस्तार का उद्देश्य—भाषा समुदाय की सामाजिकता का प्रतीक है । जिस प्रकार भाषा के अभाव में व्यक्ति गूंगा है उसी प्रकार भाषा के अभाव में जाति, समुदाय तथा राष्ट्र मृतप्राय है । अतएव भाषा समुदाय का प्राण, उसकी संचालन-शक्ति है । भाषा के द्वारा ही हम अन्य देशों, राष्ट्रो, उनकी सभ्यता और संस्कृति तथा परम्पराओं से परिचित होते है । भाषा के माध्यम से ही हम उनके सम्पर्क में आते हैं । भारतीय भाषा के लम्बे इतिहास में यह सम्पर्क सुदूर पूर्व और सुदूर पश्चिम के देशों से स्थापित हुआ है जिसका विधिवत वर्णन हमारे साहित्य में मिलता है । आज अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित

है। हिन्ही का वर्तमान क्षेत्र पूरे भारत-संघ तक भी विस्तृत नही हो पाया है अतएव ऐसी अवस्था मे एक ओर तो राष्ट्रीय एकता (Unity) तथा सुदृढता (Solidarity) को खतरा है, दूसरी ओर सम्पूर्ण देश के भावो की सफल अभिव्यक्ति के पूर्ण रूप का अभाव दृष्टिगोचर हो रहा है। अतएव हिन्दी-शिक्षण का वास्तविक उद्देश्य यह है कि हिन्दी-भाषी को भारत के विभिन्न राज्यो के समुदायो के भावो, विचारो, परम्पराओं से परिचित करावें साथ ही हिन्दी को भी इस योग्य बनाये कि वह न केवल अपना राष्ट्रीय रूप ही निर्मित कर सके; बल्कि एक दिन वह अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी गौरवपूर्ण पद प्राप्त कर सके। अतएव हिन्दी-शिक्षण पर इस महत्वपूर्ण उद्देश्य का बड़ा ही गंभीर उत्तरदायित्व है

(छ) हिन्दी-शिक्षण और अन्य भाषाओं के अध्ययन का उद्देश्य— हिन्दी भाषा के अध्ययन का यह भी एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है कि हम उसके अन्य भारतीय भाषाओं तथा अन्य विदेशी भाषाओं के सम्पर्क का वास्तिविक अध्ययन करें। भाषा के विकास की कहानी यह प्रमाणित करती है कि उसका वास्तविक विकास अन्य भाषाओ के आदान-प्रदान के द्वारा होता है। हिन्दी भाषा के विद्यार्थी को यह जानना चाहिये कि इस भाषा में कौन-कौन से विदेशी शब्द आये जिसे हिन्दी ने आत्मसात कर लिया तथा अन्य किन-किन भाषाओं मे हिन्दी के शब्द प्रविष्ट हुए। ऐसे ही विनिमय से भाषा अलक्कृत होती है। न केवल शब्दों का ही आदान-प्रदान से, वरन व्याकरण के विधान और रचना-शैली के विभेदों को विधिवत स्वीकार करने से भाषा का विकास हुआ करता है अतः हिन्दी का विद्यार्थी यह भी अध्ययन करता है कि किस प्रकार उसका व्याकरण तथा रचना-विधान विकसित हुआ है। इस प्रकार वह तुलनात्मक अध्ययन के लिये तैयार हो जाता है। हिन्दी-शिक्षण का यह भी उद्देश्य है कि विद्यार्थी को अन्य भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन के लिये प्रेरित और उत्साहित करे।

(ज) हिन्दी शिक्षण से साहित्य-साधना का उद्देश्य:—हिन्दी भाषा का विद्यार्थी हिन्दी के विशाल साहित्य का अध्ययन करता है। इसके अन्तर्गत वह हिन्दी के महाकाव्य, खण्डकाव्य, गीतिकाव्य, नाटक, तथा उसके विभिन्न स्वरूपों और विभेदों, कहानी, आख्यायिका, निबन्ध, उपन्यास, यात्राकथा, मीमांसा, साहित्यिक आलोचना आदि का अध्ययन करता है।

अतएव हिन्दी-शिक्षण का यह एक विशेष उद्देश्य है कि उसका विद्यार्थी साहित्य के प्रचुर साहित्य का नियमित अध्ययन करे।

(ञ) **हिन्दी शिक्षण से व्यक्तित्व निर्माण का उद्देश्य** :—किसी भी भाषा की शिक्षा का उद्देश्य भाव और विचारो की सफल अभिव्यक्ति है यह ऊपर स्पष्ट कर दिया गया है। इस अभिव्यजना के कारण मानसिक, नैतिक तथा रागात्मक जीवन मे परिवर्त्तन होता है। भाषा हमारे मानसिक और सवेगात्मक जीवन को प्रकाश मे लाती है। इस प्रकार हमारा व्यक्तित्व विकसित होता है। विद्यार्थी हिन्दी साहित्य का रसास्वादन करता है और अच्छी पुस्तको के सम्पर्क में आकर अपनी बुद्धि तथा मानसिक धरातल का उन्नयन करता है। आध्यात्मिक गुणों की भी श्रीवृद्धि होती हैं। उसके सस्कारों का परिमार्जन होता है। पुस्तको के अध्ययन से वह व्यक्ति, समाज और विश्व के प्रति एक सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाता है। अत: यह स्पष्ट है कि अन्य भाषा के अध्ययन की तरह हिन्दी भाषा के शिक्षण से भी मनुष्य के व्यक्तित्व का कुछ विकास अवश्य होता है।

यदि सच पूछा जाय तो भाषा के सामान्य और विशेष उद्देश्यो की लम्बी और अन्तिम सूची नही बनायी जा सकती। जिस प्रकार हिन्दी के महत्व को शब्द-जाल में बाँधा नहीं जा सकता, इसी प्रकार उसके उद्देश्यों को भी किसी परिधि में सीमित नही किया जा सकता। संक्षेप में, हिन्दी-शिक्षण के इन वर्णित उद्देश्यों के अतिरिक्त अनेक ऐसे भी उद्देश्य है जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति के मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक पहलुओं को सुदृढ और स्वस्थ बनाते हैं। इस प्रकार यह किसी तरह की अत्युक्ति नहीं होगी कि हिन्दी का अध्ययन शिक्षा के उन महान उद्देश्यों की पूर्ति में शत-प्रतिशत सहायक है जिनकी प्रचुर चर्चा शिक्षाविद् दिन प्रतिदिन किया करते हैं।

अध्याय ३

हिन्दी शिक्षण का ऐतिहासिक सिंहावलोकन

बृटिश-शासन-काल

हिन्दी-शिक्षण आज अनेक समस्याओ से ग्रस्त है। उन समस्याओ का सम्यक् विवेचन उपयुक्त प्रकरण मे किया जायगा। लेकिन इसके पूर्व हमे उस पूर्वपीठिका का भी अध्ययन कर लेना चाहिये जो समस्त बृटिश-शासन-काल मे विस्तृत है ; क्योंकि आज की समस्याओं की मूलगत परिस्थितियाँ उन्ही दिनों से सम्बन्धित है।

बृटिश-शासन-काल के प्रारम्भ मे इसाई मिशनरियों, कतिपय अंग्रेज विद्वानों तथा भारतीय साहित्यकारो ने भारतीय भाषाओ के अध्ययन, शिक्षण तथा स्वय उसके साहित्य के सृजन और विकास मे जो महत्वपूर्ण योगदान दिया है, वह निस्सन्देह भारतीय शिक्षा के इतिहास मे उल्लेखनीय है। ग्रियर्सन महोदय द्वारा भारतीय भाषाओ का सर्वप्रथम वैज्ञानिक सर्वेक्षण इस समय का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है जो आज भी भारतीय भाषाओं का वास्तविक परिचय प्राप्त करने का एकमात्र उपलब्ध महत्वपूर्ण आधारशिला है।

सन् १७९१ ई० में जानथन डंकन ने बनारस संस्कृत कालेज की स्थापना की थी जिसका प्रमुख उद्देश्य संस्कृत भाषा और साहित्य का अध्ययन था। सन् १८०० ई० मे कलकत्ता मे कलकत्ता मदरसा की स्थापना वैरेन हेस्टिंग्स ने अरबी और फारसी साहित्य के अध्ययन के लिये की थी। यहाँ हिन्दी गद्य के प्रचार का भी महत्वपूर्ण कार्य किया गया। आगरा कालेज की स्थापना भी इन्ही उद्देश्यो से की गयी थी जहाँ प्राच्य-भाषाओ और साहित्य का अध्ययन प्रमुख कार्यक्रम था। इनके अतिरिक्त अन्य स्थानो मे भी कालेज खोले गये जहाँ भारतीय भाषाओं का अध्ययन प्रारम्भ किया गया था। चाहे जिन राजनैतिक कारणों से इन संस्थाओ की स्थापना की गयी हो, लेकिन उनका

वास्तविक उद्देश्य यह भी पूरा हुआ कि प्राच्य-भाषाओ का अध्ययन भारतीयो के साथ-साथ विदेशियो ने भी किया। हिन्दी के क्षेत्र में, खडी हिन्दी गद्य मे इसी काल मे लल्लू जी लाल द्वारा प्रेमसागर, सदल मिश्र द्वारा नासिकेतो पाख्यान, इशा अल्ला खाँ द्वारा रानी केतकी की कहानी तथा सदासुखलाल द्वारा सुखसागर तथा अनेक ऐसे प्रमुख ग्रन्थ तैयार हुए जो आज भी हिन्दी भाषा के विद्यार्थियो के लिए महत्वपूर्ण साहित्यिक कृतियाँ है।

भारतीय भाषाओ और साहित्य के अध्ययन का सर्वाधिक श्रेय इसाई मिशनरियो को है जिन्होने "भारतीय लोगो को प्रभावित करने के लिए भारतीय भाषाएँ सीखी। जो मिशनरी जिस प्रदेश मे काम करती थी वह वहाँ की भाषा का अध्ययन करती थी और फिर उसी भाषा के माध्यम से भारत-वासियो को शिक्षा भी दी जाती थी। उस समय आधुनिक भारतीय भाषाएँ इतनी सशक्त नही थी इसलिए उनको शिक्षा का माध्यम बनाना एक साहसिक कार्य था। मिशनरी लोगो ने भारतीय भाषाओ मे शब्द-कोष बनाये, बाइबल का अनुवाद किया तथा अपने अन्य सन्देश आदि अन्य भाषाओं मे प्रकाशित करवाये*
निस्सन्देह हिन्दी भाषी क्षेत्रो में हिन्दी का प्रचार भारतीय समाज के निम्न स्तर मे मिशनरियो द्वारा हुआ तथा उसी के माध्यम से उन्हें शिक्षा भी दी गयी।

ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने शिक्षा की सर्वप्रथम घोषणा सन् १८१३ ई० में की। इस घोषणा की ४३वी धारा के अनुसार यह निर्देश दिया गया कि "प्रतिवर्ष एक रकम, जो एक लाख रुपये से कम की न होगी, अलग रखी जाय जो साहित्य को अनुप्राणित करने तथा उसका उद्धार करने, शिक्षित भारतवासियों को प्रोत्साहन देने और बृटिश अधीन भू-भाग के भारतवासियों में विज्ञानों के ज्ञान का आरम्भ करने तथा उसके विकास मे व्यय की जायगी।" इसके अनुसार कम्पनी के संचालको ने लन्दन से भारत सरकार को ३ जून, १८१४ को यह निर्देश दिया कि संस्कृत फारसी आदि भारतीय भाषाओं के अध्ययन को प्रोत्साहन दिया जाय। यदि कम्पनी के कार्यकर्त्तागण संचालकों के आदेश का पालन करते तो बहुत संभव था कि अगले वर्षो मे भारतीय भाषाओं के अन्तर्गत हिन्दी भाषा की शिक्षा का भी उचित प्रबन्ध

---

* भारतीय शिक्षा का इतिहास तथा आधुनिक शिक्षा शास्त्री, मनमोहन सहगल और हेमराज निर्मम, पृ० १२०

होता तथा हमारी वर्त्तमान समस्यायें इस सीमा तक हमारे सामने खड़ी नहीं होती। लेकिन कार्यकर्त्ताओ की अदूरदर्शिता से ऐसा न हो सका।

अगले २० वर्षो का समय शिक्षा के क्षेत्र मे प्राच्य और पाश्चात्य मतावलम्बियो के आपसी झगड़े में बीता। प्राच्यमत के पोषक यह धारणा लिए थे कि संस्कृत और फारसी शिक्षा के प्रसार द्वारा ही भारतीय जनता की शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय। तदनुसार संस्कृत और फारसी की पुस्तकें छपवायी गयी। अंग्रेजी पुस्तकों का भारतीय भाषाओ मे अनुवाद भी किया गया। लेकिन जल्द ही इस मत का विरोध प्रारम्भ किया गया। कहा गया कि कम्पनी की शिक्षा-सम्बन्धी नीति गलत रास्ते का अनुसरण कर रही थी तथा बृटिश-शासन के वास्तविक उद्देश्यों की पूर्ति में यह नीति बाधक थी। अतएव इस स्थिति का अनुभव किया गया और १८ फरवरी, १८२४ के घोषणा-पत्र में यह स्पष्ट किया गया था कि उनका उद्देश्य यह नहीं था कि हिन्दुओं को उनके साहित्य की बाते और मुसलमानों को उनके साहित्य की बातें बतायी जायें। तत्कालान गवर्नर जेनरल को लिखा गया कि "आपने ऐसी नीति अपना कर अपने आपको वह पढाने के लिए बाध्य कर लिया जिसका अधिकाश भाग मूर्खता से भरा है और उसका बड़ा भाग शरारतपूर्ण है और थोडा-सा भाग अवश्य ऐसा है जिससे थोडी-बहुत उपयोगिता प्राप्त हो सकती है।" निस्सन्देह यह व्यग्य प्राच्यमत के विरोधियो की पूर्व-धारणाओं को पुष्ट करने के लिए पर्याप्त था जिसमे भारतीय भाषाओं की अपार क्षति हुई।

इस बात से सभी शिक्षाविद् सहमत है कि सन् १८१३ वाले घोषणा-पत्र के विषय में जो विवाद अगले २० वर्षो में चला उनसे भारतीय भाषाओं को सामान्य रूप से क्षति हुई है। प्राच्य मतानुसार देशी भाषाओं की प्रचलित संस्थाओ को उचित प्रोत्साहन देना आवश्यक था जिनका वास्तविक सम्पर्क जनता से था। इनके विरुद्ध पाश्चात्य मतवालों का विचार था कि प्राच्य भाषाओं के स्कूलों को बन्द करके अंग्रेजी भापा के स्कूल खोले जायें। यह दल अंग्रेजी भाषा को ही शिक्षा का माध्यम बनाने के पक्ष मे था। इस विवाद का अन्त लार्ड मैकॉले के उस ऐतिहासिक लेख्य के द्वारा हुआ जिसके अनुसार अंग्रेजी भाषा के माध्यम से ही पाश्चात्य साहित्य और विज्ञानों के पढाने का अन्तिम निर्णय किया गया और इस प्रकार भारतीय भाषाओं के विकास की विरोधात्मक परिस्थितियों की एक और मुहर लगी।

प्राच्य-भाषाओ के सम्बन्ध मे मैकॉले के विचार कितने अपूर्ण, अप्रिय, कटु, धृटष्तापूर्ण तथा पूर्व धारणा के अनुसार थे यह निम्नाकित उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है*—

"सभी दलएक बात पर सहमत दिखायी देते है कि भारत के लोगों मे प्रचलित देशी भाषाओ (आधुनिक भारतीय भाषाओं) में साहित्यिक और वैज्ञानिक ज्ञान-कोष का अभाव है और वे इतनी असमर्थ और गॅवारू है कि जब तक उन्हे वाह्य श्रोत से सम्पन्न नहीं किया जाता, उनमे सुगमता मे किसी भी महत्वपूर्ण ग्रन्थ का अनुवाद नही हो सकता। यह भी सर्वमान्य मालूम होता है कि उन वर्गो के व्यक्तियों, जिनके पास उच्च शिक्षा प्राप्त करने के साधन है, की शिक्षा केवल ऐसी भाषाओ के माध्यम से पूर्ण हो सकती है जो उनकी भाषा न हो।"

मैकॉले के ये विचार पूर्वधारणा के अनुसार थे तथा अंग्रेजी भाषा के दम्भ में ही आकर वह ऐसा लिखने को बाध्य हुआ था। यदि उसने स्वय यहाँ की भाषाओं का अध्ययन किया होता तो उसके ये विचार कदापि नही उठते। लेकिन अभाग्यवश मैकॉले की दलील के आगे भारतीय मातृभाषाओं को उचित न्याय न मिला। लार्ड बेंटिक ने उसकी सिफारिशों को अक्षरशः मानते हुए ७ मार्च, १८३५ को अपना आदेश निकाला जिसके प्रमुख अंश निम्नाकित हैं :—

(क) शिक्षा-सम्बन्धी निश्चित राशि केवल अंग्रेजी शिक्षा पर व्यय की जायगी।

---

* All parties are agreed on one point that dialects commonly spoken among the natives of this part of India contain neither literary nor scientific information and are moreover so poor and rude that until they are enriched from some other quarter, it will not be easy to translate any valuable work into them. It seems to be admitted on all sides that the intellectual improvement of those classes of the people who have the means of pursuing higher studies can at present be effected only by means of some languages not vernacular amongst them." Quoted from A student's History of Education in India, Nurullah & Naik p. 59.

(ख) प्राच्य स्कूलो और कालेजो को बन्द तो न किया जायगा लेकिन आदेश की तिथि के बाद वहाँ की छात्रवृत्ति की व्यवस्था बन्द कर दी जायगी।

(ग) प्राच्य-साहित्य के प्रकाशन मे किसी प्रकार की रकम खर्च नही की जायगी। तथा

(घ) इन सुधारो से बचनेवाली सम्पूर्ण धन-राशि को भारतीय लोगो का अँग्रेजी भाषा के माध्यम द्वारा अग्रेजी साहित्य तथा विज्ञान का प्रचार करने मे व्यय किया जायगा।

मैकॉले की दलीले और सिफारिशे इस प्रकार शब्द चातुर्य्य से परिपूर्ण था कि उन्हे जल्द हटाया नही जा सकता था तथा वे तत्कालीन अग्रेजी विचारधारा का पोषक थी। मैकॉले के विचार की नीव इतनी दृढ पडी कि उसका वास्तविक प्रभाव आज भी भारतीय भाषा शिक्षण व्यवस्था पर स्थायी रूप से पडा तथा आज की बहुत-सी समस्याओ का प्रमुख कारण मैकॉले के ही विचार प्रमाणित हुए।

लार्ड ऑकलैड के समय मे प्राच्य मतवालों का आन्दोलन पुनः आरम्भ हुआ तथा उन्होने प्राच्यमतवालो को केवल मात्र सन्तुष्ट करने के लिये अल्प धनराशि का उपबन्ध किया। लेकिन सरकारी नौकरियों में अंग्रेजी को विशेष मान्यता मिलने के कारण स्वयं भारतीय भाषाओ को प्रोत्साहन नही मिल सका तथा हिन्दी ऐसी अवस्था में, उपेक्षित ही रही। अगले २० वर्षों मे अंग्रेजी भाषा को ही शिक्षा के माध्यम के रूप में स्वीकृत किया गया। ऐसी अवस्था में यह स्वाभाविक था कि जब राजभाषा के रूप मे अग्रेजी स्वीकृत हो चुकी थी तथा कचहरियों का भाषा भी परम्परागत फारसी भाषा ही रही तो हिन्दी का अध्ययन विद्यालयों में न होकर केवल साहित्यकों, विदेशी हिन्दी प्रेमियो एवं मिशनरियों के क्षेत्र तक सीमित रह गया।

१८५४ मे चार्ल्स वुड के घोषणा-पत्र में ब्रिटिश सरकार ने प्रथम बार यह अनुभव किया कि अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाने की व्यवस्था से भारतीय भाषाओं का अपार क्षति हुई है। नौकरियो की तलाश मे लोगों ने अंग्रेजी तो अवश्य सीख ली, लेकिन अपने को मातृभाषा के अध्ययन से सर्वथा वंचित रखा। इस सम्बन्ध में घोषणा-पत्र के शब्द अवलोकनीय है :—

"किसी भी सामान्य शिक्षा-प्रणाली मे अंग्रेजी भाषा की शिक्षा उसी क्षेत्र तक सीमित रहे जहाँ इसकी माँग हो; परन्तु ऐसी शिक्षा सर्वदा उस जिले का प्रचलित मातृभाषा के साथ सावधानीपूर्वक जोडी जाए जिससे उस भाषा के द्वारा साधारण शिक्षा दी जा सके। यद्यपि सामान्य शिक्षा प्राप्त करने के लिए अंग्रेजी का व्यवहार उन व्यक्तियो के लिए, जिन्होंने इसकी प्रचुर योग्यता प्राप्त कर ली है, एक सर्वोत्तम माध्यम है, परन्तु उन व्यक्तियों को, जो अंग्रेजी से अनभिज्ञ है अथवा जिन्हे अंग्रेजी का ज्ञान अधूरा है, मातृभाषा के द्वारा ही सामान्य शिक्षा दी जानी चाहिए।"*

इस घोषणा पत्र से भी भारतीय भाषाओ को कोई विशेष लाभ न हुआ, हाँ उनके अध्ययन और शिक्षण को आंशिक प्रोत्साहन अवश्य मिला। वुड के घोषणा पत्र के बाद शिक्षा के विभिन्न स्तरों मे जो परिस्थिति उत्पन्न हुयी उसका दिग्दर्शन भी आवश्यक है।

(क) विश्वविद्यालय तथा महाविद्यालय की शिक्षाः—जहाँ एक ओर घोषणा पत्र ने भारतीय भाषाओ के विकास के लिये प्राध्यापकों की नियुक्ति का स्पष्ट संकेत किया था वहाँ विश्वविद्यालयों ने कोई ठोस कदम नही उठाया इस पत्र के ५० वर्षो बाद भी १९०२ (Indian Universities Commission) के प्रतिवेदन से स्पष्ट है कि भारतीय भाषाओं को विश्वविद्यालयों के शिक्षाक्रम से या तो पूर्ण रूप से हटा दिया गया था या उन्हें, यदि कोई स्थान भी मिला तो, केवल गौण ही। घोषणापत्र की यह

* In any general system of education, English Language should be taught where there is a demand for it; but such instruction should always be combined with a careful attention to the study of the vernacular language of the district and with such general instruction as can be conveyed through that language; and while the English language continues to be made use of as by far the most perfect medium for the education of those persons who have acquired a sufficient knowledge of it to receive general instruction through it, the vernacular languages must be employed to teach the far larger classes who are ignorant of or imperfectly acquainted with English" Quoted from A students' History of Education in India, Nurullah & Naik, p. 115.

उत्कट इच्छा थी कि विश्वविद्यालय के स्तर पर भारतीय भाषाओं की समुचित शिक्षण-व्यवस्था करके शनैः-शनैः माध्यमिक स्तर पर भी मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम स्वीकृत किया जायगा। लेकिन वस्तु-स्थिति ऐसी न हो सकी। केवल मद्रास विश्वविद्यालय में भारतीय भाषा के अध्ययन की व्यवस्था की गयी। बम्बई में मातृभाषा के माध्यम से चिकित्सा-सम्बन्धी शिक्षा (Medical Courses) दी जाती रही लेकिन १८८० में इसे भी बन्द कर देना पड़ा, क्योंकि देश में अंग्रेजी का सर्वव्यापक प्रचार हो रहा था।

भारतीय विश्वविद्यालय कानून १६०४ के अनुसार भारतीय भाषाओं के अध्ययन के लिये थोड़ा अनुकूल वातावरण मिला। कलकत्ता और मद्रास विश्वविद्यालयों ने Intermediate स्तर में भारतीय भाषा को अनिवार्य विषय बना दिया तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय ने तो स्नातक परीक्षा के लिये भी भारतीय भाषा को एक अनिवार्य विषय के पद पर प्रतिष्ठित किया। लेकिन अन्य भारतीय विश्वविद्यालयों में भारतीय भाषाओं के शिक्षण की कोई व्यवस्था नहीं की गयी।

इस अवस्था की आलोचना करते हुए Calcutta University Commission ने जिसे, उसके अध्यक्ष के नाम पर Sadler Commission भी कहा जाता है, कहा है कि—

"यह हमारा दृढ़ विचार है कि वह शिक्षा-प्रणाली कुछ दोषपूर्ण अवश्य है जिसमें एक युवक शिक्षा समाप्ति के पश्चात् न अपनी मातृभाषा में शुद्ध-शुद्ध बोल सकता है और न शुद्ध लेखनी का प्रवाह ला सकता है। अतः यह बात विवाद हीन है कि अब से माध्यमिक विद्यालयों, इन्टरमीडिएट महाविद्यलयों तथा विश्वविद्यालयों में मातृभाषा के गम्भीर अध्ययन के प्रश्रय के लिए क्रमबद्ध चेष्टा की जानी चाहिए।"*

---

* "We are emphatically of opinion that there is something unsound in a system of education which leaves a young man; at the conclusion of his course, unable to speak or write his own mothertongue fluently and correctly. It is thus beyond controversy that a systemmatic effort must henceforth be made to promote the serious study of the vernaculars in secondary schools, Intermediate Colleges and in the unversity". Calcutta University Commission Report P 59-60.

लेकिन इनके महत्वपूर्ण सिफारिशो को सरकार ने कार्यान्वित नही किया तथा १९२१-२२ तक भी विश्वविद्यालयो मे भारतीय भाषाओं के अध्ययन और शिक्षण की व्यवस्था नही की गयी; मातृभाषा को माध्यम बनाना तो दूर की बात थी।

(ख) माध्यमिक शिक्षा में भारतीय भाषाओं का शिक्षण तथा मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने का प्रश्न :—

वुड के घोषणापत्र ने माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में यह स्पष्ट सकेत किया था कि भारतीय भाषाओं को शनैः-शनैः पाश्चात्य-साहित्य से अलंकृत किया जाय तथा शिक्षा का माध्यम भी उन्हें ही अपनाया जाय विशेषत: उस बड़े जन-समुदाय के लिए जो अंग्रेजी भाषा से सर्वथा अनभिज्ञ है। पत्र ने इस प्रकार Anglo vernacular के साथ ही vernacular schools की कल्पना की थी। यदि वुड के इन सुझावों और पवित्रविचारो का प्रशासकगण अनुसरण करते तो अगले वर्षो में माध्यमिक शिक्षा मातृभाषा ही द्वारा दी जाती और हिन्दी भाषी-क्षेत्रों में भी हिन्दी-शिक्षण की प्रगति द्रुतगति से होती; लेकिन व्यवस्था कुछ इस प्रकार की हुयी कि १८८२ में भी माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर भारतीय भाषाओ के शिक्षण की व्यवस्था प्रधानतया उपेक्षित ही रही।

हंटर आयोग ने इसका सर्वेक्षण करते हुए लिखा है कि तत्कालीन व्यवस्था में हाई स्कूल स्तर में सभी जगहें अंग्रेजी को ही माध्यम बनाया गया है। अंग्रजी का अध्ययन भी ऐसे स्तर से प्रारम्भ किया जाता है जब छात्र स्वयं अपनी मातृभाषा को भी ठीक तरह से समझ नहीं पाता।

स्पष्ट है कि १८८२ में प्रचलित व्यवस्था का वास्तविक उद्देश्य यह था कि लड़कों को अंग्रेजी की भरपूर शिक्षा दी जाय, न कि पाश्चात्य ज्ञान को अंग्रेजी तथा मातृभाषा के माध्यम से प्रसारित किया जाय। इस प्रकार वुड डेस्पैच की विपरित दिशा में (interpret) व्याख्या की गयी। और फलत: उसके उद्देश्य पूरे न हो सके।

लेकिन आश्चर्य की बात है कि हंटर आयोग ने भारतीय भाषा के शिक्षण तथा मातृभाषा को माध्यम बनाने के सम्बन्ध में अपना कोई मत प्रकट नहीं किया तथा केवल मौन रहना ही अपना कर्त्तव्य समझा। माध्यमिक स्तर क्या, मिडिल कक्षाओं के भी माध्यम के प्रश्न को वह स्पष्ट रूप से सुलझा नहीं सका। प्रतिवेदन की भाषा में ही आयोग के वास्तविक विचार

अवलाकनीय है :—"इस सम्बन्ध में हम कोई निश्चित सिफारिश नहीं करते परन्तु साथ ही उपरोक्त मन्तव्यों के आधार पर हम स्थानीय प्रशासन, विभाग तथा समान रूप से, साहाय्य और असाहाय्य प्राप्त माध्यमिक विद्यालयों के प्रबन्धको से इस पर विचार करने का अनुरोध करते हैं। यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका निर्णय स्थानीय परिस्थितियों पर अधिकाधिक निर्भर करता है और विद्यालयों के प्रबन्धको को इसके निर्णय की पूरी छूट दी जानी चाहिए चाहे किसा भी प्रदेश में शिक्षा-विभाग अपना जो भी दृष्टिकोण अपनावे।"*

एक प्रकार से आयोग ने अंग्रेजी के समर्थन के पक्ष में ही इस प्रश्न को टाल दिया।

फल यह हुआ कि १९०२ तक भी केवल मिडिल कक्षाओ मे ही मातृभाषा शिक्षा का माध्यम बनी रही। माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र मे मातृभाषा को कोई स्थान नही मिला, साथ ही भारतीय भाषाओं के शिक्षण की भी कोई ठोस व्यवस्था नही की गई। इस प्रकार अंग्रेजी की प्रधानता ने शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य और स्वरूप को ही बदल दिया। मातृभाषा के प्रति यह उदासीनता किसी भी परिस्थिति में सह्य नही थी और ऐसी उपेक्षा से न केवल भारतीय भाषाओ के विकास में विलम्ब और बाधा उत्पन्न हुई वरन् इससे तो देश-प्रेम की भावना के प्रादुर्भाव में भी काफी देर हुयी।

इस तरह विश्वविद्यालय तथा माध्यमिक शिक्षा के स्तर में भारतीय भाषाओं और विशेषत: मातृभाषा की अवहेलना और उपेक्षा से भारतीय युवकों का एक प्रकार से पाश्चात्यीकरण ही होता गया और "उन्होंने न केवल पोशाक, रीति-रिवाज तथा सामाजिक आचरण में अंग्रेजों का

---

* We do not put forward any definite recommendation on this subject but at the same time we commend its consideration, in the light of the observation above made, both to local Governments and Departments and in an equal degree to the manager of aided and unaided secondary schools. It is a question in the decision of which much must depend on local circumstances and hence the freest scope in dealing with it should be left to the managers of schools whatever be the view which the Department in any province may be disposed to adopt." Indian Education Commission report p 210-211.

अंधानुकरण किया। इस विश्वास में कि वे गुणों की नकल कर रहे है वे शान से शराब पीने लगे और गो-मांस भक्षण करने लगे। किसी भारतीय भाषा में बोलना या लिखना उनकी शान के विरुद्ध हो गया और वे इस प्रकार यथासाध्य अंग्रेजी का प्रयोग करने लगे। इस प्रकार इनमें से अधिकांश व्यक्तियों के मन में सभी प्राच्य एव प्राचीन आदर्शों के प्रति घृणा की भावना पैदा हो गयी।''*

भारतीय भद्रपुरुषों ने भी अंग्रेजी का खुलकर प्रयोग किया तथा ऐसी स्थिति उत्पन्न होने लगी जिसमें भारतीय संस्कृति को खुली चुनौती दी जाने लगी। इस खुली चुनौती को भारतीय सामाजिक सस्थाओं के कार्यक्रम से उचित जवाब तो मिल रहा था, और देश-प्रेमी यह माँग भी कर रहे थे कि मातृभाषा को ही शिक्षा का माध्यम बनाया जाय। लेकिन सरकारी नीति अपने निर्णय पर अटल थी और वह बार-बार उन भारतीय नेताओं का ही हवाला दे रही थी जो स्वयं भारतीय भाषाओं के स्थान पर अंग्रेजी भाषा के व्यापक शिक्षण की मांग कर रहे थे।

लार्ड कर्जन ने इस स्थिति से लाभ उठाया और अपनी घोषणा में स्पष्ट किया कि माध्यमिक स्तर पर अंग्रेजी ही शिक्षा का माध्यम रहेगी तथा केवल मिडिल कक्षाओं में मातृभाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में स्वीकार किया जायगा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि लार्ड कर्जन तक हिन्दी को भी सभी भारतीय भाषाओं की तरह गौण स्थान प्राप्त हुआ और तत्कालीन सरकार ने उसकी शिक्षण की उचित व्यवस्था न करके अनेक ऐसी समस्याओं को जन्म दिया जिसका फल हम आज भी भुगत रहे हैं और जिससे हिन्दी-शिक्षण को सर्वाधिक बाधा मिल रही है।

---

* They blindly imitated Englishmen in dress, manners, and outward social behaviour; they drank wine and ate beef rather proudly in the belief that they were copying western virtues. They thought it beneath their dignity to talk or write in an Indian language and used English as often as possible and most of all they developed a contempt for all Eastern or ancient ideals."

A students' History of Education, in Indian Nurullah and Naik, page 180

(ग) **भारतीय राष्ट्रवादियों द्वारा मातृभाषा द्वारा शिक्षा देने की माँग**:—यह एक हर्ष की बात है कि जहाँ एक ओर वृटिश शासन ने माध्यमिक और विश्वविद्यालय स्तर मे अंग्रेजी को ही शिक्षा का माध्यम बनाने की नीति और निर्णय स्पष्ट कर दिया था, वही भारतीय राष्ट्रीयतावाद का बीज भी अंकुरित हो रहा था। राष्ट्रवादी नेताओं ने भारतीय भाषाओ के अध्ययन को आवश्यक बताया तथा मातृभाषा द्वारा शिक्षा की योजना का आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। जनता (public), समाचारपत्र (press) तथा मंच (platform) के भाषण के माध्यम से हिन्दी भाषी क्षेत्रों मे यह पुकार जोर पकडने लगी। साहित्यकारों ने हिन्दी में अनेक उत्तम ग्रन्थों का अनुवाद किया, हिन्दी भाषा में ही विशाल साहित्य—काव्य, नाटक, गीत, छन्द, महाकाव्य गद्य आदि का सृजन हुआ। निस्सन्देह उस युग के साहित्यकारों ने जिस भावना से साहित्य को समृद्धशाली बनाया वह देशप्रेम, मातृभाषा प्रेम तथा राष्ट्रीयवाद का सजीव प्रतीक था। साहित्यकारो का ऐसा दल, सत्य ही, हिन्दी-शिक्षण के लिये प्रचुर सामग्री तैयार कर रहा था।

इन साहित्यकारो के अतिरिक्त जिन सामाजिक संस्थाओं ने भारतीय भाषाओं के उद्धार और विकास के लिये अग्रदूत का कार्य किया उनमें बंबई की Native Education Society का, तथा उत्तर भारत में आर्य-समाज का नाम उल्लेखनीय है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के हेतु गुरुकुल की स्थापना काँगड़ी में सन् १९०० में हुयी तथा यहाँ हिन्दी को ही शिक्षा का माध्यम स्वीकृत किया गया। गुरुकुल अपने कार्यक्रम से न केवल भारतीय संस्कृति की की रक्षा और पोषण में सफल हुआ वरन् हिन्दी शिक्षण को शैक्षिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान पर प्रतिष्ठित करने में समर्थ भी हुआ।

इसके अतिरिक्त भारतीय कांग्रेस की स्थापना के बाद यह प्रश्न वहाँ भी उठाया गया कि शिक्षा का माध्यम मातृभाषा को बनाया जाय। अंग्रेजी भाषा को माध्यम बनने का जो गौरवप्राप्त था, उसकी कटु आलोचना करते हुए महात्मा गान्धी ने भी देश के सामने उसकी धज्जी उड़ा दी और उन्होने कहा कि अविलम्ब देश मे हिन्दुस्तानी राष्ट्रीय भाषा के रूप में घोषित की जाय तथा मातृभाषा द्वारा शिक्षा दी जाय। राष्ट्रीय-आन्दोलन के फलस्वरूप "सभी स्तरों के राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों, राष्ट्रीय महाविद्यालयों तथा राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना देश के विभिन्न

भागों में की गयी।"* इसके फलस्वरूप अलीगढ़, गुजरात विद्यापीठ, काशी विद्यापीठ, बंगाल राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ तथा अनेक राष्ट्रीय विद्यालय भी खोले गये। इन विद्यालयों मे हिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी का माध्यम अपनाया गया और हिन्दी शिक्षण को विशेष अनुकूल वातावरण मिला।

आन्दोलनों मे सरकार की दमन-नीति से थोडी बाधा उत्पन्न हुयी और बहुत-से विद्यापीठ बन्द किये गये। लेकिन हिन्दी-शिक्षण के क्षेत्र मे आज भी इनके योगदान वास्तव मे महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय है। इसका सबसे बड़ा प्रभाव यह पडा कि हिन्दी-शिक्षण के लिये आवश्यक पृष्ठभूमि तैयार होने लगी। १७ मार्च, १९१५ में श्री रायानीगर ने भी Imperial legislative Council मे एक गैर सरकारी प्रस्ताव रखा था जिसके द्वारा सरकार से यह मांग की गयी थी कि माध्यमिक स्तर में भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाया जाय तथा अंग्रेजी को द्वितीय अनिवार्य भाषा के रूप मे पढ़ाया जाय। लेकिन प्रस्ताव स्वीकृत नही हो सका।

संक्षेप में १९२०-२१ तक भारत के सभी विश्वविद्यालयों में भारतीय भाषाओं के लिए शिक्षण की व्यवस्था नहीं के बराबर थी और विश्वविद्यालय तथा माध्यमिक स्तर पर अंग्रेजी को ही शिक्षा का एकमात्र माध्यम बनाया गया। लेकिन जैसा कि पहले कहा जा चुका है हिन्दी-शिक्षण की आवश्यक पृष्ठभूमि और अनुकूल वातावरण राष्ट्रीय-आन्दोलनों और उनके द्वारा स्थापित विद्यालयों में तैयार हो रहा था। १९१९ के (Govt. of India Act) के फलस्वरूप शासन-सम्बन्धी जो सुधार हुए, प्रान्तीय सरकारें संगठित हुयीं और भारतीय मन्त्रियों ने पद स्वीकार किया तब से शिक्षा के माध्यम सम्बन्धी प्रश्न के सुलझने का अनुकूल वातावरण भारतीय इतिहास मे मिलता है। इस समय से लेकर भारत सरकार के १९३५ ऐक्ट के अनुसार स्थापित प्रान्तीय सरकारों के समय तक किसी-न-किसी रूप से यह समस्या दूर होती गयी और अन्ततः माध्यमिक शिक्षा स्तर में मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम स्वीकार किया गया।

---

* National Universities, National colleges, and National schools of all grades were started in different parts of the country." History of the Indian National Congress, Vol I, (Pattabhii Sitaramayya) p. 132,

लेकिन सिद्धान्त रूप से प्रान्तीय सरकारों द्वारा यह स्वीकार करने पर भी कुछेक व्यावहारिक कठिनाइया उपस्थित हुयी जिनकी ओर हमारा ध्यान जाना अनिवार्य है।

(क) विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही अक्षुण्ण बनी रही, हा भारतीय भाषाओ के शिक्षण की व्यवस्था अनेक विश्वविद्यालयों ने की। इस क्रम में बहुत जगहे हिन्दी-विभाग खोले गये तथा महाविद्यालयों मे हिन्दी के प्राध्यापक नियुक्त किये गये। विश्वविद्यालय और महाविद्यालय में मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम स्वीकार नही करने से माध्यमिक स्तर मे भी इसे केवल मात्र सिद्धान्त रूप में प्रचलित रखा गया। व्यवहार रूप में अंग्रेजी की प्रधानता ने उसे धर दबाया।

(ख) सरकारी विभागो मे नौकरियों तथा प्रतियोगिता परीक्षाओ में अंग्रेजी की प्रधानता के कारण हिन्दी को उचित प्रोत्साहन नही मिल सका।

(ग) बहुभाषी क्षेत्रों (Multilingual areas) मे अर्थाभाव के कारण स्थानीय भाषा को शिक्षा का माध्यम नही बनाया जा सका। अतएव अंग्रेजी का प्राधान्य पूर्ववत् बना रहा।

(घ) हिन्दी भाषा में वैज्ञानिक पुस्तको का अभाव, अच्छी पाठ्यपुस्तकों की कमी, तकनीकी शब्दों के भाडाराभाव के कारण अंग्रेजी को विवश होकर अपनाना ही पड़ा।

(च) उत्तर प्रदेश की तरह हिन्दी-उर्दू भाषी क्षेत्रों में भाषा को माध्यम बनाने के साथ ही लिपि का भी प्रश्न सम्मिलित था जो आसानी से सुलझाया नही जा सका। हिन्दुस्तानी के नाम पर जिस भाषा को रूप दिया गया, लिपि का प्रश्न लेकर वह समाधान के बदले समस्या बनकर खड़ी हो गयी।

इन्ही कारणो से हिन्दी को उचित स्थान नही मिल सका। इस अवधि की समीक्षा करने पर यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया जा सकता है कि १९३७ के अन्त तक शिक्षा के माध्यम का प्रश्न समस्या बनकर खड़ी नही थी। वह प्रायः सुलझ चुकी थी। आवश्यकता केवल इस बात की थी कि विश्वविद्यालय स्तर में भी शिक्षा के माध्यम के प्रश्नों को छेड़ा जाय, हिन्दी में सभी विषयों की आधुनिकतम पुस्तकें लिखी जाय और उसका शब्द-भंडार बढ़ाया जाय। साथ ही भारतवर्ष के लिए एक राष्ट्रभाषा बनायी जाय।

१९३७ में प्रान्तीय सरकारो के संगठन के बाद स्वभावतः भारतीय भाषाओं को अभूतपूर्व प्रोत्साहन और प्रश्रय मिला। अहिन्दी क्षेत्रों के लिए भी मातृभाषा शिक्षा का माध्यम स्वीकृत की गयी। हिन्दी भाषी क्षेत्रों में यह प्रभाव दो रूपों में विस्तृत हुआ। प्रथमतः हिन्दी राष्ट्रभाषा के पद पर पदस्थापित होने के प्रयास करने लगी। साथ ही, शिक्षा का माध्यम बनने से इसके प्रसार में तीव्र रूप से प्रगति होने लगी।

विश्वविद्यालयों मे भारतीय भाषाओं के लिए विभाग खोले गये। हिन्दी का अध्ययन न केवल उतर भारत के हिन्दी क्षेत्रों मे ही प्रारम्भ हुआ वरन् दक्षिण भारत में भी कतिपय विश्वविद्यालयो ने इसके शिक्षण की व्यवस्था की। माध्यमिक स्तर में भी हिन्दी शिक्षण को विशेष प्रोत्साहन मिला। न केवल माध्यम के रूप में ही इसे स्वीकार किया गया वरन् हिन्दी के उच्च स्तर को भी दृष्टिगत रखते हुए पाठयक्रम को तदनुकूल संशोधित किया गया। बुनियादी शिक्षा के प्रयोग से शिक्षा के क्षेत्र में हिन्दी शिक्षण को विशेष बल मिला। इस प्रकार वृटिश शासन के अन्तिम चरण के भी समाप्त होने के समय माध्यमिक स्तर में हिन्दी न केवल शिक्षा का माध्यम प्रचलित थी वरन् उसका उच्च स्तर भी निर्धारित किया गया। यह स्वतंत्र भारत के लिये छोड़ा गया कि विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा का माध्यम हिन्दी या अन्य क्षेत्रीय भाषाएँ घोषित करे।

अगले पृष्ठों में हिन्दी की वर्त्तमान व्यवस्था का अध्ययन किया गया है। इसके पूर्व, उपरोक्त अध्ययन से हिन्दी शिक्षण की जिस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का दिग्दर्शन हुआ है उसके प्रमुख निष्कर्षो का विवरण वाछनीय होगा।

(क) अन्य भारतीय भाषाओं की तरह हिन्दी का भी प्रारम्भ में मिशनरियों द्वारा संचालित स्कूलों में स्थान मिला।

(ख) हिन्दी के अध्ययन को न केवल भारतीय वरन् विदेशी साहित्यकारों ने भी प्रमुख स्थान देकर अपनाया। विदेशी भाषा शास्त्रियों मे बहुत से डच, जर्मन, फ्रांसीसी एवं अंग्रेज विद्वानों ने भारतीय प्राचीन और अर्वाचीन भाषाओं तथा साहित्यों का अध्ययन किया। इन लोगों ने एक प्रकार से भारतीय विद्वानों को भी अध्ययन के लिये प्रोत्साहन और उत्प्रेरणा दी। इन्होंने शोध आदि के लिये पुराने ग्रन्थों का अध्ययन लोगों के सामने प्रस्तुत किया। इस आन्दोलन का फल यह हुआ कि सरकार द्वारा भारतीय भाषाओं को शिक्षण के अन्तर्गत नहीं लाने पर भी इसमें स्वतः काफी विकास और

प्रगति हुयी । इस प्रकार गैर-सरकारी तौर पर इसका पालन-पोषण होता गया । राष्ट्रीयता के प्रभाव मे भी राष्ट्रीय संस्थाएँ खौली गयी जिनमें हिन्दी को शिक्षण का माध्यम बनाया गया ।

(ग) ईस्ट इन्डिया कम्पनी के शासन से लेकर लर्ड कर्जन तक का सिहांवलोकन यह प्रमाणित करता है कि हिन्दी केवल मिडिल कक्षाओं तक ही हिन्दी क्षेत्रों के लिये शिक्षण का माध्यम मानी गयी ।

(घ) अंग्रंजों की अनुचित नीति के कारण ही १९००–१९४७ तक के लगभग ५० वर्षो के इतिहास में हिन्दी को शिक्षण संस्थाओ में शनैः-शनैः स्थान मिला । इसका फल यह हुआ कि स्वतत्र भारत को हिन्दी शिक्षण सम्बन्धी अनेक समस्याएँ अंग्रेजो से विरासत के रूप में मिली । कुछ का उल्लेख प्रसंगवश आवश्यक है:—

(i) शिक्षा का माध्यम स्वीकृत और प्रचलित होने पर भी हिन्दी को प्रमुख स्थान नही मिल सका, वह शिक्षा प्रणाली में गौण स्थान पर ही स्थिर रही ।

(ii) गणित, प्राकृतिक विज्ञान, एवम् अन्य विषयो पर हिन्दी मे पाठय पुस्तकों का अभाव बराबर से यह समस्या प्रस्तुत करता रहा कि यकायक हिन्दी को उस स्थान पर प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता ।

(iii) सरकारी विभागों तथा कार्यालयों में पत्राचार में अंग्रेजी भाषा का व्यवहार होता रहा । कचहरियों, रेलवे, डाक-तार, सेना, वायुयान विभाग तथा अन्य विभागों मे अंग्रेजी पूर्ववत प्रयोग मे आती गयी । इसका फल यह हुआ कि हिन्दी का अध्ययन एक पृथक विषय के रूप में भले ही किया गया, लेकिन वह सभी विषयों को एक तरह से पूर्णतया अनुप्राणित नहीं कर सकी ।

(iv) माध्यमिक परीक्षा के लिये अंग्रेजी के लिये २ प्रश्न पत्र तथा हिन्दी के लिये १ प्रश्न पत्र स्वयम् हिन्दी की प्रमुखता को निखरा नहीं पाया । इस प्रकार अंग्रेजी का प्राधान्य बना रहा । अच्छा तो यह होता कि हिन्दी को उच्च स्थान नहीं तो कम से कम वही स्थान दिया जाता ।

(v) विद्यालय के लेख्यों तथा अन्य कागजातों को अंग्रेजी भाषा में ही लिपिवद्ध किया गया इस प्रकार हिन्दी शिक्षण को क्षति पहुंची ।

(vi) बोलचाल में भी, साधारण शिष्ट-व्यवहारों में भी तथा अन्य सामाजिक उत्सवों पर अंग्रेजी का व्यवहार अक्षुण्ण रहा; हिन्दी केवल पुस्तकों की भाषा-सी मानी गयी ।

(vii) लेकिन हिन्दी शिक्षण को सबसे बड़ी क्षति प्रशिक्षण महाविद्यालया के सीमित दृष्टिकोण से हुयी जहाँ हिन्दी शिक्षण कला पर कोई ध्यान नही दिया गया। जहाँ प्रशिक्षण महाविद्यालयों में अन्य विषयों के लिये पद्धति-व्याख्याता नियुक्त होते रहे वहाँ हिन्दी शिक्षण के व्याख्याता के पद का कहीं सृजन नही हो सका। अतएव हिन्दी शिक्षण का कोई वैज्ञानिक और विधिवत अध्ययन प्रशिक्षण महाविद्यालयों में नही किया गया।

इन सब कारणों से स्वतंत्र भारत को हिन्दी सम्बन्धी अनेक समस्याओ को सामना करना पड़ रहा है जिनका विधिवत विश्लेषण नीचे के प्रकरण में किया जा रहा है।

स्वतन्त्र भारत में

स्वतंत्र भारत में हिन्दी हमारे सामने तीन रूपों में उपस्थित हुई है जिसपर विचार कर लेना वांछनीय होगा। वे हैं :—

(क) राष्ट्रभाषा हिन्दी।
(ख) क्षेत्रीय या राजभाषा हिन्दी।
(ग) मातृभाषा और शिक्षा का माध्यम हिन्दी।

(क) राष्ट्रभाषा हिन्दी :—जिन परिस्थतियों में भारतवर्ष में हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठापित करने का आन्दोलन बृटिश शासन काल में चल रहा था उसका सम्यक विवरण पहले प्रकरण में दिया जा चुका है। लेकिन पराधीन भारत में यह आन्दोलन सफल नहीं हो सका, हाँ, उसने अपना स्वस्थ और अनुकूल वातावरण अवश्य ही बना लिया था। अतएव स्वतन्त्र भारत का सबसे पहला कार्य यह था कि भारतीयों की राष्ट्रभाषा सम्बन्धी कल्पना साकार हो जाय।

स्वतंत्रता के बाद ही विश्वविद्यालय शिक्षा के पुनर्संगठन के लिये भारत सरकार ने विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग का संगठन किया। आयोग ने भारत की भाषा सम्बन्धी समस्याओं पर विद्वतापूर्ण प्रकाश डाला है। प्रतिवेदन में कहा गया कि जिस उग्ररूप में भारतवर्ष की भाषा-समस्या प्रस्तुत है उतनी अन्य कोई समस्या नहीं। आयोग में भारतीय शिक्षाविदों के अतिरिक्त कतिपय विदेशी शिक्षा मनीषी भी थे जिन्होंने सम्मिलित रूप से इस गुत्थी को सुलझाने का प्रयास किया है। यह प्रतिवेदन भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में एक अमर कृति है।

आयोग ने भारत की १७९ भाषाओं एवं ५४४ बोलियों का उल्लेख करते हुए कहा है कि इस विषमता के बीच भी हमें देश को एक सूत्र में बाँधने-वाली एक भाषा—जो राष्ट्रभाषा कही जा सके—को चुनकर अँगीकार कर लेना होगा। भरपूर छानबीन करने के बाद आयोग इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि भारत की राष्ट्रभाषा देवनागरी लिपि में हिन्दी को ही होना चाहिये।

"इसे भारतीय दूतावास, संघीय न्यायालय एवं भारतीय विधायकों की भाषा होनी चाहिये। यह एक लाभ होगा यदि इस भाषा का उपयोग प्रान्तीय उच्च न्यायालयों में भी क्षेत्रीय या प्रान्तीय भाषा या भाषाओं के साथ हो। हमें आशा है कि यह भाषा अन्तर्प्रान्तीय विचार विनिमय की, भारतीय स्तर की सोसाइटियों एवं संस्थाओं; एवं व्यापार एवं वाणिज्य की भाषा होगी।"*

भारत की प्रथम संविधान सभा (Constituent Assembly) ने विधान मे हिन्दी को राष्ट्रभाषा के स्थान पर सुशोभित कर दिया और इस प्रकार "जिस आन्दोलन को गाँधी जी एवं कुछेक अन्य लोगों ने इस शताब्दी के प्रथम दशक में प्रारम्भ कर गति दी थी वह लगभग ४० वर्षों तक निर्बाध रूप से चलता रहा तथा वह केवल १९४९ में ही, संविधान सभा द्वारा स्थायी रूप से सुलझाया जा सका।"* संविधान के निर्देशों के अनुसार परिवर्तन काल के लिये १५ वर्षों का समय दिया गया अर्थात् यह निर्णय स्पष्ट हुआ कि १९६५ के बाद सभी राष्ट्रीय काम राष्ट्रभाषा मे ही किये जायेंगे।

---

* "It should be official language of the Indian legislature, of the Federal judiciary, and of the Indian diplomacy. It will be an advantage if this language is used in the Provincial High Courts along with the Regional or Provincial language or languages We hope that it will be the language of inter-provincial inter-course, of all societies and institution of an All-India character and of business and commerce."

—*University Education Commission Report, p. 314*

"The ball which Gandhiji and a few others had set rolling in the first decade of this century continued to be in full play for about forty years till it was set at rest by the Constituent Assembly in 1949.

"*The Educational philosophy of Mahatma Gandhi, M. S. Patel, p. 217*

राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी पर एक स्वतंत्र अध्याय अगले पृष्ठों में दिया गया है। यहाँ केवल शासना देश द्वारा लिये गये विभिन्न महत्वपूर्ण निर्णयों का ही उल्लेख किया जा रहा है जिनसे हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर सबल और सुदृढ बनाया जा सके।

(१) **हिन्दी लिपि का सुधार :**—सम्पूर्ण भारत में हिन्दी की लिपि में एकरूपता रखने के लिये अगस्त १९५९ मे सभी राज्यों के शिक्षामंत्रियों का एक सम्मेलन भारत सरकार द्वारा बुलाया गया था जहाँ वर्तमान हिन्दी लिपि में कतिपय संशोधन स्वीकृत हुए। राज्य सरकारों ने इस संशोधित लिपि को स्वीकार कर लिया है।

विहार सरकार की नियुक्ति (राजभाषा) विभाग ने सभी विभागों के नाम अपने पत्रांक ज्ञाप सं० ३/ हि ३-१०१५/५९ ए-२२६० दिनांक १७-२-६० के द्वारा लिपि सुधार सम्बन्धी सूचना दी जो ज्यों की त्यों यहाँ दी जा रही है।

> "आदेशानुसार अधोहस्ताक्षरी को कहना है कि देवनागरी लिपि में सुधार लाने के लिये भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने राज्य के शिक्षा मंत्रियों की एक कान्फ्रेन्स ८ और ९ अगस्त १९५९ को बुलाई थी। शिक्षा-मन्त्रियों की कानफ्रेन्स मे देवनागरी लिपि में कतिपय संशोधन भारत सरकार द्वारा स्वीकृत हुए हैं। भारत सरकार के सुझाव पर एकरूपता रखने के लिये, राज्य सरकार ने भी इस संशोधित लिपि को अपनाने का निश्चय किया है। हिन्दी वर्णमाला के यथा सशोधित रूप की एक प्रतिलिपि अनुलग्न है।
>
> आपसे अनुरोध है कि अब से इस संशोधित लिपि का ही व्यवहार करें तथा अपने अधीनस्थ सभी सरकारी कार्यालयों में इसके प्रयोग के लिये आदेश दे दें।
>
> वित्त-विभाग से अनुरोध है कि सरकारी प्रेस को ऐसा आदेश दें कि सभी सरकारी प्रकाशनों में इस संशोशित हिन्दी वर्णमाला का ही भविष्य में प्रयोग हो।
>
> जन-सम्पर्क निर्देशक राज्य के सभी प्रकाशकों, समाचार पत्रों के मालिकों छापाखाने आदि से कृपया अनुरोध करने का कष्ट करें कि यथाशीघ्र संशोधित देवनागरी लिपि ही अब प्रयोग में लायी जाय।"

संशोधित हिन्दी वर्णमाला

स्वर— अ, आ, इ, ई, उ,
ऊ ऋ, लृ, ए, ऐ,
ओ, औ, अं, अः

मात्राएँ— ा, ि, ी, ु, ृ, े, ै
ो, ौ, ं, ः,

व्यंजन—(कण्ठ्य)	क	ख	ग	घ	ङ
(तालव्य)	च	छ	ज	झ	ञ
(मूर्धन्य)	ट	ठ	ड	ढ	ण
(दन्त्य)	त	थ	द	ध	न
(ओष्ठ्य)	प	फ	ब	भ	म
(अन्तस्था)	य	र	ल	व	
(ऊष्मा)	श	ष	स	ह	
	ड़	ढ़	क्ष	त्र	ज्ञ

अङ्क— १, २, ३, ४, ५, ६,
७, ८, ९, ०,

स्पष्टीकरण :—हिन्दी में यह (दीर्घ ॠ) का यह प्रयोग नहीं होता, अतः इसे स्वरों में सम्मिलित नही किया गया है।

संयुक्ताक्षर :—(क) खड़ी पाई वाले व्यंजन

ख, ग, घ, च, ज, ञ, त्र, ण, त, थ
ध, न, प, ब, भ, म, य, ल, व, श,
ष, क्ष, ज्ञ।

खडी पाई वाले व्यंजनों का संयुक्त खड़ी पाई को हटाकर ही बनाया जाना चाहिये । यथा——

ख्याति, लग्न, विघ्न, कच्चा, छज्जा, व्यंजन
नगण्य, कुत्ता, पथ्य, ध्वनि, न्याय, प्याम,
डिब्बा, सभ्य, रम्य, शय्या,
उल्लेख, व्यास, श्लोक, राष्ट्रीय, स्वीकृत, यक्ष्मा ।

(ख) क, फ के संयुक्ताक्षर बनाने का वर्त्तमान ढग ही कायम रहेगा ।
संयुक्त, पक्का, फुप्फुस ।

(ग) ङ, घ, ट, ठ, ड, ढ और द के संयुक्ताक्षर हल चिन्ह लगाकर बनायें जायं । यथा——
वाङ्मय, लट्टू, बुड्ढा, विद्या आदि ।

(२) **राष्ट्रभाषा की इकाइयों की स्थापना :** —प्राय: सभी राज्य सरकारों ने अपने यहाँ राष्ट्रभाषा विभाग की स्थापना कर ली है जिससे वहां के काम का हिन्दी में सुचारूप से चलाने के लिये उचित वातावरण तैयार कर लें । इस विभाग का काम मुख्यत: यह है :—

(i) अहिन्दी भाषियों के लिये हिन्दी सीखने का प्रबन्ध ।

(ii) हिन्दी में पत्राचार, टिप्पणी, प्रारूप आदि लिखने की प्रशिक्षण-व्यवस्था और परीक्षा ।

(iii) राजकीय प्रयोग में आनेवाले हिन्दी शब्दों का संकलन और प्रचार ।

हिन्दी समितियों का संगठन किया गया है जो नियमित रूप से सरकार को हिन्दी की प्रगति का प्रतिवेदन प्रस्तुत किया करती है ।

विहार ने राष्ट्रभाषा परिषद की स्थापना की है जिसका प्रमुख उद्देश्य उसके नाम से ही विदित है ।

(३) **शब्द-भांडार-वृद्धि के कार्यक्रम :**—भारत सरकार ने शिक्षामंत्रालय के अन्तर्गत शब्दावली इकाई (Vocabulary unit) स्थापित कर ली है जो सामान्य प्रशासकीय, तकनीकी, वैज्ञानिक तथा अन्य प्राविधिक शब्दों का हिन्दीकरण कर रही है ।

(४) **राष्ट्रभाषा-शिक्षण-व्यवस्था :**—अहिन्दी भाषियों के प्राथमिक वर्ग की उच्च श्रेणियों में, माध्यमिक विद्यालय। मे तथा विश्वविद्यालयों में राष्ट्र भाषा शिक्षण का व्यापक प्रबन्ध हो रहा है। केरल मे छठे वर्ग से हिन्दी राष्ट्र भाषा के रूप में पढ़ायी जाती है।

(५) **ग्रन्थों का अनुवाद :**—भारत सरकार तथा राज्य सरकारें भारतीय भाषाओं के ग्रन्थों का हिन्दी तथा हिन्दी भाषा के ग्रन्थों का अन्य भाषाओं मे अनुवाद करवा रही है।

क्षेत्रीय या राजभाषा हिन्दी

हिन्दी क्षेत्रीय भाषा भी है। संविधान की ८वी अनुसूची के अन्तर्गत १४ भाषाओं मे इसे भा स्थान दिया गया है। बिहार, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, दिल्ली, एवं हिमाचल प्रदेश मे यह क्षेत्रीय भाषा के रूप मे स्वीकृत है। पंजाब ने भी पंजाबी के समकक्ष इसे भी क्षेत्रीय भाषा की मान्यता दी है। इन राज्यों में यह राजभाषा के रूप में भी मानी गयी है तथा यहाँ के सभी सरकारी कार्य हिन्दी में हुआ करने है। अंग्रेजी में पत्राचार केवल भारत सरकार, महालेखापाल तथा अन्य अहिन्दी भाषी राज्यो से होता है वह भी केवल अस्थायी रूप से। ज्यों-ज्यों राज्य हिन्दी को अपनाते जायेंगे त्यों-त्यों उनका अन्तर्राज्य पत्राचार राष्ट्रभाषा हिन्दी में होता जायेगा। अभा बिहार का राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तरप्रदेश राज्यों से हिन्दी में पत्राचार प्रारम्भ हो गया है।

संभवतः ऐसी कल्पना सामान्यतः लोगों में होगी कि हिन्दा भाषी क्षत्रों में हिन्दी मातृभाषा होने के कारण राजभाषा के माध्यम के लिये किसी प्रकार की कठिनाई उपस्थित नहीं होती होगी। लेकिन वास्तविकता यह है आज राष्ट्रभाषा को लागू हुए लगभग १० वर्ष से अधिक हो जाने के बाद भी कार्यकर्ताओं को हिन्दी अपनाने में अनेक कठिनाइयाँ हो रही हैं। पत्राचार कार्यालय की संचिकाओं में टिप्पणी, अनुशंसायें आदि देने मे न केवल कार्यालय सहायकों को ही वरन् पदाधिकारियो को भी अपार कठिनाई अनुभूत हो रही है। लोगों की आम धारणा है कि अंग्रेजी की तरह हिन्दी में वह शैली नहीं आती, भावों का वह वेग नही आता। केवल अंग्रेजी का अनुवाद कर देने से ही भाव प्रकट नहीं होते। इस प्रकार हिन्दी की यह विवशता उन्हें अंग्रेजा का सहारा लेने को बाध्य करती है लेकिन शासन इस ओर सचेष्ट है और अविलम्ब ही हिन्दी को पूर्णरूप से राजभाषा के रूप में ग्रहण किया जा रहा है।

इस सम्बन्ध मे बिहार सरकार ने जो आदेश जारी किया है उसकी एक प्रतिलिपि यहाँ दी जा रही है जिससे स्थिति स्वतः स्पष्ट होगी ।

नियुक्ति (राजभाषा) विभाग द्वारा सभी विभागों के नाम लिखे गये पत्र (सं० ३/३०१०२७-५८-७१६६ दिनांक २४-५-६०) की प्रतिलिपि :—

विषय :—पहला जून, १९६० से सभी काम-काज हिन्दी में करने का निर्णय ।

"अपने पत्र सं० २८४७ दिनांक २७-२-६० के क्रम मे और उसके स्मरणस्वरूप निदेशानुसार, निम्नलिखित व्योरेवार आदेश जारी किये जाते हैं :—

(क) सचिवालय स्तर पर :—(१) १ जून, १९६० से सभी विभागों और विभागाध्यक्ष के कार्यालयों में सभी काम हिन्दी में ही किये जायेंगे । सभी फाइलों पर हिन्दी मे ही टिप्पणियाँ लिखी जायगी और उन पर आदेश इत्यादि भी हिन्दी मे दिये जायेंगे ।

(२) इन फाइलों की पृष्ठभूमि से जितने भी पत्राचार निर्गत होंगे सभी हिन्दी में होंगे ।

(३) आगत पत्रों में पत्र वर्तमान आदेशों के प्रतिकूल अंग्रेजी में हो वे अनादेय होंगे ।

(४) सभी संलेख निरपवाद रूप से ही हिन्दी में प्रस्तुत होंगे ।

अपवाद :—जिन विषयों का भारत सरकार से अथवा महालेखापाल से साक्षात् संबन्ध हो उन विषयों की फाइल अंग्रेजी मे उपकल्पित हो सकती है ताकि इनका पृष्ठभूमि में अंग्रेजी पत्राचार प्रस्तुत करते समय अंग्रेजी की टिप्पणी सहायक सिद्ध हो एवं किसी कठिनाई का सामना करना न पड़े । अन्तर राज्य (Inter-state) पत्राचार उन्हीं राज्यों से हिन्दी में होगा जिन्होंने बिहार से हिन्दी के सम्बन्ध में एक संविदा की है । यथा—उत्तर-प्रदेश, राजस्थान और मध्य प्रदेश । अन्य राज्यों से अभी अंग्रेजी पत्राचार ही जारी रहेगा ।

(ख) जिलों में :—(१) आयुक्त एवं जिला पदाधिकारियों के आफिस में कार्य निष्पादन क्रम में यदि फाइलें रखी जाती हों तो इन सभी फाइलों की भाषा हिन्दी होगी ।

(२) उन सभी आफिस से निर्गत होनेवाले तथा निम्नस्तर से आगत पत्राचार भी हिन्दी में ही होंगे।

(३) इन आदेशों के प्रतिकूल आगत और निर्गत अंग्रेजी पत्राचार अनादेय होंगे।

अपवाद :—अंश "क" में उल्लिखित अपवाद यहाँ भी लागू होगा।

(ग) पुलिस विभाग में :—

(१) प्राथमिक (first information Report) केस डायरी दण्ड प्रक्रिया संहिता धारा १७१ और १७२ के अधीन रिपोर्ट स्पेशल रिपोर्ट इत्यादि नि पवाद रूप से हिन्दी में लिखी जायँगी।

पर्यवेक्षण और परीक्षण नोट भी हिन्दी में ही होंगे।

अपवाद :—जो पत्राचार भारत सरकार से उपक्रान्त हुए हों उनके उत्तर अथवा उनसे संबंध पत्राचार तथा महालेखा पाल से पत्राचार अंग्रेजी मे हो सकते है। अन्तर राज्य (Inter-state) पत्राचार उन्हीं राज्यों से हिन्दी मे होगा जिन्होंने बिहार से हिन्दी के सम्बन्ध में एक संविदा की है यथा उत्तर-प्रदेश, राजस्थान और मध्य प्रदेश। अन्य राज्यो से अभी अंग्रेजी पत्राचार ही जारी रहेगा।

(घ) न्यायालयों से पत्राचार :—

बिहार लैंगवेज आफ ला ऐक्ट अभी प्रवृत्त नहीं हुआ है। अतः प्रवृत्ति के पूर्व तक न्यायाधीशों से पत्राचार अभी अंग्रेजी में ही किये जाते रहेंगे।

अनुरोध है कि उपर्युक्त सभी आदेश सबको जता दिये जायँ और १ली जून से बिना चूक इनका पालन हो। आदेशोल्लंघन की स्थिति में सरकार सख्ती बरतने को बाध्य होगी।"

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने भी इस सम्बन्ध में अपना विचार व्यक्त किया था कि जिन क्षेत्रों में स्थानीय भाषाएँ प्रौढ़ है और संविधान के अनुकूल क्षेत्रीय भाषा घोषित हो चुकी है उन्हें सम्पन्न बनाना राज्य शासन का एक प्रमुख कर्त्तव्य होना चाहिये। वहाँ की कचहरियों, कार्यालयों, न्यायालयों एवं जनता के सम्पर्क वाले अन्य स्थलों में इनका उपयोग हृदय खोलकर करना चाहिये।

इस दृष्टि से भी राज्य सरकार एवं संघीय सरकार का यह कर्त्तव्य है कि हिन्दी क्षेत्र में हिन्दी के सम्पन्न होने के लिये प्रत्येक तरह के रचनात्मक कार्यक्रम अपनायें। अन्य भाषाओं के उत्कृष्ट ग्रन्थों का हिन्दी भाषा में अनुवाद तथा ख्याति प्राप्त लेखकों एवं कवियों का यथा समय उचित सम्मान एवं उन्हें उचित रूप में पुरस्कृत करने की योजना कार्यान्वित करनी चाहिये। हिन्दी भाषा के उत्तम ग्रन्थों का अन्य भारतीय भाषाओं मे अनुवाद करवा कर उनसे प्रचार का उचित प्रबन्ध करने से अहिन्दी क्षेत्र के लोग भी हिन्दी की विशेषताओं से सदा परिचित होते रहेंगे। बिहार की राष्ट्रभाषा परिषद इस प्रकार के कार्यक्रम को प्रति वर्ष अपना कर हिन्दी के उत्थान मे योगदान दे रही है।

उत्तरप्रदेश शासन ने अपने यहाँ हिन्दी समिति की स्थापना की है जिसने हिन्दी "वाङ्मय के सभी अगों मे पुस्तकों का लेखन और प्रकाशन अपने हाथ मे ले लिया है। इसके लिए एक पंचवर्षीय योजना बनायी गयी है जिसके अनुसार ५ वर्षों में ३०० पुस्तकों का प्रकाशन होगा। इस योजना के अंतर्गत प्राय: वे सब विषय ले लिए गये हैं जिनपर संसार के किसी भी उन्नतिशील साहित्य में ग्रंथ प्राप्त हैं।"*

(ग) *शिक्षा का माध्यम*

हिन्दी न केवल राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन है या राजभाषा के रूप मे स्वीकार की गयी है वह भारत के एक बड़े जन समुदाय की मातृभाषा भी है।

शिक्षा के माध्यम के प्रश्नपर सभी विद्वान सहमत हैं कि कोई भी विदेशी भाषा शिक्षा का माध्यम कदापि नहीं हो सकती। इस सम्बन्ध में यह उद्धरण आवश्यक है—"गान्धी जी का विश्वास है कि जो शिक्षा हम विद्यालयों मे पाते है तथा मां का दूध पीते हैं उनके ग्रहण और प्रकटीकरण में एक प्रकार की अनुरूपता होनी चाहिये। इस अनुरूपता को एक विदेशी माध्यम नष्ट कर देता है। और जो भी, चाहे किसी प्रकार के स्वच्छ विचार से, इस विनाश का साथ देता है, देश का शत्रु है। विदेशी माध्यम ने अंग्रेजी पद्धति से शिक्षित वर्गों और सामान्य

* 'भारतीय ज्योतिष' (प्रकाशन ब्यूरो, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश) के प्रकाशकीय से उद्धृत।

जन समुदाय की भिन्नता को और भी स्पष्ट कर दिया है।"* अतएव शिक्षा के सभी स्तरों में मातृभाषा द्वारा ही शिक्षा दी जानी चाहिये।

(क) प्राथमिक शिक्षा :—मातृभाषा के रूप में हिन्दी प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम पहले से ही स्वीकृत है। भाषा के विकास क्रम में खड़ी बोली हिन्दी के अतिरिक्त आज क्षेत्रीय और स्थानीय बोलियां भी भाषा का रूप ग्रहण कर रही हैं तथा वहां के लोगों की पुकार है कि बालकों की शिक्षा का माध्यम मातृभाषा स्वीकार की जाय। चूंकि हिन्दी क्षेत्रों में ही हिन्दी के कई विकसित रूप बोलियों के क्रम से भाषा बनती जा रही हैं उन्हें ही माध्यम बनाया जाना चाहिये। इस सम्बन्ध में कहा जाता है कि बिहारी हिन्दी के ही तीन रूप है—भोजपुरी हिन्दी, मगही हिन्दी, मैथिली हिन्दी—तो इन्हें ही प्राथमिक स्कूलों मे विशेषत: नीचे के वर्गों में शिक्षा का माध्यम बनाया जाय। भाषा-प्रेमियों और लेखकों के प्रयास से अब भोजपुरी-साहित्य-परिषद, मगही-साहित्य-परिषद तथा मैथिली-भाषा-परिवार आदि संस्थाएँ चल रही हैं और उनमें अच्छे साहित्य का सृजन करके उन्हें सुसम्पन्न और अलंकृत किया जा रहा है। इस माँग को हम उपेक्षित नहीं रख सकते। इस प्रकार बोलियों और उपभाषाओं का विकास सभी राज्यों में हो रहा है। अतएव ऐसी माँग सभी जगह हो रही है। भाषा के विकास में हमारा यह भी एक योगदान होगा कि उन्हें उत्तरोत्तर साहित्य का रूप ग्रहण करने दें। शिक्षा-विभाग के आदेशानुसार निम्न वर्गों में यथासंभव बालक के घर की बोली में ही पढ़ाना उचित माना गया है। ऊपर के वर्गों में हिन्दी को ही माध्यम बनाया जाता है और बनाया जाना भी चाहिये।

---

* "There must be a correspondence, Gandhiji asserts, between the impressions and expressions we receive with our mother's milk and the education we receive at school. A foreign medium destroys the correspondence and whoever helps this destruction however pure his motives, is an enemy of his country. The foreign medium has created an unnatural gulf between the English educated classes and the masses at large." The Educational Philosophy of Mahatma Gandhi, M.S. Patel, p 226-227.

(ख) **माध्यमिक शिक्षा :**—इसमें किसी प्रकार का विवाद नहा कि मातृभाषा को ही शिक्षा का माध्यम होना चाहिये। श्री लौरेन्स (D. H. Lawrence) ने कहा है कि "मनोविज्ञान के अनुसार यह केवल मात्र् बर्बरता है कि लाखों व्यक्तियों के गले के नीचे अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन उतार दिया जाय जब कि उनकी अंग्रेजी के प्रति कोई समानता नही है।" माध्यमिक शिक्षा स्तर में बालकों की मातृभाषा को ही शिक्षा का माध्यम बृटिश शासन काल में ही स्वीकार कर लिया गया था लेकिन व्यावहारिक कठिनाइया के कारण अपेक्षित प्रगति नही हो सकी। स्वतंत्रता के बाद इस क्षेत्र मे अतीव प्रगति हुयी विशेषतः माध्यमिक शिक्षा आयोग के प्रतिवेदन के पश्चात् जिसे मुदालियर आयोग भी कहते है।

आयोग ने इस प्रश्न को सुलझाते हुए कहा कि हिन्दी भाषी विद्यार्थियों के लिये इस माध्यम से अध्यापन में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होगी। अहिन्दी भाषियों के लिये भी, हिन्दी क्षेत्रों में, राष्ट्रभाषा के अध्ययन की समुचित व्यवस्था से किसी प्रकार की असुविधा होने की संभावना नही है।

आज इस विषय को और भी स्पष्ट करने के लिये नवीन पाठ्य-पुस्तकें हिन्दी भाषा में उपलब्ध की जा रही है; नये-नये शब्दों के निर्माण से पुस्तकों की रचना में किसी प्रकार का व्यवधान नही दीख पडता है। इसके अतिरिक्त हिन्दी शिक्षण पद्धति को मनोवैज्ञानिक आधार दे देने से हिन्दी शिक्षण मे भी पर्याप्त प्रगति दीख पडती है। प्रशिक्षण महाविद्यालयों में अब हिन्दी-पद्धति के प्राख्याता के पदों का सृजन होता जा रहा है तथा शोधों के पश्चात् इस पद्धति को और भी प्रौढ, प्रभावपूर्ण तथा प्रभापूर्ण बनाया जा रहा है।

आशा की जाती है कि कालान्तर में इसकी बाधायें स्वतः दूर होती जायेंगी।

(ग) **विश्वविद्यालय की शिक्षा :**—विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा में बालक की मातृभाषा को क्या स्थान दिया जाय और हिन्दी क्षेत्रों में हिन्दी शिक्षण के लिये क्या किया जाय, इस विषय में काफी मतभेद उत्पन्न हुए। वास्तव में, स्वतंत्र भारत के लिये यही प्रश्न बृटिश शासक हल करने को छोड़ गये थे (क्योंकि माध्यमिक स्तर में मातृभाषा पहले ही माध्यम स्वीकृत हो चुकी थी)।

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने इस विषय का गंभीरतापूर्वक विवेचन किया है जो निम्नांकित पँक्तियों से इस प्रकार स्पष्ट होता है—"पहले

की तरह अंग्रेजी अब राजभाषा के रूप में रखी नही जा सकती। अंग्रेजी का व्यवहार जनता का दो राष्ट्रों में विभक्त कर देता है...यह प्रजातंत्र का निषेध है।"*

अतएव आयोग ने अपना स्पष्ट सुझाव दिया कि क्षेत्रीय भाषा को ही विश्वविद्यालय स्तर में शिक्षा का माध्यम बनाना चाहिये। लेकिन आयोग की इस सिफारिश को कार्यान्वित करने में अनेक कठिनाइयां थी जिनमें मुख्यतः क्षेत्रीय भाषाओं की विवशता एवं उनमें सभी विषयों को पूर्णतया प्रकाशित करने की क्षमता का अभाव था। अंग्रेजी को यकायक विश्व-विद्यालय के माध्यम से हटाने मे अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित हुयीं और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (University Grants Commission) ने १९५५ में एक समिति का संगठन किया जिसे यह कार्यभार सापा गया कि विश्वविद्यालयों में शिक्षा के माध्यम को निश्चित करने सम्बन्धी सुझाव दे तथा साथ ही यह भी बताये कि अंग्रेजी को किस प्रकार का स्थान दिया जाय।

इस समिति ने, जिसके अध्यक्ष श्री एच० एन० कुंजरू थे, यह अनुभव किया कि हमारी शैक्षिक रूचियों के अन्तर्गत ही यह स्पष्ट है कि क्षेत्रीय भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने के उपरान्त भी अंग्रेजी का शिक्षण द्वितीय भाषा के रूप में ही विश्वविद्यालय में रखा जाय।

फरवरी २६, १९५९ को समिति के प्रतिवेदन पर राज्य-सभा ने विचार किया और भारत सरकार ने यह स्वीकार किया कि विश्वविद्यालय शिक्षा का माध्यम क्षेत्रीय भाषा हो और अंग्रेजी को यकाएक न हटा कर शनैः शनैः हटाया जाय तथा इस संक्रमण काल में क्षेत्रीय भाषाओं को हर तरह से पूण, व्यापक, अलंकृत एवं सुसम्पन्न बनाया जाना चाहिये।

इस निर्णय के फलस्वरूप आज विश्वविद्यालय की शिक्षा के माध्यम के रूप में पटना, बिहार, सागर, नागपुर, राजस्थान आदि विश्वविद्यालयों ने हिन्दी को ही स्वीकार किया है। अभी-अभी लखनऊ विश्वविद्यालय ने भी १९६४ तक कला, विज्ञान और वाणिज्य विषयों के स्नातक कक्षाओं में प्रश्नोत्तर

---

*"English cannot continue to occupy the place of state language as in the past. The use of English as such divides the people into two nations. This is a negation of democracy"
University Education commision Report, p. 316.

अंग्रेजी या हिन्दी किसी भी विषय में लिखने की छूट देने का निर्णय किया है। उसके बाद हिन्दी अनिवार्य रूप से लागू हो जायगी।

इस प्रकार भारतीयों की एक बहुत बड़ी कल्पना साकार हो उठी है तथा एक ऐतिहासिक आवश्यकता भी पूरी हुयी है। और भारतीयो ने एक संवेगात्मक, शैक्षिक एवं राष्ट्रीय प्रश्न को बहुत ही आसानी से सुलझा दिया है।

उपरोक्त ऐतिहासिक सिंहावलोकन का एकमात्र उद्देश्य यह रहा है कि हिन्दी शिक्षक और छात्र को अपने अध्ययन के विषय का स्पष्ट ऐतिहासिक ज्ञान हो। साथ ही यह भी लक्ष्य रहा है कि वह अपने शिक्षण क्रम में हिन्दी के व्यापक क्षेत्र, राष्ट्रभाषा, राजभाषा एवं शिक्षा के माध्यम, से भी पूर्णतया अवगत हो जाये। उन्हे हिन्दी के गुणों एवं कमजोरियो, विशेषताओं एवं विवशताओं का भी सम्यक् ज्ञान हो जाय। क्योंकि हमारा विश्वास है कि केवल ऐसी ही पूर्वपीठिका में हिन्दी का शिक्षण सफल होगा तथा हिन्दी का शिक्षक इस युग उपेक्षित विषय के वास्तविक अध्ययन में पूर्ण मनोयोग दे सकेगा जिसके लिये पूर्ण समीक्षात्मक विवेचन और मार्ग प्रदर्शन पुस्तक के अगले अध्यायों में किया गया है।

अध्याय ४

स्वतन्त्र भारत में हिन्दी

(राष्ट्रभाषा के रूप में)

किसी भी स्वतन्त्र देश के लिये अपना संविधान, अपनी शासन प्रणाली, अपनी संस्कृति, अपना रहन-सहन, खान-पान के तौर-तरीके और अपनी एक राष्ट्रभाषा होती है और होनी चाहिये। भारतवर्ष को भी स्वतंत्र हुए आज चौदह वर्ष बीत गये। बृटिश शासन-काल में यहाँ की राजभाषा के पद पर अंग्रेजी प्रतिष्ठित थी। भारतवासियों ने इस सम्बन्ध में हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने के लिये जो अथक आन्दोलन (लेकिन सभी शान्तिपूर्ण) किया, वह स्वयं स्वतन्त्रता-संग्राम का एक विशेष कार्यक्रम था, उसका एक प्रमुख अंग। स्वतन्त्र होने के बाद यह स्वप्न साकार हुआ कि देश अपनी एक राष्ट्रभाषा निश्चित कर सकी। हिन्दी ही राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित की गयी और देश ने इसे ही राष्ट्रभाषा के नाम से घोषित किया। संविधान मे इसकी विधिवत घोषणा २६ जनवरी, १९५० को की गयी।

लेकिन जिन महत्वपूर्ण कारणों और परिस्थितियों मे हिन्दी राष्ट्रभाषा हुयी, इसका अध्ययन अत्यन्त ही रुचिपूर्ण और सरस है। हिन्दी का राष्ट्रभाषा घोषित होना यहॉ की सांस्कृतिक, भौगोलिक, सामाजिक और राजनैतिक आवश्यकताओं की सबसे बड़ी पूर्ति है इसका व्यापक विवेचन पिछले अध्यायों मे यथा स्थान कर दिया गया है। यहाँ उन मूल सिद्धान्तों पर प्रकाश डालने की चेष्टा की गयी है जिन पर हिन्दी या कोई भी भाषा राष्ट्रभाषा पद पाने की आकांक्षा रखती है।

(क) **राष्ट्रभाषा का अधिकांश जन-समुदाय द्वारा प्रयोग**—किसी भी देश में राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित होने की सबसे पहली शर्त यह है कि वह भाषा वहाँ के सम्पूर्ण जनसमुदाय द्वारा व्यवहार मे लायी जाती हो या कम-से-कम वहाँ के जन-समुदाय के अधिकांश भाग द्वारा बोली जाती हो। पहली परिस्थिति केवल उन्हीं देशों में मिलती है जो एक-भाषी (unilingual) देश है। बहुभाषी (multilingual) देशों के लिये राष्ट्रभाषा वही होगी जो वहाँ के अधिकांश लोगों द्वारा बोली जाती हो। द्वि-भाषी (bilingual) देशो में भी यही सत्य है।

हिन्दी भारतवर्ष के अधिकाश लोगों द्वारा बोली जाती है। डा० ग्रियर्सन ने भारत की भाषा सम्बन्धी सर्वेक्षण में यह प्रमाणित किया है कि हिन्दी इस देश की लगभग ८ करोड़ (७ करोड़ ८४ लाख) हिन्दुस्तानियों की मातृभाषा है। भाषाविद् डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने भी कहा है "यह निर्विवाद सत्य है कि, आधुनिक भारतवर्ष की सारी भाषाओ में हिन्दी या हिन्दुस्तानी ही इनकी प्रति भू-स्थानीय भाषा है। यह २५ करोड़ ७० लाख मानवों की सहज तथा स्वाभाविक अन्तः प्रान्तीय भाषा है; इस २५ करोड़ ७० लाख के अलावा कई लाख लोग इस भाषा को समझ सकते है। ···हिन्दी (हिन्दुस्तानी) का स्थान, जनसंख्या के हिसाब से, संसार की सारी भाषाओं में तृतीय है। उत्तरी चीनी और अंग्रेजी के बाद ही इसका स्थान है।" अतः इन विद्वानों के अनुसार भारतवर्ष के २६ करोड़ नागरिकों से अधिक द्वारा यह भाषा समझ ली जाती है और कामचलाऊ रूप मे बोल ली जाती है। ये आँकड़े अविभाजित भारत के समय के सर्वेक्षण के है। विभाजन के पश्चात पाकिस्तान मे हिन्दीभाषी क्षेत्र तो सम्भवतः नहीं ही गये, हिन्दी समझनेवाले लोगों के भी क्षेत्र न्यून मात्रा मे ही गये। अतः यदि इन दोनों दृष्टियों से देखा जाय तो भारत में आज हिन्दी मातृभाषा वालों की संख्या लगभग १० करोड़ अवश्य ही होगी तथा हिन्दी समझनेवालों की लगभग २८ करोड़। आजादी के बाद इस देश में दो बार (१९५१ और १९६१) मे जनगणना हो चुकी है तथा उनके प्रतिवेदन से ये आँकड़े भिन्न नहीं है।

पूर्वी पंजाब, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, हिमाचल प्रदेश, बिहार, नैपाल की तराई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, आसाम के कुछ क्षेत्र तथा पश्चिम बंगाल के पश्चिमी अंचल (जो बहुत साल तक बिहार का ही अंग था) आदि क्षेत्रों में हिन्दी मातृभाषा है। *

साथ ही यह तर्क कि यहाँ के २८ करोड़ भारतवासियों द्वारा हिन्दी बोली और समझी जाती है अनेक तथ्यों से भी पुष्ट और प्रमाणित है। भारतीय भाषाओं की उत्पत्ति और विकास के अध्ययन से प्रमाणित होता है कि भारतीय आर्य भाषाओं में हिन्दी का क्या स्थान है और अन्य भाषाओं से उसका पारिवारिक रक्त सम्बन्ध क्या है। यह निम्नांकित वंशावली विवरण से पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है :—

---

* भारत की भाषाएँ और भाषा सम्बन्धी समस्याएँ।

—डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, पृ० ६४–६५

प्राचीन (वैदिक) संस्कृत
संस्कृत
शौरसेनी प्राकृत
शौरसेनी अपभ्रंश
पश्चिमी
उत्तरी
सिन्धी, गुजराती, पंजाबी, पश्चिमी हिन्दी
राजस्थानी, बाँगड़, हिंदुस्तानी, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुन्देली
नागरी हिन्दी
खड़ी बोली
गढ़वाली
कामायूनी
नेपाली
मागधी प्राकृत
महारष्ट्री अपभ्रंश
अर्धमागधी अपभ्रंश
दक्षिणी
मराठी
दक्षिणी मराठी
पूर्वी
विहारी, बंगला, उड़िया आसामिया
भोजपुरी
मैथिली
मगही
पूर्वी मगही
गयावाली मगही
छोटानागपुरिया मगही
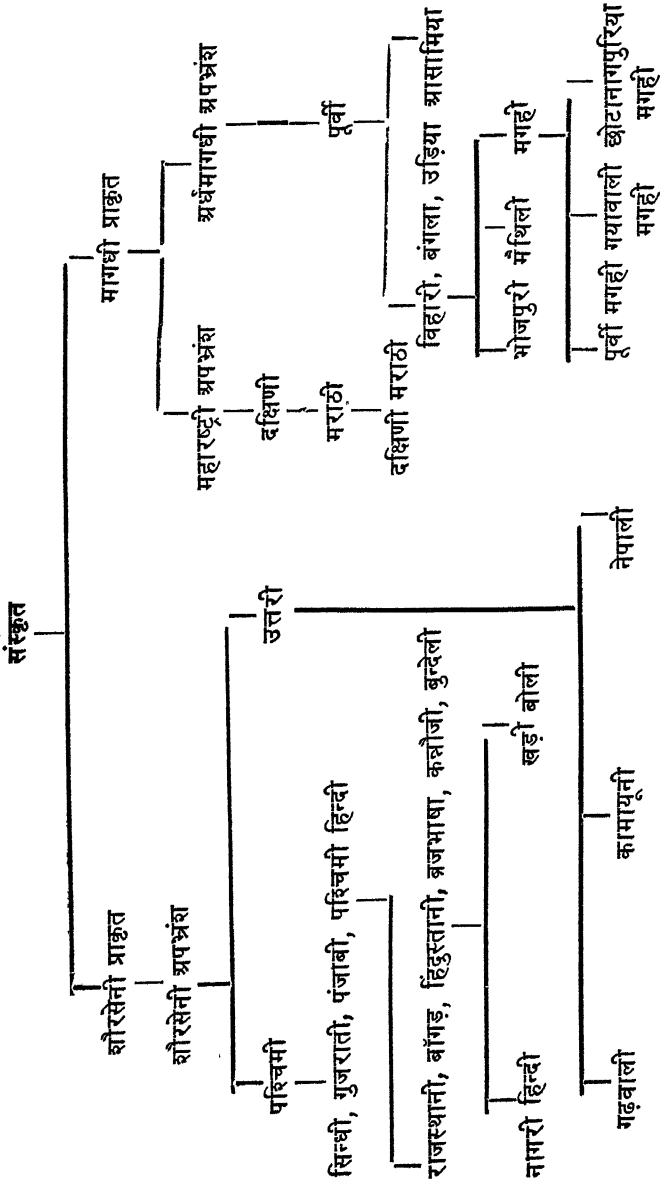
इस विवरण से विदित होता है कि भारतवर्ष की वर्तमान भाषाएँ संस्कृत से ही निकली है तथा पारिवारिक शब्दों में वे बहनें है। इतना ही नही, विद्वानो ने यह भी प्रमाणित किया है कि दक्षिण भारत की द्रविड़ जाति की भाषाओं का भी मूलस्रोत संस्कृत ही है। श्रीमान् शेषगिरि शास्त्री ने यह सिद्ध कर दिया है कि "उन द्रविड़ भाषाओ की उत्पत्ति भी संस्कृत से हुई है जो अन्य वर्ग की भाषाएँ मानी जाती है।"

संस्कृत भाषा की विशालता के सम्बन्ध में स्वयं विदेशी विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि "यह देखकर कि भाषाओं की एक बड़ी संख्या का प्रारंभ संस्कृत से है या यह कि संस्कृत से उसकी समधिक समानता है, हमको बड़ा आश्चर्य होता है और यह संस्कृत के बहुत प्राचीन होने का पूरा प्रमाण है। रेडियर (Rudiger) नामक एक जर्मन लेखक का यह कथन है कि संस्कृत सौ से ऊपर भाषाओ और बोलियों की जननी है। इस सख्या मे उसने बारह भारतवर्षीय, सात मिडियन फारसी, दो अरनाटिक अलबानियन, सात ग्रीक, अट्ठारह लेटिन, चौदह इसक्लेवानियन और छः गेहिक केल्टिक को रखा है।"* यह निर्विवाद है कि संस्कृत एक आदि भाषा है जिसने अनेक भाषाओ को जन्म दिया है जिनमे कुछ आज उन्नत अवस्था मे, कुछ अपभ्रंश रूप मे, तथा कुछ केवल इतिहास के पन्नों में संचित है। एवं कुछ ऐसी भी भाषाएँ है जो आज विश्व में विद्यमान नहीं है और न उनका कोई नाम तक ही मिलता है।

हमारा प्रस्तुत अध्ययन भाषाविज्ञान की समीक्षात्मक या तुलनात्मक ऐतिहासिक अध्ययन के लिये न तो उपयुक्त स्थान ही है और न उसकी यहाँ कोई आवश्यकता ही है। हाँ, इतना अवश्य समझ लेना चाहिये कि हिन्दी को यदि भारतवर्ष की लगभग २८करोड़ जनता द्वारा बोलने, तथा समझनेवाली भाषा की संज्ञा दी जाती है तो भाषा विज्ञान की दृष्टि से ही नही, वरन् ऐतिहासिक, परम्परागत, प्रयोगितावाद तथा उपयोगितावाद की दृष्टि से भी यह सर्वथा उपयुक्त, उचित तथा सत्य दावा है जिसके प्रति अन्य किसी को भी किसी प्रकार का सन्देह नही होना चाहिये।

भाषाओं की काल की व्याख्या से भी भाषाविदों ने यह अनुमान लगाया है कि—

---

*हिन्दी भाषा का इतिहास (हरिऔध) के पृ० १६ से उद्धृत।

(क) प्राचीन आर्यभाषाओं का काल २००० ई० पू० से ५०० पू० तक।

(ख) मध्यकालीन भारतीय प्राकृत भाषा का काल–५०० ई० पू० से ५०० ई० तक।

(ग) ,, ,, अपभ्रंश ,, ५०० ई० से १००० तक।
(घ) आधुनिक आर्यभाषा काल १००० ई० से आज तक है।

स्वय हिन्दी साहित्य का प्रारम्भिक काल खुसरो के बहुत पहले से माना जाता है। इस प्रकार हिन्दी को एक स्पष्ट आधार शिला मिली है।

भाषा के पारिवारिक रक्त सम्बन्धों के अतिरिक्त अन्य कारणों से भी हिन्दी भारत के बड़े जनसमुदाय द्वारा बोली जाती है। उनमे मुख्यत: :—

(क) सामाजिक संस्थाओं,
(ख) साहित्यिक संस्थाओ,
(ग) समाचारपत्र तथा पत्रिकाओं,
(घ) चलचित्र,
(च) व्यवसायिक क्षेत्र एवं
(च) राजनैतिक आन्दोलन—का नाम लिया जा सकता है

सामाजिक संस्थाएँ :—हिन्दी के प्रचार में देश की विभिन्न संस्थाओं—सामाजिक या अन्य—का महत्वपूर्ण स्थान एक ऐतिहासिक तथ्य है। प्रारम्भ से कचहरिया में हिन्दीभाषा को स्थान दिलाने का प्रबल प्रयास हिन्दी प्रेमीगण करने लगे तथा इस सूत्र से अनेक सभा-सोसाइटियों का जन्म हुआ। इन संस्थाओं का उद्देश्य हिन्दी का प्रचार और विस्तार था।

आर्य समाजियो ने जन-साधारण की भाषा में ही अपने उपदेश जनता के पास पहुँचाना प्रारम्भ कर दिया था। आर्य समाज की प्रतिद्वन्द्विता में सनातन धर्मवालों ने भी अपने धार्मिक ग्रन्थों की व्याख्या हिन्दी भाषा में करके लोगों के सामने प्रस्तुत की। चाहे जिन मूल धार्मिक उद्देश्यों से इन सँस्थाओं का कार्य क्रम उत्प्रेरित था इनसे हिन्दी भाषा और साहित्य की अपार वृद्धि और अमूल्य सेवा हुई। उधर ईसाई मिशनरियों ने बाइवल आदि के अनुवाद क्षेत्रीय-भाषाओं में करके हिन्दी के प्रचार का महत्वपूर्ण कार्य किया जिसका उल्लेख पिछले अध्याय में किया गया है। वास्तव में, सनातन धर्म और आर्य समाज

ईसाई धर्म के फैलनेवाले प्रभाव को रोक देने के लिए सक्रिय हुए थे और इनके माध्यम से हिन्दी भाषा का काफी प्रचार हुआ।

साहित्यिक संस्थाएँ :—हिन्दी-प्रचार में नागरी प्रचारिणी सभाओं का, काशी, आरा तथा अन्य प्रमुख नगरो मे, जो योगदान हुआ है उसे हिन्दी जगत् कदापि नही भूल सकता। हिन्दी के आदि ग्रन्थों की खोज, प्रकाशन तथा इस प्रकार प्रचार का जो कार्य सम्पन्न किया गया वास्तव मे हिन्दीके लिये अनुकूल परिस्थितियाँ मिलती गयी। हिन्दी विभूतियों ने जो पिछले १५० वर्षों मे साहित्य साधना की है उसका कृतज्ञ हर भारतवासी रहेगा। इन कार्यक्रमो में न केवल धार्मिक नेताओं, हिन्दी साहित्यकारों तथा हिन्दी प्रेमियों का ही योगदान हुआ वरन् परम पूज्य मदन मोहन मालवीय तथा गाधी जी का भी आशीर्वाद ही नहीं, उनका सक्रिय सहयोग भी प्राप्त था। इनके प्रयास से दखिन भारत में भी हिन्दी-प्रचार के केन्द्र खोले गये जिन्होंने हिन्दी-प्रचार का सुन्दर काम विगत ५० वर्षों में किया है।

सामाचार-पत्र तथा पत्रिकाएँ :—हिन्दी प्रचार का काम प्रायः सभी प्रान्तों की तत्कालीन या आज के भी हिन्दी भाषा के समाचार-पत्र कर रहे हैं। प्रकाशन और विक्रय इसके प्रचार का प्रमुख साधन रहा है। न केवल दैनिक समाचार पत्र बरन् साप्ताहिक या पाक्षिक या मासिक पत्रिकाओं ने भी हिन्दी की सेवा की है जिसका प्रमाण अहिन्दी प्रान्तों के पुस्तकालयों और शिक्षण-संस्थाओं में उपलब्ध लेख्यों (records) से मिलता है।

चलचित्र :—हिन्दी प्रचार में चलचित्रों ने भी गत ५० वर्षों में काफी दिलचस्पी ली है तथा विभिन्न भाषाओं के साथ ही हिन्दी भाषा के चलचित्रों का निर्माण किया है। बम्बई, कलकत्ता, (मद्रास तथा अविभाजित भारत में कराची भी), फिल्म-उद्योग के प्रमुख केन्द्र हैं। यहाँ फिल्मी-हिन्दी का निर्माण तथा उसका व्यापक प्रदर्शन सम्पूर्ण भारतवर्ष में हो रहा है। हिन्दी के गाने से गलियों-गलियों में हिन्दी का प्रचार हुआ है। हिन्दी-प्रचार में इस प्रकार हम फिल्म-उद्योगों में लगे लोगों के भी योगदान को स्वीकार करते हैं।

व्यवसायिक क्षेत्र :—विचार-विनिमय का प्रमुख माध्यम होने के कारण भाषा के प्रचार में व्यवसायियों का सदा से महत्वपूर्ण हाथ रहा है। व्यापारिक मण्डियों में भाषा का विकास नैसर्गिक रूप में होता है। देश में दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, शोलापुर, हैदराबाद आदि नगरों में ऐसी व्यापारिक मंडिया हैं जहाँ हिन्दीभाषी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

विस्थापितों की समस्या को लेकर जहाँ-जहाँ पंजाबी गये हैं उन्होंने अपनी व्यापार की टोली बना कर केवल पंजाबी का ही नहीं वरन हिन्दा का भी यथेष्ट प्रचार किया है।

व्यवसाय के चलते हिन्दी भाषी जहाँ-जहाँ अहिन्दी क्षेत्रों में गये हैं, जाकर बस गये है चाहे स्थायी रूप से या अस्थायी रूप से—उन्होंने न केवल वहाँ की बोली को पकड़ा है वरन अपनी बोली (हिन्दी) को भी उन लोगों के बीच प्रवाहित किया है। हिन्दी प्रचार में बम्बई आदि शहरों मे मथुरा के रसोइयाँ चौबे, बनारस के पंडित तथा बिहार या हिन्दी भाषी के अन्य पेशे में लगे–सिपाही, कुली, या अन्य पेशेवर ने भी हिन्दी के प्रचार मे जो योगदान दिया है वास्तव मे महत्वपूर्ण है। इन केन्द्रों की भाषा भले ही शुद्ध साहित्यिक या प्राज्जल न हो, या हम इन्हें बाजारू हिन्दी, गँवारू हिन्दी, सिपहिया हिन्दी के नाम से पुकारें फिर भी इन्होने हिन्दी का प्रचार किया है यह हम भूल नहीं सकते।

राजनैतिक आन्दोलन :—राष्ट्रीयता के भावों के साथ ही देश में एक भाषा का प्रश्न भी व्यापक रूप से छिड़ा। कांग्रेस के प्रारम्भिक काल में जब सभाओं की कार्यवाही अंग्रेजी में लिखी जाती थी तो गाँधी जी ने क्षोभ प्रगट करते हुए कहा था—क्या यह क्षोभ की बात नही है कि हम स्वराज की माँग एक विदेशी जुबान में करें ? *

पीछे चलकर हिन्दी आन्दोलन में सभी साहित्यिकों, राजनैतिक एवं सामाजिक नेताओं का सक्रिय सहयोग प्राप्त होने लगा। इसकी व्याख्या करते हुए साहित्य मनीषी पूज्य हरिऔध जी ने कहा है—

"मालवीय जी चिरकाल से हिन्दी भाषा के लिए बद्ध-परिकर और उत्सर्गीकृत-जीवन हैं। वर्तमानकाल में उनको महात्मागाँधी की सहयोगिता भी प्राप्त हो गयी है, जिससे हिन्दी भाषा की समुन्नति और सौन्दर्य वृद्धि के लिए मणिकांचन योग उपस्थित हो गया है।..."

...इस आन्दोलन ने हिन्दी भाषा को उस उच्च सिंहासन पर बैठाया जिसकी वह अधिकारिणी थी। आज दिन देश के बड़े-बड़े नेता तथा अधिकतर सर्वमान्य विद्वान सम्मिलित स्वर से यही कह रहे है कि राष्ट्रभाषा यदि हो सकती है तो हिन्दी भाषा। इस विचार से उसमें एक नवीन स्फूर्ति आ गयी

---

* Is it not a sad commentry that we should have to speak of Home Rule in a foreign tongue ? —*Hind Swarajya P. 66*

है और उसके प्रत्येक विभागों में यथेष्ठ उन्नति होती दृष्टिगत हो रही है। भारतवर्ष का काई प्रान्त ऐसा नही है जहाँ इस समय हिन्दी भाषा की पहुँच न हा और जहाँ से हिन्दी भाषा का कोई-न-कोई पत्र अथवा पत्रिका न निकल रही हा।"* इस उद्धरण से स्पष्ट है कि राजनैतिक आन्दोलन ने भी हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर स्थापित करने मे अमूल्य सेवायें की है।

इसके अतिरिक्त, जिन-जिन साधनों के द्वारा हिन्दी भाषी नागरिकों का अहिन्दी क्षत्रों के नागरिकों के साथ सम्पर्क हुआ है वहाँ भाषा प्रचार का कुछ-न-कुछ कार्य अवश्य हुआ है। लेखक का निजी अनुभव है कि इंगलैंड के एक ग्रामीण माध्यमिक विद्यालय में एक शिक्षक ने, जो पिछले विश्वयुद्ध में कलकत्ते में पायलैट (pilot) का काम करता था—कुछ देशज हिन्दी का व्यवहार करके यह पुष्ट किया था कि किस प्रकार भाषा का प्रचार होता है। उसने कलकत्ता स्टेशन पर घूमने के क्रम में ही 'चाय लेना', 'खास्ता विस्कुट', 'ताजे सेव' आदि शब्दों को सीखा था।

यहाँ हम विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभागों द्वारा हिन्दी के अध्ययन और प्रचार-कार्य की चर्चा नहीं करेंगे जो पिछले अध्याय में विधिवत् यथास्थान विवेचन का मुख्य विषय हो चुका है।

इस खंड के विवेचन मे यह स्पष्ट है कि हिन्दी का क्षेत्र बहुत ही व्यापक विस्तृत आर विशाल है और राष्ट्रभाषा के पद पर आशीन होने के पहले ही यह अपना उचित पृष्ठभूमि तैयार कर चुकी थी। मातृभाषा तथा राजभापा की विशेषताओं से अलंकृत होकर ही आज हिन्दी राष्ट्रभाषा के गौरवपूण पद पर अधिष्ठित है।

(ख) राष्ट्रभाषा के सरल, सुगम तथा सर्वग्राही होने की विशेषता :— राष्ट्रभाषा पद प्राप्त करने की दूसरी शर्त यह है कि वह भाषा सरल हो, सुगम हो तथा सर्वग्राही हो। " राष्ट्रभाषा में, सर्व सामान्य के अधिकांश लागा द्वारा प्रयोग करनेवाले तथा समझे जानेवाले शब्द और शब्द-समुदाय सम्मिलित रहते हैं।" भाषाओं के इतिहास का अध्ययन यह प्रमाणित

---

* हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, हरिऔध, पृ० ४२०

"The national language must contain such words and phrases as are used and understood by the large masses of common people." The Educational Philosophy of Mahatma Gandhi, M. S. Patel, p 223.

करता है कि भाषा जब जनसाधारण के सर्म्पक में रहती है तो वह सभी के समझने योग्य भाषा का पद ग्रहण करती है। इसके विपरीत, यदि उसका सम्पर्क छूट जाता है तो वह साहित्य की भाषा हो जाती है जो केवल उन्हीं लोगों के समझ में आती है जो शिक्षित तथा विद्वान् है। इस प्रकार वही भाषा जब कालांतर मे जनता के जीवन से अपना सम्पर्क, उत्साह, प्रेरणा तथा कथावस्तु नही लेती है तो वह उससे पृथक हो जाने के कारण कालक्रम में बहिष्कृत हो जाती है और तब जनता अपनी भाषा तैयार कर लेती है जो पूर्व भाषा का उत्तर रूप रहता है। भाषा के विकास की यही कहानी भी है। लेकिन भाषा के विकास की नैसर्गिक प्रक्रिया की चर्चा न कर केवल इतना ही समझना चाहिये कि जो भाषा कालक्रम मे जनता के जीवन मे नही रहती, वह केवल पुस्तकों में ही पुरातत्व की तरह बन्द कर दी जाती है। अतएव भाषा का वास्तविक सम्पर्क जनता से होना चाहिये।

जहाँ तक हिन्दी का प्रश्न है वह वास्तव में इस शर्त को शत-प्रतिशत पूरी करती है। हिन्दी भाषा का विकास भारतवर्ष की राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक दशाओं की सजीव कहानी है। जिसने अपने जीवन में कई जातियों का आक्रमण और विक्रमण देखा है, जहां न जाने, कितने राज्य स्थापित हुए और फिर उसी मिट्टी में मिल गये, जो आज केवल दिल्ली, आगरे तथा अन्य ऐतिहासिक नगरों की खण्डहरों मे ध्वस्त हो गये है तथा जो आज पशुओं का केवल चारागाह बन गया है। हिन्दी ने राज्यों की उन्नति भी देखी, उनकी अवनति भी देखा, राजाओं का राज्याभिषेक भी देखा साथ ही उनकी गिरफ्तारी या उन्हें गोली से उडाये जाते भी देखा या उन्हें तलवार की धार खिचते भी देखा। वह न केवल महलों मे ही रही, वह झापड़ियों में भी रही। तात्पर्य यह है कि इतने काल-थपेडों को खाकर हिन्दी आज इतना सुसम्पन्न, समृद्ध तथा सरस हो गयी है। हिन्दी न केवल नगरों की बोली रह चुकी है वरन् वह गलियों की बोली भी रह चुकी है। वह बाजारों के विनिमय का माध्यम भी है। यह महलों की रंगीनियों की बोल भी है वह मन्दिर, मस्जिद और गिरिजाघर की प्रार्थना की भी भाषा है। अतएव हिन्दी की सर्वग्राहयता में आज किसी प्रकार का सन्देह नही उठता।

वह संस्कृत से उत्पन्न होनें पर भी केवल उन्हीं अलंकारों से विभूषित नहीं है, उसने अन्य भाषाओं के सम्पर्क से भी काफी लाभ उठाया है। उसने उन सभी शब्दों को ग्रहण किया है जो भाषा को स्थायी, स्वस्थ तथा

प्रगतिशील बनाये रखने के प्रमुख साधन है। "वर्त्तमान काल में हिन्दी ने प्रशंसनीय उन्नति की है। विद्या के उन समस्त विभागो से अब उसका सम्बन्ध हो गया है जो राष्ट्रीय जीवन को विकास की ओर ले चलते हैं। देश के सार्वजनिक जीवन ने ज्यों-ज्यों उन्नत स्वरूप ग्रहण किया है त्यों-त्यो हिन्दी को फलने-फूलने के लिये क्षेत्र प्राप्त होता गया। सरकार और जनता के पारस्परिक सहयोग ने भी हिन्दी गद्य को सुगठित और पुष्ट होने का अवसर दिया।"*

(ग) **राष्ट्रभाषा मे राष्ट्रीय संस्कृति:**—राष्ट्रभाषा का गौरवपूर्ण पद प्राप्त करने की तीसरी शर्त्त यह है कि उस भाषा में देश की सम्पूर्ण संस्कृति का पूर्ण समावेश हो तथा वह एक प्रकार से देश की संस्कृति का प्रतिबिम्ब ही हो। उसके अध्ययन से देश की संस्कृति और सभ्यता का परिचय प्राप्त होता हो। कहा भी गया है कि "देश को पूर्णतया समझने के लिये वहाँ की भाषा को समझना चाहिये।" गान्धी जी ने भी कहा था कि "भाषा-भाषा बोलने वालों के चरित्र का प्रतिबिम्ब मात्र है।"

हिन्दी का मूल्यांकण इस दृष्टि से किया जाय तो यह पूर्णत: प्रमाणित होता है कि हिन्दी भारतीय संस्कृति का स्पष्ट प्रतीक है। यों तो सभी भारतीय भाषाएँ संस्कृत से ही उत्पन्न हुयी है तथा उन्होंने भारतीय संस्कृति का प्रतिबिम्बित किया है लेकिन सभ्यता और संस्कृति का जो समन्वय उत्तर भारत में हुआ है निस्सन्देह उससे हिन्दी ने उन सभी को अपने साहित्य में सम्मिलित कर लिया है। हिन्दी की गणना उन उदार भाषाओं में सुलभरीति से की जा सकती है जिसने सभी प्रकार की बोलियों, भाषाओं और साहित्यों से प्रचुर मात्रा मे विषय लेकर, सम्पर्क स्थापित करके यह स्पष्ट किया है कि भारतभूमि की संस्कृति अनेक जातीय विशेषताओं का संकलन और प्रतिबिम्ब है।

वस्तुत: राष्ट्रीय संस्कृति को अपना प्रमुख कलेवर मानकर हिन्दी इतनी आगे भी बढ़ी है। आज हिन्दी साहित्य का अध्ययन करनेवाला भारतभूमि का मूल संस्कृति का जानकारी प्राप्त कर सकता है जो काल के थपेड़ों के खाने के बाद भी अपना अस्तित्व पूर्णत: स्पष्ट और स्थायी रख सका है।

(घ) **राष्ट्रभाषा की बहुमुखी क्षमता :**—कहा गया है कि राष्ट्र-भाषा में राजनैतिक, शिक्षा-सम्बन्धी, सामाजिक, धार्मिक भावों के आदान-प्रदान की क्षमता होनी चाहिये। यह राष्ट्रभाषा के सुसम्पन्न तथा विशाल होने का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि वह देश की सारी कलाओं को स्पष्ट करती है, वह

१. हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, हरिऔध, पृ०५३०.

देश के अन्दर चलनेवाली विभिन्न भावनाओं को व्यक्त कर सकती हो। वह एक प्रकार का ऐसा समृद्धिशाली माध्यम हो कि सम्पूर्ण क्षत्र में अपने राजनैतिक, धार्मिक तथा शिक्षण-सम्बन्धी विचारों को सुगमता के साथ स्पष्ट कर सके।

हिन्दी के सम्बन्ध मेयदि यह कहा जाय कि वह इस शर्त को पूर्णतः नही तो कम से कम अँशतः अवश्य पूरी करती है तो निस्संकोच यह स्वीकार किया जाना चाहिये। हिन्दीभाषी क्षेत्रों को इस मन्तव्य पर कुछ आपत्ति अवश्य हो सकती है लेकिन उन्हे धीरज के साथ अपनी कमजोरियो को स्वीकार करने में किसी प्रकार की हिचक नही होनी चाहिये। यह विवशता केवल हिन्दी भाषा तक ही विद्यमान नही है वरन् सभी भारतीय भाषाओ के लिये भी अक्षरशः सत्य है। हाँ, हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन होने के कारण यह बात कुछ हृदय तक लग जाती है। लेकिन यह विचारणीय बात है कि हिन्दी की विवशता हमारे लिये उत्साहहीन, गतिहीन का कारण नहीं बननी चाहिये; क्योंकि यह उसका दोष नही है।

हिन्दी की इस विवशता के मूलकारणों का अध्ययन किया जाय तो विदित होगा कि इसमे हिन्दी भाषा की क्षमता का कोई प्रश्न नही; उसकी विवशताओं का प्रश्न केवल परिस्थितिओ का ही एक परिणाम है। इस सम्बन्ध में 'राष्ट्रभाषा का स्वरूप' नामक निबन्ध मे श्री गुलाब राय ने समस्या की समीक्षा करते हुए कहा है कि इस समस्या के लिये—हिन्दी दोषी नहीं वरन् वे लोग दोषी है जो देश के भाग्य-विधाता थे और जिन्होने उसे राजनैतिक और शिक्षा सम्बन्धी क्षेत्रों में पनपने का अवसर नहीं दिया। बिना पानी में पैर दिये तैरना नहीं आता। भाषा की शब्दावली इतनी गढ़ी नही जाती जितनी कि व्यवहार में विकसित होती है।''

बृटिश शासन-काल मे हिन्दी को न तो कचहरियों में या सरकारी कार्यालयोमें स्थान मिला था। बहुत व्यापक आन्दोलनों के फलस्वरूप भी वह केवल माध्यमिक शिक्षा के स्तर में शिक्षा का माध्यम बन सकी और आज भी विश्वविद्यालय की शिक्षा के माध्यम के रूप में पूर्णतया सुलझ नही पायी है। हिन्दी की विवशता के कारणों पर क्षोभ प्रकट करते हुए गांधी जी ने कहा है:—

''करोड़ों को अंग्रेजी का ज्ञान देना केवलमात्र उन्हें गुलाम बनाना है। शिक्षा की जो नींव मैकॉले ने दी थी उसने हमे गुलाम बना दिया है। मैं यह नहीं कहता कि उसके उद्देश्य ही भ्रान्तिपूर्ण थे, लेकिन वास्तव मे परिणाम यही हुआ है। क्या यह क्षोभ की बात नही है कि हमे स्वराज की बातें विदेशी भाषा में करनी पड़ें ?

हम एक दूसरे के पास अशुद्ध अंग्रेजी मे लिखते है और इससे हमारे एम० ए० लोग भी वचित नही हे हमारे उत्तम विचार अंग्रेजी मे व्यक्त होते है, हमारे सर्वोत्तम समाचार-पत्र अग्रेजी में मुद्रित होने है । यदि ऐसा ही हाल रहा तो आगे आनेवाली पीढी—मै निश्चयपूर्वक कहता हूं—हमारी निन्दा करेगी और हमे शाप देगी ।"

यदि यह कहा जाय कि अंग्रेजी के चतुर्दिक प्रभाव ने हिन्दी को इस क्षेत्र में विवश किया तो कोई अत्युक्ति नहीं मानना चाहिये । विज्ञान, तर्कशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, प्राणिशास्त्र तथा इसी प्रकार अनेक तकनीकीविषयों के शब्द हिन्दी मे नही मिलते, लेकिन यह हिन्दी की क्षमता में किसी प्रकार की उँगली नही उठाते । यह तो प्रयोग के अभाव का फल है जिसके लिये अंग्रेजी शासन-काल तथा अंग्रेजी के प्रेमीगण ही उत्तरदायी कहे जा सकते हैं ।

लेकिन इस अन्धकार मे भी एक प्रकाश है । वह यह है कि हिन्दी में इतनी क्षमता है कि वह जल्द ही स्वयं मे यह विशेपता उत्पन्न कर सकती है और हर्ष का विषय है कि वह कर भी रही है । विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम हिन्दी होने से हिन्दी के शब्द-भाडार मे अपार बृद्धि हो रही है । तकनीकी शब्दों, वैज्ञानिक शब्दों तथा अन्य प्राविधिक विषयों का हिन्दी मे अनुवाद तथा शिक्षण क्षेत्र मे उसका अनवरत प्रयोग उसे इन अपार शब्दों के भण्डार से परिपूर्ण कर रहा है । हिन्दी समृद्धशाली बनती जा रही है । भारत सरकार ने शिक्षा मत्रालय मे एक शब्द भाडार इकाई स्थापित कर ली है । कुछ राज्य सरकारों ने भी ऐमी इकाई स्थापित की है । तथा कुछक राज्यों में इसकीस्थापना का प्रश्न भी विचाराधीन है ।

---

* To give millions a knowledge of English is to enslave them. The foundation that Macaulay laid of education has enslaved us. I do not suggest that he had any such intention, but that has been the result. Is it not a sad commentary that we should have to speak of Home Rule in a foreign tongue ?

We write to each other in faulty English, and from this even our M. As. are not free; our best thoughts are expressed in English, the proceedings of our congress are conducted in English, our best newspapers are printed in English. If this state of things continues for a long time, posterity will—it is my firm opinion—condemn and curse us."

—Hind Swaraja p. 65-66

इस दिशा में आजादी के गत १२ वर्षो मे क्या प्रगति हुयी है उसका दिग्दर्शन निम्नाकित उद्धरण से कीजिये :—

"प्राविधिक शब्दो के हिन्दी निरूपण का कार्य शीघ्रता से चल रहा है। फरवरी १९५९ के अन्त तक लगभग १,४७,००० प्राविधिक शब्दों का हिन्दी मे सृजन हो चुका था। वैज्ञानिक शब्द निर्माण बोर्ड द्वारा तैयार किये गये शब्दों का एक वैज्ञानिक तथा प्राविधिक शब्दकोष बनाने के लिये केन्द्रीय मंत्रालय में एक शब्दकोष यूनिट स्थापित किया गया है।"*

हिन्दी भाषा मे यह क्षमता तीव्र गति से पैदा हो रही है, जो उसके स्वर्णिम भविष्य का सूचक है। लेकिन यह द्रुतगति कभी-कभी कुछ आशंकाओं का भी मूल कारण हो रही है, जिनकी ओर हिन्दी के शुभेच्छकों तथा उसके परम हिमायती ही नहीं परम हितैषियों का भी ध्यान जाना चाहिये।

हिन्दी के अनुदार दल के लोगों का अभिप्राय है कि जहाँ तक हो हिन्दी के नये शब्दों के गढने मे संस्कृत भाषा का आधार लिया जाय तथा उन्हें यही प्राजंलता प्राप्त हो जो संस्कृत भाषा काल में थी। इनके अनुसार अंग्रेजी के Letterbox का अनुवाद पंत्र-मंजूषा, या पत्र पेटिका किया जाय न कि लेटर बक्स ही गृहित किया जाय।

इसके विपरीत प्रगतिवादियों का कहना है कि हमें उन सभी शब्दों को अपनी भाषा मे ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लेना चाहिये जो प्रयोग-परम्परा के सिद्धान्त पर जनता के बीच स्वीकार कर लिये गये है। अन्य शब्दों को हिन्दी का उच्चारण देकर ले लेना चाहिये क्योंकि वे उच्च शिक्षा के क्षेत्र मे भाषा सामीप्य के सिद्धान्त से सरल प्रमाणित होगे और सर्वग्राह्य होंगे। यहां हिन्दी के नवीन शब्दो के निर्माण की व्याख्या अभीष्ठ नहीं है फिर भी प्रसंगवश कुछ संकेत कर दिये गये है।

सम्पूर्ण विवेचन का साराश यह है कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा के गारवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित करने के लिये हमें उन सभी अनुकूल परिस्थितियों का समन्वय कर लेना चाहिये जो भाषा के विकास और उसकी उन्नति के सामान्य लक्षण है। भारत के विभिन्न राज्यों की भाषाओं के शब्दों को यथासंशोधन करके स्वीकार करने का सबसे बडा संवेगात्मक प्रभाव यह पड़ेगा कि अहिन्दी भाषी भी यह समझने लगेंगे कि राष्ट्रभाषा के निर्माण और विकास मे उनकी मातृ-भाषा का भी कितना गौरव पूर्ण योगदान है। इसके लिये शब्द-भांडार तक ही

* आजादी का १२ वां वर्ष, पृ० ८३

नही, वरन् हिन्दी के व्याकरण को भी अधिक उदार और सामयिक होना चाहिये। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारी राष्ट्रभाषा को भारतीय भाषाओ का एक समन्वयात्मक स्वरूप लेकर आगे बढ़ना है। न केवल भाषा की बनावट-शब्द, अक्षर, व्याकरण आदि-पर ही समन्वय हो, वरन् अन्य क्षेत्रों की भावनाएँ, प्राकृतिक एव मानवीय प्रतिवेश भी इस समन्वय मे पूर्ण रूप से व्यक्त हो। इस ओर समान रूप से सभी साहित्यिकों, शैक्षिक सस्थाओ, सरकार तथा शिक्षित जन समुदाय का सहयोग अपेक्षित है।

इसके अतिरिक्त एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण बात यह है कि हिन्दी सेवियो और प्रेमियों को अंग्रेजी के प्रति इतनी कटु धारणा नही रखनी चाहिये। भाषाओ का अध्ययन बड़ा ही उपयोगी तथा सरस कार्य है। गेटे ने कहा है "अन्य भाषा के जानने से हम अपनी भाषा की विशेषताओं को चेतना एवं स्वच्छ विशिष्टता देते हैं—उसके शब्द भडार की विशेषताओ, मुहावरों तथा उनके लय की। जो किसी विदेशी भाषा को नही जानता वह अपनी भाषा से भी अनभिज्ञ रहता है।" इसके अतिरिक्त अंग्रेजी अपने वैभव से इस समय अर्न्तराष्ट्रीय स्तर मे समझने और बोलने वाली भाषा है जिसके अन्दर अपार शब्द भंडार तथा अभिव्यक्ति क्षमता है। इसके साथ ही भारतवर्ष मे इसका जड़ आज नही, आज से १५० वर्ष पहले ही जम चुकी है जो कालक्रम से बहुत ही प्रभावशाली तथा विशाल हो चुकी है। इसे यकायक अपने जीवन से निकाल फेंकना देश के शासकों की सबसे बड़ी भूल और अदूरदर्शिता ही कही जायगी। संविधान में दिया गया १५ वर्षों का समय राष्ट्र और भाषा के जीवन में बड़ा ही अल्प समय है फिर भी हमारा प्रयास यह होना चाहिये कि हिन्दी को इस प्रकार समृद्धशाली बना दें कि वह राष्ट्र व्यापी भाषा हो तथा भारतवर्ष की वर्त्तमान राजनैतिक अवस्था का ध्यान में रखते हुए अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर भी विख्यात हो सके।

हिन्दी के वर्त्तमान स्थान का दिग्दर्शन जिन अभिप्रायों से किया गया है उनमें यह भी देखना चाहिये कि हिन्दी के अध्यापकों, छात्रों तथा अन्य प्रेमियों को एक सवेगात्मक अपनत्व का भाव सदा ही अनुप्राणित ही नहीं, उत्प्रेरित भी करता है। भाषा की प्रेरणा मानव स्वभाव की सभी प्रेरणाओं में अधिक स्थायी, स्पष्ट तथा सबल होती है। और हिन्दी राष्ट्रभाषा के व्यापक प्रसार के लिये प्रत्येक हिन्दुस्तानी के सामने आवश्यक उपकरण और परिस्थिति विद्यमान है तथा सभी सुलभ साधन भी प्रस्तुत हैं।

अध्याय ५

हिन्दी भाषा की विशेषताएँ

हिन्दी मे भाषागत और साहित्यगत विशेषताएँ प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं यह पिछले अध्याय में विवेचन के क्रम मे संकेत किया जा चुका है। हिन्दी के शिक्षक और छात्रों को इन विशेषताओ से पूर्ण परिचय प्राप्त कर लेना चाहिये जो एक ओर उसकी भाषाको चुस्त, प्राजल, नियमबद्ध और प्रगतिशील बनाती है और दूसरी ओर उसके साहित्य को सरस, मधुर, अलंकारमय, व्यंजनात्मक एवं ध्वन्यात्मक। इस अध्याय में हिन्दी भाषा और साहित्य की विशेषताओं का सम्यक् विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

(क) *भाषागत विशेषताएँ*

वैसे तो भाषा-विषयक विशेषताओ का अध्ययन एक स्वतंत्र पुस्तक के माध्यम से किया जाना चाहिये लेकिन हिन्दी शिक्षक को उन सामान्य विशेषताओं का परिचयात्मक अध्ययनमात्र ही परमावश्यक है जो उसके शिक्षण के आधारभूत सिद्धान्त होंगे तथा शिक्षण-कार्य मे उसे स्थान-स्थान पर सदा मार्ग प्रदर्शित करते रहेगे। हिन्दी भाषा के मुख्य अवयव स्वर, व्यंजन, मात्रा, ध्वनि, उपसर्ग, प्रत्यय, कारक, लिग, क्रियादि है जिनकी ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया जाता है।

स्वर :—वर्तमान हिन्दी में स्वरों का स्वरूप साधारण तथा सरल है। उसके मूल स्वर——अ, इ, उ है तथा दीर्घ स्वर के अन्तर्गत आ (अ+अ), ई (इ+इ), ऊ (उ+उ) तथा संयुक्त स्वरों के अन्तर्गत ए (अ+इ), ऐ (आ+ए), ओ (अ+उ) तथा औ (आ+आ) हैं। अंग्रेजी में स्वरों की संख्या पाँच है——a, e, i, o, u। दीर्घ स्वर तथा संयुक्त स्वर इन स्वरों के मेल से बनते हैं, जैसे aa, ae, ie आदि लेकिन यह हिन्दी की विशेषता है कि दो स्वरों के मेल से जो स्वर तैयार होता है वह सर्वथा एक नया स्वर ही बन जाता है, भले ही विश्लेषण से उसके विभिन्न अवयवों को हम जान लें। अंग्रेजी में स्वर सर्वथा अलग-अलग स्तित्व रखते है तथा शब्दों की बनावट में भी वे साफ दिखायी पड़ते है।

प्रारंभ मे हिन्दी ने संस्कृत के पाँच स्वरों—ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, अं, अः को भी स्वीकार किया था लेकिन प्रयोग परम्परा से वे अब लुप्त होने जा रहे है। इनकी ध्वनियों में परिवर्तन हो गया है तथा वे अब रि, लि्र के रूप मे ही प्रयुक्त होते है ।अ, अ· के स्थान पर मात्राएँ (ं, :) ही प्रयोग मे आती है। अंग्रेजी के प्रभाव से भी हिन्दी मे कुछ अन्य स्वर आ गये हैं जिन्हे नया रूप दे दिया गया है जैसे Macaulay = मैकॉले (ऑ) Congress = कांग्रेस, Lord = लॉर्ड लिखते है। अन्य भाषाओ से भी स्वरो का आयात हुआ है लेकिन उन्हें हिन्दी के मूल स्वरों के अन्तर्गत ले लिया गया है। अतएव हिन्दी भाषा की स्वर-सम्बन्धी विशेषता यह है कि वे सर्वथा सरल तथा सुगम्य है उनमे किसी प्रकार की क्लिष्टता नहीं पायी जाती।

व्यंजन :—स्वर की तरह हिन्दी के व्यंजन भी सरल हैं। उनका वर्गीकरण बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से किया गया है। व्यंजन की संख्या ३३ है और उनके तीन भेद है :—

(i) **स्पर्श वर्ण** :—क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग, तथा प वर्ग प्रत्येक में पाँच वर्ण हैं, इस प्रकार स्पर्श वर्णो की कुल संख्या २५ है। क वर्ग का उच्चारण कण्ठ से, चवर्ग तालू से, टवर्ग मूर्धा से, तवर्ग दन्त से, पवर्ग ओष्ठ से होता है। स्पर्श से उच्चारण होने के कारण इन्हे स्पर्श-वर्ण की संज्ञा दी गयी है। इसलिए इनका नामकरण भी कन्ठ्य, तालव्य, मूर्धन्य, दन्त्य, ओष्ठ्य-वर्णो के रूप में हुआ है।

(ii) **अन्तस्थः वर्ण** :—अन्तस्थल (नाभि से) उच्चारण किये जानेवाले व्यंजन य, र, ल, व है। इनकी संख्या ४ है।

(iii) **ऊष्म वर्ण** :—श, ष, स, ह के बोलने में ऊष्म वायु निकलता है। इसलिये इन्हें ऊष्म वर्ण कहते है। इनकी संख्या ४ है।

प्रयोग परम्परा से 'ष' और 'ञ' का प्रयोग ध्वनि रूप में प्रायः लुप्त ही है। ये व्यंजन नागरी लिपि में हैं और संस्कृत तत्सम शब्दो में आते भी हैं। पर वे हिन्दी में शुद्ध उच्चरित नही होते। शास्त्रीय दृष्टि से भले ही इन व्यंजनों और उनकी ध्वनियों (लुण्ठित, पार्श्विक, उत्क्षिप्त, संघर्षी) का विशेष महत्व हो, लेकिन प्रयोग में उनका स्वरूप अलग हो जाता है। इस प्रकार हिन्दी के स्वर और व्यंजन हिन्दी की अन्य बोलियों में जाकर भिन्न-भिन्न रूप से उच्चरित होते हैं। उसी प्रकार विदेशी शब्दों को हिन्दी ने अपने रूप में ग्रहण किया है, यथा—कागज, कागज, असल, अस्ल आदि।

फारसी के प्रभाव से हिन्दी में क़, ख़, ग़, ज़, फ़, व़, आदि ध्वनियाँ भी प्रयुक्त होने लगी हैं। यथा :—

काबिल
बुख़ार
चोग़ा
ज़जबात
कफ़न
स्व़ाद

मात्राएँ :—हिन्दी में जिन मात्राओं का प्रयोग होता है वे इस प्रकार हैं—

ा, ि, ी, ु, ू, ृ, े, ै, ो, ौ, ं, ः

हिन्दी की इन मात्राओं का महत्वपूर्ण स्थान है जो शब्दों का कलेवर ही बदल देती हैं। संस्कृत के जो शब्द हिन्दी ने अपनाये है, अपनी मात्राओं के बल पर प्रयोगानुसार उनका रूप भी बदल दिया है, यथा—

धर्म	धरम	धाम
कर्म	करम	काम
चर्म	चरम	चाम
गर्व	गरव	
सप्त		सात
अष्ठ		आठ
दन्त	दाँत	

लेकिन मात्रा परिवर्तन का कोई पूर्व निश्चित नियम नही है। कही तो अर्द्ध मात्राएँ पूर्ण मात्राएँ हो जाती है, कहीं-कहीं अर्द्ध अक्षर पूर्ण अक्षर हो जाते हैं। निश्चित नियम के अभाव में हिन्दी विद्यार्थी को कठिनाइयाँ होती है जिनकी ओर हिन्दी शिक्षक का ध्यान अपेक्षित है।

ध्वनि परिवर्त्तन :—हिन्दी भाषा की यह भी एक विशेषता है कि स्वर, व्यंजन एवं मात्रा के अनेक रूप ग्रहण करने का फल यह होता है कि उच्चारण सम्बन्धी कई भेद स्पष्ट हो जाते है। ध्वनि परिवर्त्तन से वर्ण परिवर्त्तन भी हो जाता है। नवीन ध्वनि से नवीन शब्द भी बनते जाते है और इसमें जन-साधारण की प्रयोग-क्षमता ही मुख्य प्रभावकारी कारण हो जाती है। जैसे—

(i)	अमृत	अमरित
	ऋतु	रितु
	योग	जोग
	यज्ञ	जज्ञ
	संयोग	सजोग
	सयम	संजम
	पक्ष	पख
	ऋक्ष	रीछ
	यक्ष	जच्छ
	तैल	तेल
	हस्त	हाथ
	पञ्च	पाँच
	दन्त	दाँत आदि ।

इस प्रकार के परिवर्त्तन—ध्वनि परिवर्त्तन से शब्द परिवर्त्तन—के लिए भी कोई पूर्व निश्चित नियम नही है, केवल प्रयोग परम्परा ही है । हाँ, भाषा का एक विकसित रूप होने से वैयाकरण और भाषाशास्त्री इनके आधार पर नियम गढते जाते हैं । अहिन्दी भाषी के लिए इस प्रकार के प्रभावगत परिवर्त्तनों से हिन्दी सीखने में कठिनाई होती है । अंग्रेजी भाषा में इस प्रकार का कोई ध्वनि परिवर्त्तन नहीं होता ।

लेकिन जहाँ एक ओर अंग्रेजी भाषा में उच्चारण-सम्बन्धी कई समस्याएँ हैं, वैसी कोई समस्या हिन्दीवालों को नहीं मिलती । अँग्रेजी मे वर्णानुरूप उच्चारण सभी जगह एक तरह से नहीं होता है । साथ ही, ध्वनि साम्य में भी अर्थ भेद पाया जाता है । जैसे—

वर्णानुरूप उच्चारण-भेद	ध्वनि साम्य से अर्थ भेद
But=बट	Hare = हेयर
Put=पुट	Hair = हेयर
Church=चर्च	Hear = हीयर
Monarch = मोनार्क	Here = हीयर
Finger=फिंगर	Dear = डीयर
Ginger=जिंजर	Deer = डीयर

आदि

हिन्दी में वर्णानुरूप उच्चारण स्पष्ट ही उसकी विशेषता है । फारसी और उर्दू में भी इस प्रकार की व्यवस्था नहीं है ।

जो विदेशी शब्द आये है उनका भी ध्वनि परिवर्त्तन हिन्दी के अनुरूप कर दिया जाता है । जैसे—

आसमाँ	आसमान
इमतिहाँ	इमतिहान
मेहरबाँ	मेहरबान

फारसी का 'खाँ' हिन्दी में 'खान' आसानी से प्रचलित है ।

संयुक्त ध्वनियाँ :—हिन्दी में संयुक्त ध्वनियों का प्रयोग बहुतायत से होता होता है । जसे—वैराग्य, चत्र, वैर—इनमें आ+ए की ध्वनि स्पष्ट है । समय—समै, लवँग—लौग, नयन—नैन के रूप मे आसानी से संयुक्त होकर उच्चारित होते है । अँग्रेजी में इस प्रकार की सयुक्त ध्वनियाँ स्पष्ट रूप से पृथक दिखायी पड़ती है जहां दो अक्षरों का मेल उच्चारण में भी अलग-अलग अपना स्वरूप रखने हैं, हिन्दी में उनका पारस्परिक स्थायित्व घुल मिल जाता है ।

अनुनासिक ध्वनियाँ :—हिन्दी में अनुनासिक ध्वनियाँ ये हैं :—

ञ, ण, ण
म, न ङ

उर्दू, फारसी में 'मीम' और 'नून' ही इसके अन्तर्गत आती हैं तथा अँग्रेजी में भी 'm' तथा 'n' । हिन्दी की अनुनासिक ध्वनि व्यवस्था उसकी एक बड़ी विशेषता है जो यह प्रदर्शित करती है कि विभिन्न शब्दों का प्रयोग किन-किन प्रकारों से होता है ।

हिंदी	अंग्रेजी	उर्दू रूप
लक्ष्मण	Lakshman	لکچھمن
चीन	China	چین
चञ्चल	Chanchal	چنچل
गङ्गा	Ganga	گنگا
मुसलमान	Musalman	مسلمان
अहिंसा	Ahimsa	اہنسہ
चाँद	Cnand	چاند
अन्तर	Antar	انتر

जिस प्रकार फारसी या अरबी या लैटिन आदि भाषाएँ उच्चारण के लिये शरीर के मुख्य अवयवों के कठोर प्रशिक्षण का सकेत करती है; प्रारम्भ मे हिन्दी मे भी यह उच्चारण सम्बन्धी कठोर प्रशिक्षण तथा अभ्याम की प्रणाली विद्यमान थी। संभवतः यह सस्कृत का ही प्रभाव था। लेकिन अब जनसाधारण इस कड़े नियत्रण को नही मान रहा है तथा शनैः-शनैः। अनुनासिक ध्वनियो की यह विशेपता दूर हो रही है। उच्चारण ध्वनि में परिवर्तन के फलस्वरूप शब्दों के स्वरूप में भी परिवर्तन हो रहा है तथा लिखने मे भी यथावत् परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है, यथा—

व्यञ्जन—व्यंजन
सुन्दर—सुदंर
चन्द्रमा—चाँद, चांद
कम्प—काँप
गङ्गा—गंगा

प्रायः अनुस्वार या अर्द्ध न' (ꣳ) को ही अपनाने का प्रवृत्ति दीख पड़ रही है।

इस प्रक्रिया में कोई निश्चित नियम नही है और व्याकरण चाहे जो भी नियंत्रण प्रस्तुत करे जनसाधारण की बोली पर कोई लगाम नही। नये-नये शब्द पनपते ही जायेंगे। अनुस्वार-प्रथा से भापा में सरलता अवश्य आ गयी है लेकिन इसका शास्त्रीय निरूपण-प्रत्येक अनुनासिक ध्वनि की पद्धति का रहने देना ही भापा के माधुर्य्य का द्योतक है। अंग्रेजी के प्रभाव के कारण ही संभवतः इस पद्धति पर लोगों का झुकाव दीख पड़ता है।

हिन्दी की वर्णमाला-सम्बन्धी विशेपताओं के विपय में कुछेक बातों पर ध्यान देना वांछनीय होगा। हिन्दी वर्णमाला का वास्तविक आधार संस्कृत वर्णमाला ही है। यह वर्णमाला अपने लिखित संकेतों की कल्पना से बहुत पहले अपने रूप में आ चुकी थी। प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं की ध्वनियों की पूरी-पूरी विवेचना करने के बाद ही इस वर्णमाला की कल्पना की गयी थी। हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं-चाहे प्राचीन या आधुनिक-की लिपियों के लिखित वर्णों की कल्पना मुख्यतः उसी प्राचीन उच्चरित वर्णमाला के अनुसार ही की गयी। पीछे से ऐसे वर्णों के लिये, जो संस्कृत में नहीं पाये जाते, अन्य लिखित संकेतों की कल्पना कर ली गयी, जैसे देवनागरी में फ़, ज़, क़-आदि।

संस्कृत वर्णमाला का आधार उच्चरित भाषा ही है, उसके प्रत्येक वर्ण के नाम से ही स्पष्ट है। अंग्रेजी, अरबी, आदि भाषाओ मे वर्णो का नाम और वास्तविक उच्चारण भिन्न-भिन्न है, लेकिन यह हिन्दी की विशेषता है जहा वर्णों का नाम वही है जो उनका उच्चारण भाषा में होता है।

उपसर्ग:—संस्कृत के समान ही हिन्दी में भी उपसर्ग का विधान है जहां शब्दों के प्रारम्भ में उपसर्ग जोड़ने से अर्थ का परिवर्तन पाया जाता है। संस्कृत में मुख्य उपसर्ग निम्नस्थ है—

प्र, परा, अप, अनु, निर, वि, अभि, अति, प्रति, परि आदि।

हिन्दी ने भी इन्हे अपने शब्द-भंडार की वृद्धि के लिये अपनाया है। अरबी-फारसी तथा अग्रेजी मे भी इस प्रकार का उपसर्ग-विधान पाया जाता है जिनके आधार पर पद हिन्दी मे प्रयुक्त किये जाते है।

खुशदिल, खुशहाल, लाचार, लाजबाब, नालायक, नापसन्द, बेतक्कल्लुफ, बेगुनाह, हमदर्द, हम-कौम, गैर-मुनासिब, गैर-हाजिर, हर रोज, हर-दिल आदि।

Head-Master, Head-Examiner, Sub-Deputy, Sub-Inspector, Sub-continent, Sub-judice आदि।

हिन्दी ने भी इन्हें अपने तौर पर स्वीकार कर लिया है, यथा- हेड-पंडित हेड-गुरू।

प्रत्यय-प्रणाली:—संस्कृत के समान हिन्दी में भी अनेक प्रत्यय है जिनके द्वारा शब्दों का विविध रूपों में निर्माण होता है। संस्कृत के अतिरिक्त, हिन्दी में बहुत से प्रत्यय विदेशी भाषाओं से भी आ गये है और अब हिन्दी भाषा में घुलमिल गये है। यह भाषा की विशेषता है कि इसने विदेशी शब्दों में अपना प्रत्यय जोड़कर या अपने शब्दो में विदेशी प्रत्यय जोड़कर नये शब्दों की रचना की है। यथा—

(क) विदेशी प्रत्यय वाले हिन्दी शब्द:—

गिरावट, दिखावट, बनावट, सजावट।

(ख) हिन्दी प्रत्यय से विदेशी शब्द:—

मास्टराइन, डाक्टराइन, अफसराइन, मुगलाइन।

(ग) विदेशी प्रत्यय सहित विदेशी शब्द:—

इत्रदान, कद्रदान, पानदान, मेहरबाँ, बियाबाँ।

(घ) विशुद्ध हिन्दी (शब्द और प्रत्यय):—
रटन्त, गढन्त, घुटन्त, मनिहार, पनिहार, गलहार आदि।

भाषा के शास्त्रीय अध्ययन मे इन प्रत्ययों का महत्व है तथा यह हिन्दी भाषा की विशेषता है कि इनने प्रत्ययों के विविध रूपों को जानने का सुअवसर मिलता है।

कारक:—संस्कृत के समान हिन्दी संज्ञाओं में भी ८ कारक होते है। पर हिन्दी में संस्कृत कारकों के से चिन्ह प्रयुक्त नहीं होते। वे अश्लिष्ट रूप मे ही रहते है; श्लिष्ट रूप में नही। साथ ही इनकी बहुरूपता नहीं है जो सस्कृत भापा मे मिलती है।

वचन:—संस्कृत में वचन भेद-एक, द्वि, ब के रूप-में मिलता है। लेकिन हिन्दी मे द्विवचन को कोई स्थान नही मिला है। अंग्रेजी मे भी केवल Singular और Plural Number का विधान है।

लिंग:—हिन्दी भाषा की सबसे बड़ी विशेषता उसके लिंग-निर्णय की पद्धति में है। सामान्यत: भाषाओं में केवल जीवधारियों का ही पुल्लिंग और स्त्रीलिंग में विभाजन पाया जाता है लेकिन यह हिन्दी की विशेषता है कि सभी संज्ञाओं का लिग निर्णय किया जाता है साथ ही क्रियाओं में भी लिग निरुपण पाया जाता है। क्रियाओं का लिग-निर्णय तो उनके कर्त्ता के लिंग के अनुसार किया जाता है। अतएव इसमें कोई कठिनाइ नहीं। लेकिन जड वस्तुओं के लिंग-निर्णय में विशेष कठिनाइयां होती हैं। इनमें किसी नियम विशेष का विधान सुलभ रीति से जानना संभव नहीं है, फिर उनमैं एक रूपता भी नहीं है जैसे—

'मोती', 'दही', पुल्लिग हैं और भूमि, मिट्टी स्त्रीलिंग हैं। दया, माया, ममता, समता स्त्रीलिंग हैं। 'सूत' पुल्लिग हो लेकिन 'धूप' स्त्रीलिंग हो जाय। 'नयन' तो पुल्लिग ही रहे लेकिन 'आँखें' स्त्रीलिंग हो जायँ।

इस प्रकार का लिंग-विधान विदेशियो और अहिन्दी भापियों को हिन्दी सीखने में बाधायें उपस्थित करता है। अतएव हिन्दी की इस विशेषता की ओर हिन्दी शिक्षक का ध्यान जाना चाहिये।

क्रियायें:—हिन्दी में क्रियाओं की जटिलता तथा बहुलता नहीं है। संस्कृत में लगभग २००० धातुएँ थी पर शनै:-शनै: हिन्दी में इनकी संख्या

मे कमी होती गया। आज हिन्दी में लगभग ४००धातुएँ है जो किसी-न-किसी रूप से संस्कृत से आयी है; शेष हिन्दी की अपनी अथवा विदेशी भाषाओं आर बोलियों की है। हिन्दी में क्रियाओ का अभाव सर्वदा चिन्ता का विषय रहा है। श्रा श्यामसुन्दर दास जी ने हिन्दी की विशेषताओ का उल्लेख करते हुए कहा है कि "यह भी स्वीकार करना पड़ता है कि इसमें (हिन्दी मे) क्रियाओं के सूक्ष्म विभेदो तथा अनेक वस्तुओं के आकार-प्रकार तथा रूपरग सम्बन्धी छोटे-छोटे अन्तरों को व्यजित करने की क्षमता अपेक्षाकृत कम है।"*

हिन्दी मे काल का बोध स्वतन्त्र रूप से नही, सहायक क्रियाओ के माध्यम से ही विशेष रूप से होता है। जैसे मैं बाजार जाऊँगा। लिंग के अनुसार भी क्रियाओं मे भेद हुआ करता है लडका जाता है, विमला जाती है। सहायक क्रिया—होना—का हिन्दी की बोलियों और उपभाषाओं में विभिन्न तरह के उपनियम तथा विधान निर्मित हुए है।

इस प्रकार हिन्दी की भाषागत विशेषताओं की व्याख्या थोडे में नहीं की जा सकती। केवल मर्मज्ञ वैयाकरण हा इसकी पूर्ण समीक्षा कर सकते हैं जिन्हें "वाणी सुवसना नव-बधू की भाँति अपने अंग-प्रत्यंग दिखला देती है। अन्य जन ता वाणी को देखते हुए भी नही देखता, सुनते हुए भी नहीं सुनता।"

हिन्दी की इन भाषागत विशेषताओ के विवेचन के पश्चात् यह उचित प्रतीत होता है कि हम हिन्दी के विद्यार्थी के लिए उन पक्ष और बिपक्ष की परिस्थितियों का वर्गीकरण भी कर दें। इस प्रकार के वर्गीकरण से यह लाभ होगा कि हिन्दी के शिक्षक अपने अध्यापन-कार्य की अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों से पूर्णतया पहले से ही अवगत हो जायेंगे।

(क) हिन्दी का वास्तविक स्वरूप सरल, सुबोध, सुगम्य है अतएव इस भाषा के अध्ययन में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती। वर्णो का वर्गीकरण इतना मनोवैज्ञानिक और विधिपूर्ण है कि प्रारम्भ से ही बालक को इसका वैज्ञानिक अध्ययन करने का अवसर और अभ्यास मिल जाया करेगा। हिन्दी की तुलना में अंग्रेजी या अरबी फारसी का वर्णमाला इतना स्पष्ट, विधिपूर्ण तथा मनोवैज्ञानिक नही है। वर्णों का अपनी ध्वनि के अनुसार ही नाम है तथा

* हिन्दी भाषा और साहित्य—श्यामसुन्दर दास, पृ० १६३।

शब्दो का निर्माण ध्वनि के अनुकूल ही होता है। बालक को अंग्रेजी की तरह यह श्रम नही करना पड़ता कि put (पुट) कहा जाय और किस कारण shut (शट) कहा जायगा। हिन्दी में उच्चारण, ध्वनि के अनुरूप ही शब्द जोड़े जाते हैं। हिन्दी की लिपि विश्व की सभी लिपियों में सरल और स्पष्ट है यह एक ही प्रकार से बराबर लिखी जाती है, या छापी जाती है। इसके विपरीत अंग्रेजी की लिपि की यह जटिलता है कि मुद्रण की लिपि और लिखने की लिपि मे पर्याप्त अन्तर है। बड़े और छोटे अक्षरों का भी वाह्यरूप अलग-अलग है। अतएव बालक को अंग्रेजी की लिखी लिपि और छपी हुई लिपि में अन्तर को समझने के लिए विशेष चेष्टा करनी पड़ती है। उर्दू मे लिपि की जटिलता सभी जानते हैं। वह दायें से बायें लिखी जाती है, जब अंग्रेजी, हिन्दी या अन्य भाषाओं की लिपियाँ बायें से दायें लिखी जाती हैं। चीनी भाषा की जटिलता देखिये कि ऊपर से नीचे लिखी जाती है। इन सभी झंझटों से हिन्दी मुक्त है।

हिन्दी शब्द-भंडार मे कुछेक शब्द ऐसे हैं जिनके अनेक अर्थ होते है। हिन्दी शब्द-शब्दसागर मे खोजकर देखें केवल कला के ३३ और सारंग के ६६ पर्यायवाची मिलेंगे।

हिन्दी की स्पष्टता इस बात मे है कि प्रत्येक ध्वनि या वर्ण स्वयं में पूर्ण है। यह निम्न विवरण से स्पष्ट होगा। अँग्रेजी में दो अक्षरों का संयोग आवश्यक है।

हिन्दी वर्ण	अंग्रेजी
ख	kh
घ	gh
थ	th
छ	chh
झ	jha
ध	dh
फ	ph
भ	bh
श	sh

लेकिन दूसरी ओर हिन्दी की कुछेक प्रतिकूल परिस्थितियाँ भी हैं जिनकी ओर ध्यान दीजिये।

(क) शब्दों के निर्माण के विभिन्न नियम हैं। 'कर्म' 'काम' तो हुआ, लेकिन वही 'शर्म' से 'शाम' नहीं हो सकता।

(ख) हिन्दी शब्दों के जहाँ एक ओर अनेक अर्थ निकलते हैं वही उनकी असमर्थता भी स्पष्ट है। इस सम्बन्ध में हिन्दी भाषियों ने भी यह अनुभव किया है कि कुछेक हिन्दी के शब्द अपने अर्थो को स्पष्ट करने में सर्वथा विवश है। खडी बोली हिन्दी के शब्द-भांडार में सम्भवतः कुछ शब्द है ही नही या है तो वे देशज की कोटि मे आते है।

घिसना	घिसवाना
पजाना (तेज करना)	पजवाना (तेज करवाना)
लाना	मगाना
पकडना	पकड़वाना
पीटना	पिटवाना

(ग) हिन्दी सीखनेवालों को सबसे बडी कठिनाई उसके लिंग-निर्णय व्यवस्था मे होती है। ऊपर यथास्थान इस सम्बन्ध में विवेचन किया गया है, जिससे विदित हो गया होगा कि लिग-सम्बन्धी कठिनाई क्या होती है। हिन्दी व्याकरण मे इस सम्बन्ध में सामयिक संशोधन अपेक्षित है जिससे हिन्दी सीखने वालों को सुविधा हो सके।

(घ) हिन्दी की एक कठिनाई और है कि शब्दो के वाह्यात्मक स्वरूप मे एक सर्वमान्य नियम अपनाया गया नहीं मालूम पड़ता है।

इससे विद्यार्थी को यह मालूम नही होता कि वह जो कुछ लिख रहा है वह शद्ध रूप मे है या नही। जैसे :—

आइये	आइए
चाहिये	चाहिए
नयी	नई
गयी	गई
जाइये	जाइए आदि।

(च) इनके अतिरिक्त व्याकरण की जटिलतायें भी हैं जिन्हें अहिन्दी भाषी क्या हिन्दी भाषी विद्यार्थियों को भी सामना करना पड़ता है। अतएव व्याकरण का सरलीकरण तथा उसे अधिक उदार करने का प्रमुख समस्या है जिनकी ओर हमारे वैयाकरण तथा भाषा शास्त्रियों का ध्यान जाना चाहिये।

(ख) लिपि की विशेषता

हिन्दी भाषा की एक अनन्यतम विशेषता उसकी लिपि के सम्बन्ध की है। आर्यावर्त्त में, प्राचीन काल मे, खरोष्ट्री और ब्राह्मी दो लिपियाँ विद्यमान थी। कालान्तर मे ब्राह्मी लिपि से ही मध्म तथा आधुनिक कालो की समस्त भारतीय लिपियो का विकास हुआ। "ई० सं० की १२वी शताब्दी से लगातार अब तक नागरी लिपि बहुधा एक ही रूप में चली आती है।"*

लिपि के आवश्यक गुणो की चर्चा करते हुये श्री पद्मसिंह शर्मा ने लिखा है कि—लिपि किसी भाषा को लिखने का साधन है। लिपि का साधन वही स्वीकार करना चाहिये जो सबसे सुगम और असंदिग्ध हो, भाषा की प्रकृति के अनुकूल हो, उसके शब्दों को यथार्थ रूप मे प्रकट करने की क्षमता रखता हो। उसमे जो कुछ लिखा जाय उसे एक बच्चा भी आसानी से पढ सकता हो। जिसके सीखने में सबसे कम समय और शक्ति लगे। ऐसी लिपि ही सर्व-साधारण मे शिक्षा के प्रचार और प्रसार का साधन बन सकती है। नागरी लिपि मे यह सब गुण पाये जाते है। उनमे अक्षरों की बनावट बहुत ही वैज्ञानिक और उच्चारण सर्वथा निर्दोष है, इस बात को बड़े-बड़े देशी और विदेशी विद्वानों ने मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है।"†

हिन्दी लिपि की यह विशेषता है कि वह केवल एक ही प्रकार से बायें से दाहिनी ओर लिखी जाती है और वह एक ही प्रकार से पढ़ी भी जाती है। यहाँ लिपि और शब्द का साम्य पाया जाता है। लेकिन अरबी, फारसी और उर्दू लिपियों या समस्त सेमेटिक भाषाओं की लिपियों के सम्बन्ध में नहीं कही जा सकती है।

अरबी लिपि में इस दोष का नमूना यह है कि यहाँ 'कतब' शब्द तीन प्रकार से पढा जा सकता है जेसे 'कुतब', 'कुतुब' तथा कतब। इन तीनों में कौन सा अर्थ कहाँ पर होगा यह केवल वाक्य प्रसंग से ही मालूम हो सकता है। लेकिन संस्कृत तथा यूनानी या रूमी अक्षरों की तरह हिन्दी में भी यह लिखा जाय तो किसी प्रकार के संदेह की गुंजाइश नहीं होगी। 'कतब' एक ही प्रकार से लिखा और पढ़ा जायगा और इसके अर्थ ग्रहण में किसी प्रकार की परेशानी नही होगी। अतएव जहाँ अरबी, फारसी या उर्दू के विद्यार्थी विना उसके कोष और व्याकरण से विज्ञ हुए नहीं पढ़ सकता, वहाँ हिन्दी का

* भारतीय प्राचीन लिपिमाला, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पृ० ७०

† हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी, पृ० ७४–७५

विद्यार्थी अक्षर पहचानने के बाद ही हिन्दी को बिना अर्थ समझे और बिना कठिनाई के भली भाँति पढ़ सकता है।

उर्दू, फारसी की लिपि सम्बन्धी झझटों और कठिनाइयों का वर्णन करते हुए 'तमद्दुने हिन्द' के लेखक शम्सुल्उलमा जनाब मौलवी सय्यद अली साहब बिलग्रामी ने बडा ही विशद वर्णन किया है। मौलवी साहब स्वयम् अरबी, फारसी और संस्कृत आदि अनेक भाषाओं के प्रकाण्ड विद्वान थे। उनके वर्णन का आवश्यक अंश यहाँ उद्धृत किया जा रहा है*—

"......पहलवी और फारसी की नाईं उर्दू भी उन अभागी भाषाओं में से है जिनके अक्षर दूसरी जाति से बनाये गये है और जिन अक्षरो का भाषा से कोई सम्बन्ध नही है। अर्थात् भाषा मे जो शब्द है उनके लिए अक्षर अक्षर नही है। किसी-किसी शब्द के लिए बहुत से अक्षर है और किसी-किसी शब्द के लिए अक्षर है ही नही।"

नागरी लिपि की प्रशंसा केवल हिन्दी भाषी या भारतवासी ही नही करते है कतिपय अंग्रेज विद्वानो ने भी इसकी प्रशंसा की है। शारदाचरण मित्र द्वारा स्थापित 'एक लिपि विस्तार परिषद्' के एक अग्रेज उप प्रधान ने तो इस लिपि की वैज्ञानिकता देखकर यहाँ तक कहा था कि— 'देवनागराक्षरों का सारे भूमण्डल मे प्रचार होना चाहिये, क्योंकि इसके सदृश सर्वाङ्गपूर्ण दूसरी कोई लिपि नही।" कलकत्ता हाईकोर्ट के जस्टिम शरफुद्दीन ने कहा था कि भारतवर्ष के मुसलमानों को 'कुरानशरीफ' भी देवनागराक्षरों मे ही छपवाना चाहिये।"

उर्दू, फारसी तथा अरबी लिपियों की विवशता इतनी है कि अन्य भाषाओं के शब्दों को स्वच्छ और शुद्ध तरीके से अपनी लिपि मे लिखना आसान नहीं है। शब्दों का अपभ्रंश और विकृत रूप हो जाता है। इन लिपियों के दोषपूर्ण होने का यह फल होता है कि संस्कृत हिन्दी के शब्दो की दुर्दशा-सी हो जाती है। अर्थ का अनर्थ हो जाता है। इस दुर्दशा का प्रत्यक्ष उदाहरण देखिये।

हिन्दी	उर्दू	उर्दू में उच्चारण
साख्य	संखिया	
कलधौत	कुलधूत	

* हिन्दा, उर्दू और हिन्दुस्तानी, पद्मसिंह शर्मा पृ० ७९ से उद्धृत।

हिन्दी	उर्दू	उर्दू मे उच्चारण
बृहत्सहिता	बरी हमहत्या	بڑی ہمہتیا
गौड प्राकृत का	गोदा पिराकित	گودا پراکت
मैथिल	मथीला	متھیلا
अट्टालिका	अथालिका	اتھالکا
सावित्रो देवी	सरावती देवी	سراوتی دیوی
पार्वती	परबती	پربتی
चातक	चटाका	چٹاکا

इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं। लिपि का दोष कितना उपहास्यास्पद हो जाता है जब हम देखते है कि चण्डीदास चांदीदास और अग्रदास आगरादास भी हो जाते है। चण्डीदास एक प्रकार का धातु (चाँदी) का दास हो जाता है तथा अग्रदास स्वयं—आगरा शहर का दास—का द्योतक हो जाता है।

नागरी लिपि के अक्षरों की बनावट के सम्बन्ध मे कुछ लोगों ने आध्यात्मिकता की भी पुट भर दी है। इस सम्बन्ध मे उनका कहना है कि नागरी अक्षरों की बनावट शून्य (०) से सम्बन्ध रखती है। इस लिपि में प्राय: प्रत्येक अक्षर मे शून्य या उसका कोई न कोई अंश अवश्य ही मिलता है। भारतीय दर्शनवाद के अनुसार शून्य का ब्रह्म या आकाश का प्रतिरूप माना गया है और आकाश का गुण शब्द ही है। क ख ग आदि सभी वर्गों में यह शून्य या शून्याश पाया जाता है। जैसे—

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ ०

अतएव नागरी लिपि की यह प्रमुख विशषता है कि अक्षरों की नित्यता और पूर्णता को अभिव्यक्त करने के लिए शून्य को ही प्रतीक माना गया है। बहुत-से विद्वान् इस व्याख्या का आधार केवल कल्पना मात्र मानते हैं, कोई ऐतिहासिक और शास्त्रीय आधार नहीं। तथ्य चाहे जो भी हो, यह मानना पड़ेगा कि नागरी लिपि पूर्ण रूप से वैज्ञानिक प्रणाली पर अवलम्बित है। "हाथ को जितना कम प्रयत्न करना पड़े और सरलता से अक्षरों का निर्माण हो सके और पढ़ने मे भ्रम या सन्देह न हो ऐसी लिपि हिन्दी ही है।"*

* अभिनव भाषा विज्ञान, पृ० २४०

अरबी फारसी लिपियो के पढ़ने मे अनेक भ्रम पैदा होते हैं यह बताया जा चुका है। अंग्रेजी लिपि में भी इस प्रकार के अनेक दोष है। यहाँ छापे के अक्षर और लिखावट के अक्षर मे भेद हैं, साथ ही छोटे और बड़े अक्षरों का भी विभेद है। इससे विद्यार्थी को छपाई के अक्षरो को अलग से और लिखावट के अक्षरो को अलग से पहचानने का श्रम करना पड़ता है। इसमे कठिनाई होती है। अतः नागरी लिपि ही सबसे सरल, सुगम्य तथा सुग्राह्य प्रतीत होती है।

टकण मे हिन्दी लिपि की मात्राओ और संयुक्ताक्षरो के फलस्वरूप कुछ कठिनाइयाँ होती है। लेकिन राष्ट्रलिपि होने के नाते इसमे राष्ट्रीय स्तर पर सशोधन किये जा रहे है और किये जायेगे।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि देवनागरी लिपि में हिन्दी कितनी सरल, सुबोध, सुगम्य तथा सुलभ रीति से सीखने योग्य है। यह उसकी सबसे प्रमुख विशेषता है कि—

> "भारतीय लिपियो मे प्रधान, प्रतिनिधि, स्थानीय लिपि देवनागरी के वर्गो का क्रम वैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित है। ध्वनि तत्व के विश्लेषण के अनुसार इसके वर्ण सजाये गये है और इस दृष्टि से संसार मे वैज्ञानिक पद्धति से सज्जित वर्णमालाओं में भारतीय लिपि एकमात्र लिपि है।"*

(ग) *हिन्दी साहित्य की विशेषताएँ*

हिन्दी साहित्य की विशेषताओं का विवेचन इस अध्ययन का विषय नही है। हिन्दी शिक्षकों और विद्यार्थियों के पास इस सम्बन्ध में पर्याप्त पूर्वपीठिका पहले से ही विद्यमान होगी। फिर भी हिन्दी की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए यह सर्वथा वांछनीय होगा कि साहित्य-जगत का विशेषताओं का भी एक सक्षिप्त परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत कर दिया जाय।

यह सभी को विदित है कि हिन्दी की उत्पत्ति संस्कृत से ही है। जब संस्कृत साहित्य अपने उत्कर्ष की चरम सीमा पर पहुँच कर जन साधारण से अति दूर चला गया था तो भाषा-विकास के सिद्धान्त के अनुसार आर्यावर्त्त में प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं का विकास हुआ। यह भाषा वंशावली

---

* भारत की भाषाएँ और भाषा सम्बन्धी समस्यायें, सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, पृ० ११८-११६।

से ज्ञात हो गया होगा। विक्रम की ग्यारवी शताब्दी के लगभग जब "अपभ्रंश साहित्य अपने आसन से क्रमशः च्युत हो रहा था, उस समय हिन्दी सम्भवतः उस आसन को प्राप्त करने के लिए उन्मुख हो रही थी।"* अतएव हिन्दी ने संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश की विशेषताओं को ग्रहण किया है। लेकिन विशेषतः हिन्दी ने संस्कृत की उन सभी विशेषताओं को अपनाया है जिनके बल पर संस्कृत विश्व की सभी भाषाओं और साहित्यों की जननी मानी जाती है और "किसी समय संस्कृत सम्पूर्ण संसार की बोलचाल की भाषा थी।"† हिन्दी ने इस प्रकार न केवल अपनी पूर्ववर्ती साहित्यों की विशेषताओं को ही ग्रहण किया है वरन् उसने आर्यावर्त्त के जीवन की सम्पूर्ण भावनाओं को व्यक्त किया है।

हिन्दी साहित्य पर भारतीय आदर्श जीवन का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है जो साहित्य की सर्व प्रथम विशेषता मानी जाती है। भारतीय जीवन सदा से धर्म और अध्यात्म की भावना से लबालब भरा रहा है। धर्म ने तो जीवन के प्रत्येक अंग को ही अपने में सन्निहित कर लिया है। भारतीय परम्परा के अनुकूल यहाँ लोक की अपेक्षा परलोक पर अधिक विश्वास, आस्था तथा भावनात्मक तादात्म्य स्थापित किया गया है। हिन्दी साहित्य में इस प्रकार आदर्श जीवन की व्याख्या सभी उपलब्ध साहित्यों में किसी न किसी रूप में अवश्य मिलती है। हिन्दी साहित्यकारों का इस तरह यह स्पष्ट लक्ष्य रहा है कि पाठक के सामने आदर्श भारतीय जीवन का चित्र प्रस्तुत किया जाय।

धर्म और अध्यात्म का इतना गहरा प्रभाव हमारे जीवन और उसकी दैनिक चर्या पर पड़ा है कि भारतीय जीवन सदा से समन्वय की ओर उत्प्रेरित रहा है। यह समन्वयवाद सभी क्षेत्रों को पूर्णतया प्लावित करता है चाहे साहित्य, चाहे धर्म, चाहे दर्शन, चाहे ललित-कला ही क्यों न हो। यहाँ तक कि युद्ध क्षेत्र या शासन-शास्त्र में भी इस समन्वय की सफल कल्पना प्रतिबिम्बित है। इस समन्वय में हमारा अटूट विश्वास है और पंचशील के सिद्धान्त का यह प्रेरक है। अतएव भारतीय जीवन का यह आदर्श और समन्वय भाव हिन्दी साहित्य को सदा से अनुप्रेरित कर रहा है और यही उसकी सबसे बड़ी विशेषता है जो कि राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण में प्रभावकारी

---

* हिंन्दी भाषा और साहित्य, श्यामसुन्दर दास, पृ० २१८।

† हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास (हरिऔध) ग्रन्थ से उद्धृत. पृ० ६–७

परिस्थिति है। यह विशेषता हिन्दी के महाकाव्य, खण्डकाव्य, गीतिकाव्य, कहानी, उपन्यास, आख्यायिका, नाटक एव निबन्धो मे परिलक्षित होता है।

हिन्दी साहित्य मे भारत-भूमि का प्रचुर वर्णन मिलता है। प्रकृति वर्णन तथा ऋतु वर्णन इतना मनोहर तथा सुन्दर है कि हिन्दी साहित्यिकों की कल्पना की उडान विश्व के सभी साहित्यो मे बेजोड़ है। रीति ग्रन्थों में मानव-भावनाओ का यथेष्ट चित्रण विश्व की किसी भी भाषा की विशेषता से होड ले सकता है। रीति-निरूपण जिस पाण्डित्य से हिन्दी मे हुआ है वास्तव मे उसे विश्व की अन्य भाषाओ मे ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित करती है।

हिन्दी साहित्य मे प्रकृति-वर्णनो मे रहस्यमयी भावनाओं का प्रतिष्ठापन जितना व्यापक और प्रभावपूर्ण हुआ है वह यहाँ के साहित्यिकों की साहित्य-साधना का परिचायक है।

हिन्दी मे वीर गाथा तथा रीति-ग्रन्थों का विशाल भण्डार उपलब्ध है जो साहित्य-प्रेमियो के अध्ययन का रुचिपूर्ण विषय है।

हिन्दी साहित्य की सबसे बडी विशेषता यह है कि उसने आधुनिक पाश्चात्य साहित्य के प्रभावो को भी स्वच्छन्द हृदय से स्वीकार किया है तथा उन्हें अपने मनोनुकूल आत्मसात कर लिया है। यह आत्मसात करने की प्रवृत्ति उसकी प्रगतिशीलता तथा उदारता का परिचायक है जो उसका आभूषण है। पाश्चात्य साहित्य का यह प्रभाव इतना व्यापक हुआ है कि इसने हिन्दी के विभिन्न अंगो को परिपुष्ट किया है। साथ ही उसने काव्य के नये-नये रूपों का सृजन किया है। विदेशी तथा भारत की अन्य भाषाओं के बहुमूल्य ग्रन्थो का अनुवाद हिन्दी मे होता जा रहा है जो उसकी ग्राह्य शक्ति का परिचायक है।

प्रस्तुत अध्याय मे हिन्दी भाषा की भाषा, लिपि एवं साहित्य सम्बन्धी विशेषताओं का विधिवत अध्ययन केवल इस उद्देश्य से किया गया है कि हिन्दी के शिक्षक और छात्र अपनी अध्ययेत भाषा का विशेषताओं का व्यापक ज्ञान कर लें।

अध्याय ६

मौखिक अभिव्यक्ति की शिक्षा

मौखिक अभिव्यक्ति में बोलने का स्थान निरपवाद रूप से बहुत ही महत्वपूर्ण है। भाव प्रकाशन--मनुष्य के भावों का प्रकटीकरण—एक नैसर्गिक पुकार और उसकी प्रक्रिया है। आवश्यकताओं की पूर्त्ति तथा विचारों की प्रतिक्रिया के हेतु, चाहे शारीरिक या मानसिक ही क्यों न हो, मानव अपने भावों को अभिव्यक्त करता है। इस अभिव्यक्ति मे बोलना ही सबसे प्राचीन, सबसे प्रभावोत्पादक, व्यावहारिक तथा उपयोगी साधन है।

एक नवजात शिशु अपनी भूख का प्रदर्शन, माँ के दूध के लिये, चिल्लाकर करता है। यही चिल्लाना मानव की प्रथम वाणी है। ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता जाता है उसका यह रोना, चिल्लाना सार्थक वाणी का रूप ग्रहण करने लगता है। वह अपनी माँगे अब रोकर नहीं, इशारे से नहीं वरन् वाणी के द्वारा व्यक्त करता है। पीछे चलकर वह भावों के अभाव में, भाषा के सीमित क्षेत्र में, टूटी-फूटी, अस्पष्ट बोली में तुतला कर ही अपने भाव और आवश्यकता को व्यक्त करता है। भाषा का ज्यों-ज्यों उसे सम्यक ज्ञान होता जाता है वह अपने विचारों, आवश्यकताओं और जजबातों को सुन्दर-सुन्दर शब्दों मे चुन-चुनकर प्रकाशित करता है। वाणी में प्रौढ़ता आने के कारण उसका भाव-प्रकाशन अधिक विधिपूर्ण, वैज्ञानिक एवं विशिष्टतापूर्ण प्रणाली में होता है। जब वह लिपि का ज्ञान प्राप्त करता है तब तो अपने भावों को सुन्दर-सुन्दर अक्षर, अलकारमयी भाषा, मनोहर शब्दावली आदि गुणों से लैश शैलीयुक्त भाषा में हमारे सामने लिखकर व्यक्त करता है। लिपि के ज्ञान के अभाव में वह लिख तो सकता नहीं लेकिन पर्याप्त मात्रा में बोलता अवश्य है। वही बालक प्रौढ़ होकर भावाभिव्यक्ति के बिभिन्न साधनों को अपनाने लगता है और समाज का एक उपयोगी सदस्य के रूप में हमारे सामने आता है।

मानव की कहानी बालावस्था में संक्षिप्त रूप में अवलोकनीय है। अतः न केवल बालक के मनोवैज्ञानिक विकास-क्रम से यह बात पुष्ट होती है कि

बालना एक महत्वपूर्ण सर्वप्रथम साधन है—वरन् वह तो मानव-विकास के ऐतिहासिक तथ्यों से भी सर्वथा प्रमाणित हो जाती है। जिस रूप में मानव का विकास हुआ है, अक्षरशः उसी रूप में बालक का भी विकास होना स्वाभाविक है। भाव-प्रकाशन की प्राचीनतम् प्रणाली बोलना ही है। अतएव मानव-जीवन मे इसका बहुत ही महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट स्थान निर्दिष्ट है।

यदि इन विशिष्टिताओं के आधार पर 'बोलना' को महत्वपूर्ण पद पर प्रतिष्ठापित करना है तो नीचे की पंक्तियो मे उसका विशेष विश्लेषण और प्रतिपादन देखिये।

(क) बोलना अभिव्यक्ति का एक विशेष साधन है। यह स्वयं मे एक कला है। बोल-चाल का पहला महत्व हमारे दैनिक जीवन की विभिन्न आवश्यकताओ की पूर्ति और विचार व्यक्त करने की क्षमता से है। घर मे, बाजार मे, कार्यालय में, सम्भाषण मे, यात्रा मे कहीं भी जाये हमारे प्रतिदिन का अधिकाश समय बोल-चाल मे ही बीतता है। खाना चाहिये, चाय चाहिये, एक गिलास पानी चाहिये, समाचारपत्र लाओ, एक रेडियो ले आओ, छडी चाहिये, छाता चाहिये, खाना परसो, नाश्ता निकालो, एक पेन्सिल लाओ आदि हमारी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के हेतु शब्दावली प्रयुक्त होते हैं। ये आवश्यकताएँ दूरभाष से या लिखकर कभी पूरी नही होगी। परिवार, मित्र-मण्डली, सामाजिक सम्पर्क के स्थान ऐसे स्थल है जहाँ वाणी का प्रयोग किया ही जायगा। तात्पर्य यह है कि जहाँ दो व्यक्तियो का सम्पर्क होगा वही वाणी अवश्य ही आ झमकेगी। बालक विद्यालय मे जाने पर अपने साथियों, शिक्षकों तथा अन्य आगन्तुको के सम्पर्क मे आने पर वाणी का प्रयोग करता है और करेगा ही।

इश प्रकार व्यक्ति के दैनिक जीवन में बोलना सबसे अधिक समय लेता है और यही उसका प्रमुख सहारा है जिसके द्वारा वह अपने विचार व्यक्त कर सकता है। अतएव बोलना हमारे जीवन में एक विशेष महत्व का अधिकारी है।

(ख) 'बोलना' हमारे जीवन का इतना व्यापक क्रियाकलाप है कि वह समाज में भी हमारा स्थान निर्दिष्ट करता है। सामाजिक जीवन मे हम कितने गहरे या छिछले है—यही बोलना, मौखिक अभिव्यक्ति का एक विशेष माध्यम—निर्णायक है। जो व्यक्ति बोलना नही जानता वह समाज में गूँगा

ही है, वह दब्बू बना रहता है। वह अपना कोई विशेष स्थान नहीं रखता। इसके विपरीत एक बोलनेवाला अपने समाज मे, जहाँ वह उठता-बैठता है, एक विशेष स्थान और प्रभाव रखता है। वह अपने क्षेत्र मे एक आकर्षण का केन्द भी बन सकता है। जिस समूह मे वह बैठता है अपने बोलने की कला में प्रवीण होने के कारण सभी का ध्यान आसानी से अपनी ओर खीच सकता है। वह सम्मान का भी अधिकारी हो जाता है—क्योकि वह अपने विचार व्यक्त करने के साथ ही औरों के मनोभावों को भी सुन्दर शब्दो में व्यक्त कर सकता है। इस कारण से वह उनके बीच प्रिय भी बन पाता है। इसके विपरीत वे व्यक्ति जो लज्जाशील प्रकृति के है समाज में कुछ भी बोलने में शर्माते है। फल यह होता है कि उनका व्यक्तित्व जम नहीं पाता। वे स्वम् औरो के वशीभूत हो जा सकते है, औरो को अपनी ओर खीच नही सकते। विद्वता और चीज है, वाकपटुता और चीज। समाज में विद्वानों और उनकी विद्वता का आदर होता है, लेकिन लौकिक प्रतिष्ठा उन्ही लोगो को विशेष मिलती है जो अपनी वाक्पटुता से औरों के बीच अपना प्रभाव जमा सकें; अपनी कला से लोगों को अपने वश मे ले आवें। आप बाजारों, कचहरियों, रेलवे प्लाटफार्म या चलती गाड़ी में या किसी भी सार्वजनिक स्थान में देखिये यह बोलना कितना उपयोगी, प्रभावोत्पादक और महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यदि विक्रेता वाक्पटु नही होगा तो वह ग्राहकों को अपनी ओर खींचकर उन्हे चीज खरीदने को बाध्य नहीं कर सकता। उसकी यही कला जादू-सा असर करती है जो देखते-देखते ग्राहकों के बीच अपना माल बेचकर डिब्बा तो खाली लेकिन अपनी जेब भर लेता है।

समाज के बड़े-बड़े नेता बोलने की कला में प्रवीण पाये गये हैं।

(ग) आज प्रजातन्त्र का युग है। इस आधुनिक युग में 'बोलने' का विशेष महत्व है। हमारे उम्मीदवार, राजनैतिक नेता मतदाताओं के पास मतदान के लिये बराबर जाया करते हैं। निर्वाचन काल में इन उम्मीदवारों तथा उनके समर्थकों का हाल देखिये। कितने क्रियाशील और कितने व्याकुल दिखायी पड़ते हैं। लेकिन जो उम्मीदवार अपनी नीति, कार्यक्रम तथा जनता के कल्याणार्थ अनेक योजनाओं का सच्चा और आशापूर्ण चित्र खींचता है वही उनका मत पाने का उम्मीदवार भी हो सकता है। अपनी ओर जनता के ध्यान को वह अनेक तर्कों के सहारे खींच लेता है, अपने भावी कार्यक्रम का सब्ज-बाग दिखाता है। वाक्पटुता में इतना प्रवीण होता

है कि वह जनता के वास्तविक और सच्ची पुकार को ही अपनी भाषा में व्यक्त करके उनके हृदय मे अपना स्थान बना लेता है। वाक्पटु उम्मीदवार मैदान मे बाजी मार लेता है।

हमारे विधान-सभाओ और परिषदो में सदस्यगण, मन्त्रीगण अपने वक्तृत्व के बल पर ही अपना विशप स्थान रखते है। जो विधायक बोल नहीं पाता, उसे कोई पहचानता तक नही। अतएव स्पष्ट है कि सार्वजनिक जीवन मे, समाज के बीच व्यक्ति के बोलने की कला का कितना आदर और कितनी उपादेयता है। निस्सन्देह विद्यालयो को छात्रो को बोलने की कला मे यथेष्ठ प्रशिक्षण देना चाहिए।

(घ) यदि बोलने की क्रिया का शैक्षिक विश्लेषण किया जाय तो पता चलेगा कि यह हमारे भावप्रकाशन या भाषा के ज्ञान की नीव ही है। बोलने की क्रिया पर ही हमारा भाव-प्रकाशन का सारा भव्य-भवन अव्यवस्थित है या यों कहिये, वक्तृत्व पर ही हमारा व्यक्तित्व कायम है। अध्ययन के प्रमुख अंगों-पढ़ना तथा लिखना—की नीव बोलने मे ही है। यही भाषाज्ञान का मूलाधार है। बच्चे पढने-लिखने के लिये तो ४–५ साल तक इन्तजार करते है लेकिन विद्यालय मे प्रवेश के समय वे काफी बोलना सीख लिये ही रहते है। कम से कम अपने काम चलाने लायक शब्द-भंडार तो अवश्य ही बना लिये रहते है।

यदि हम मानव प्रकृति का भी अध्ययन करें तो पता चलेगा कि बोलने का सम्बन्ध हमारे कान और जीभ से है। हम कुछ सुनकर ही उसका जवाब देते हैं या अपने विचारो को व्यक्त करने के लिये ही जिहवा का सहारा लेते हैं। अतएव इन दोनो अवयवो-कान और जीभ के प्रशिक्षण के बाद ही आँखों का स्थान पढने के लिये और हाथ का लिखने के लिये आता है। मानव की आदि अवस्था में भी इसी प्रक्रिया द्वारा भाव-ग्रहण (सुनना) और भाव-प्रकाशन (बोलना) हुआ करता था। अतएव शिक्षा के क्षेत्र मे भी इस ऐतिहासिक तथ्य का अनुसरण करना वाछनीय होगा।

अभिव्यक्ति मे जो विभिन्न साधन है—पढ़ना और लिखना—उनमें बोलना अधिक प्रभावोत्पादक है। इन दोनो क्रियाओं का प्रेरक 'बोलना' ही है। बोलकर याद करने का एक मनोवैज्ञानिक साधन मनोविज्ञों ने बताया है। बोलने से उच्चारण सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त होता है। इससे वाचन में पर्याप्त सहायता मिलती है। कथावाचकों और अच्छे वक्ताओ को देखिये। अपने कथा वाचन और प्रभावशाली वक्तृत्व से ही वे श्रोताओं को मंत्रमुग्ध-सा कर

देते हैं। बोलने पर शुद्धता का ख्याल करने से व्यक्ति शब्दों को अच्छी तरह पढ भी सकता है। एक अच्छा वक्ता स्वराधात, तथा लय का उचित ज्ञान रखते हुए भाषा के विभिन्न अवयवों को उचित मान्यता देते हुए अपने भाषण को अधिक प्रभावोत्पादक बना सकता है। वास्तव में जो व्यक्ति स्वराधात, सुस्वरता, अक्षर व्यक्ति (Articulation), शब्दोच्चारण आदि वाचन के नियमों से भिज्ञ रहता है, वह लोगो पर स्थायी प्रभाव डाल सकता है।

बोलना एक ऐसी व्यापक कला है कि उसके द्वारा हम शत्रु को मित्र और मित्रों को शत्रु बना लेते है। हमारे दैनिक सम्पर्क आदि में बोलचाल की शली, तौर-तरीका आदि बहुत महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी है।
रहीम ने बोलने का ही मनोहारी वर्णन इन पँक्तियों मे किया है :—

बातन हाथी पाइया;
बातन हाथी पाँव।

इस प्रकार स्पष्ट है कि हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में बोलने का कितना महत्वपूर्ण स्थान है।

बोलचाल के उद्देश्य:—अतएव शिक्षको का बोलचाल के महत्वों का दिग्दर्शन करके उनके प्रमुख उद्देश्यो की ओर भी ध्यान देना चाहिये।

(क) बोलचाल का प्रथम उद्देश्य यह है कि बालक अपने भावों को स्पष्ट, सरल, तथा सुग्राह्य शब्दों मे व्यक्त करने की क्षमता रखे। इसका अर्थ यह हुआ कि बालक को भावों का शुद्ध स्वरूप दृष्टिगत हो तथा उसे भावानुकूल भाषा भी मिल जाय। वह अपने मनोवाछित विचारों को जिसके सामने व्यक्त करे वह उसके भावों को साफ-साफ बिना किसी अस्पष्टता, कठिनाइ तथा मुश्किल के तथा अच्छी तरह समझ जाय। बोलने की सफलता सुनने-वाले को पूर्णरूप से समझ लेने में ही निहित है। जो लोग बोलचाल में अभ्यस्त नहीं होते, या जिनमे भावों के अनुसार शब्दों के चयन की क्षमता नही होती, कभी भी अपने भावों को हमारे सामने अच्छी तरह रख नही सकते। बोलचाल में स्पष्टता और स्वच्छता का अभाव इस बात का संकेत है कि व्यक्ति का भाव संभ्रान्त (Confused) है और वह स्वच्छ नहीं है। यह उसकी मानसिक विवशता का द्योतक है, जिसका कारण मानसिक अन्संतुलन हो सकता है। चाहे भाव उसके अपने न हों, चाहे भावों का शुद्ध नक्शा उसकी समझ में न आया हो, यह वह नहीं समझ पाता है कि वह क्या कहना चाहता है। भावों के अस्पष्ट स्वरूप के कारण वह साफ-साफ बोल नहीं पाता

है। यह भी हो सकता है कि भावों को भाषा के अभाव मे वह व्यक्त नहीं कर पा रहा हो। अतएव मौखिक अभिव्यक्ति तभी सफल हो सकती है जब हम ऐसा बोलें कि हमारा श्रोता हमे ठीक तरह से साफ-साफ समझ ले और समझने में किसी प्रकार की उसे कठिनाई या अडचन न हो। अतएव बोलने का प्रथम उद्देश्य सरल और स्पष्ट भाव प्रकाशन ही है।

(ख) उपयुक्तता तथा अवसरानुकूलता के उद्देश्य:–बोलने का द्वितीय उद्देश्य यह है कि वक्ता अपने भावों को व्यक्त करने के लिये उपयुक्त अवसर देखे और केवल अवसर के अनुकूल बात करने की कला मे प्रवीण हो। बोलना एक प्रकार की कुशल कला है। कहा भी गया है कि काल, स्थान और पात्र के अनुसार हमे बोलना चाहिये। ये निर्देश हमारे लिये उपयुक्त अवसर, उपयुक्त स्थान और उपयुक्त श्रोता की ओर सकेत करते है। यदि इस नियम मे किसी प्रकार की चूक हुयी तो हम 'रंग में भंग' या 'वेवक्त की शहनाई' के शिकार हो जाते है। हर्ष मे आनन्द के, शोक मे सहानुभूति के, रण में वीरता के उत्साहपूर्ण वाक्यो के प्रयोग का नियम बताया गया है। सभाओं मे संयमपूर्ण वाक्य हो, मन्दिर या पूजास्थलो मे शान्त वातावरण मे मूक भाषा का प्रयोग अभीप्ट माना गया है। इस प्रकार बोलने का एक विधान माना गया है जो यह संकेत करता है कि हमे किस अवसर पर क्या बोलना चाहिये।

जिनके बीच हम बात कर रहे है उनके शैक्षिक स्तर का भी हमे ख्याल करना चाहिये। ऊँची कक्षा वाला छात्र अपनी नीची कक्षा के साथियो के साथ, नीची कक्षा वाला ऊँची कक्षा के साथियो के साथ, गुरूजनों के साथ लघुजनों का शब्द-प्रयोग, हमजोलियो का संभापण क्रम, मित्रो और आगन्तुकों के बीच बातचीत का सिलसिला क्या और किस प्रकार का होना चाहिये बोलना सीखने के अन्तर्गत उसके उद्देश्यों को पूरे करते है। इस प्रकार, बोलने का वास्तविक उद्देश्य यही है कि पात्र के अनुसार, समय के अनुसार तथा परिस्थिति के अनुसार हमें बोलना चाहिये।

एक कुशल पदाधिकारी अपने समक्ष बैठे व्यक्ति से जब बाते करता है तो वह बहुत सी ऐसी बातों का ख्याल करता है जो उसे लोकप्रिय के साथ ही साथ भी सहानुभूति रखने वाला भी बताते है। सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं में बोलने का यह उद्देश्य पूर्ण होने से उन्हें जल्द ही जनप्रिय और विख्यात होने सहायता मिलती है। हमारे चरित्र के मूल्यांकण में हमारा श्रोता हमारे वाक्य-प्रयोग, वाक्य-शैली आदि से पूर्णतया प्रभावित होता है। अतएव अवसर और

परिस्थिति के अनुकूल बोलने का ही दूसरा नाम शिष्टतपूर्ण सभाषण कहा गया है।

(ग) **तर्कपूर्ण और युक्तिसंगत बोलने का उद्देश्य :**—यदि हम बोलने मे अवसर पात्र और परिस्थितियो का सम्यक ख्याल रखें तो मौखिक अभिव्यक्ति का एक स्पष्ट लक्ष्य भी पूरा होगा कि हम जो कुछ बोले वह युक्तिसगत और तर्कपूर्ण हो। अनाप-शनाप, अर्थहीन, तर्क से दूर बोलना एक बडा दोष माना गया है। जो व्यक्ति ऐसी प्रणाली से वाणी-प्रयोग करता है उसे तुरत ही पागल की सज्ञा मिल जाया करती है। तर्कपूर्ण बोलने का लक्ष्य यह है कि हमारा बोलना प्रभावपूर्ण हो। तर्कपूर्ण बोलना हमें वाद-विवादो, सवादो, शास्त्रार्थो आदि मे विशिष्ट स्थान देता है। इसके विपरीत अनाप-शनाप, अनर्गल तरीके से बोलना प्रभावहीन ही नही, हमें गतिहीन भी बना देता है। तर्कपूर्ण बोलना बुद्धि विकास का लक्षण है। विद्यालय मे तर्कपूर्ण बोलने की आदत डालने से बालक में अपनी बुद्धि के विकास का अनुकूल वातावरण मिलता है। छोटे-छोटे बच्चे तर्कपूर्ण बातें किया करते है। उत्सुकता की प्रवृत्ति से उत्प्रेरित होकर वह प्रश्नों की झड़ी लगा दिया करते हैं और उनके साथ का वयस्क उन्हें असगत बातो की संज्ञा देकर उपेक्षा कर देना है। लेकिन यदि ध्यान से देखा जाय तो बालकों की यह प्रश्नावली उसके विकास का एक शुभ लक्षण है। जो लड़के स्वभाव से शान्त, और लजीले होते हैं वे बोलने का अभ्यास नही करते। उनके लिए इसप्रकार की आदत तर्कपूर्ण बोलने की कला के लिए उचित पृष्ठभूमि तैयार नही करती है।

अतएव बोलने का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य यह है कि हमारे बोलने में एक प्रकार का संयम, युक्ति और क्रम होना चाहिये और बोलने की यह एक विशेपता भी मानी गयी है।

(घ) **वक्तृत्व की कला में प्रशिक्षण का उद्देश्य :**—मौखिक अभिव्यक्ति के जिन उद्देश्यों की चर्चा ऊपर की गयी है उनका एकमात्र लक्ष्य यही है कि व्यक्ति को एक सफल वक्ता के रूप में तैयार किया जाय। वक्तृत्व स्वयं एक कला है जिसके स्पष्ट गुण-विचारों की प्रांजलता, अभिव्यक्ति की प्रांजलता एवं अभिव्यक्ति की उच्चतम शैली है। सफल वक्ता वही हो सकता है जिनमें ये गुण स्वभाव रूप से विद्यमान हैं। आज हमारा जीवन व्यक्तिगत परिधि के अन्तर्गत सीमित नहीं है, वरन् उसका एकमात्र मापदण्ड

सामाजिक पृष्ठभूमि है। ग्राम पचायत, पुस्तकालय, वाचनालय, विद्यालय, औद्योगिक केन्द्र आदि विभिन्न संस्थाओ मे उत्सवो पर वक्ताओ की आवश्यकता होती है। वक्ताओं के भाषण से हमारे सामाजिक कार्यक्रमो का व्यापक प्रचार होता है। यही एकमात्र प्रभावपूर्ण माध्यम है जिसके द्वारा हमारे उद्देश्यो, भावो और सस्थाओ के मुख्य लक्ष्यो का प्रकटीकरण होता है। राजनैतिक विचार, धार्मिक उपदेश, एव किसी प्रकार के सवेगात्मक चित्त आकर्पण (emotional appeals) जनता तक भाषण के द्वारा ही पहुँच पाते है। बुद्ध के उपदेश सुदूर पूर्व और लका, चीन, जापान आदि देशो मे नही पहुँचते यदि हमारे कुशल, प्रवीण वक्ताओ का सहयोग नही मिलता। राष्ट्रीय काग्रेस ने अपने कर्मठ नेताओ एव बुद्धि विशारद वक्ताओं के द्वारा प्रत्येक भारतवासी के पास अपने सन्देश पहुँचाया। आज सम्पूर्ण विश्व को एकसूत्र मे बँधने का जो प्रयास राष्ट्रीय मत्र मे चल रहा है उसका एकमात्र माध्यम है देश के प्रतिनिधियो द्वारा भावो का भाषा मे प्रकटीकरण। प्रजातन्त्र में इस वक्तृत्व की नितान्त आवश्यकता है; अतएव विद्यालयो मे अभिव्यक्ति का यह एक प्रमुख लक्ष्य होना चाहिये।

(च) बोलने में शारीरिक सकेत, भावभङ्गिमा आदि का उद्देश्य :—हमारी भावाभिव्यक्ति केवल अच्छे-अच्छे शब्दों के उपयोग करने से, या अच्छी शैली के प्रयोग से ही सफल नही होती। हाँ, ये सब उसके आवश्यक उपकरण और लक्षण है लेकिन यदि इस अभिव्यक्ति मे भाषा की सहायता के लिए भावभंगिमा, शारीरिक सकेत तथा मुखाकृति का सहारा लिया जाय तो हमारे वक्तृत्व मे चार चाँद लग जायेगे। गुस्सा में न केवल क्रोधपूर्ण वाणी का प्रयोग या भय मे डरने वाली भाषा का प्रयोग, हर्ष में आनन्द के लच्छेदार वाक्य ही, वरन् इनके साथ क्रमशः हमारे शारीरिक आकृति जैसे नथनों का फडफडाना, हाथों को उठाना··· आदि ऐसे उपलब्ध उपकरण हैं जो हमारे बोलचाल को अधिक प्रभावोत्पादक और आकर्षक बनाते है। इनका संवेगात्मक प्रभाव श्रोतागण पर पड़े बिना रह नहीं सकता।

अतएव बोलचाल का यह उद्देश्य है कि हम बोलचाल के क्रम में शरीर के विभिन्न अवयवों का भी सहयोग प्राप्त करें।

(छ) बोलने की शैली का उद्देश्य :—बोलने में शैली का एक महत्वपूर्ण स्थान है। यह एक कलापूर्ण वक्तृत्व का शुभ लक्षण है। साथ ही, यह अपने मन्तव्य को प्रभावशाली बनाने का एक साधन भी है। बहुत अंश में हमारे बोलने का

उद्देश्य हमारी शैली के प्रयोग पर ही निर्भर करता है। जिस प्रकार लेखक अच्छी शैली को अपना कर अपने पाठकों को आत्मसमर्पण करने के लिए बाध्य-सा कर देता है, उसी प्रकार एक सफल वक्ता अच्छी शैली के द्वारा अपने श्रोता को भी वशीभूत कर लेता है। शैली के कई प्रकार है। ओज-पूर्ण, मधुर, एव सहज शैली के उपयोग से स्थान-स्थान पर वक्तागण अपने उद्देश्यो मे सफल होते है। भाषा के अवसरानुकूल, स्वरमय, लयपूर्ण तथा भावों के अनुकूल शैली का उपयोग करना वाछनीय होगा। श्रोतागण के शैक्षिक स्तर पर भी शैली-प्रयोग की बहुत-सी बातें निभर करती है। अतएव अभिव्यक्ति के उद्देश्यों में एक यह भी है कि हम बालकों को शब्द-विन्यास, व्याकरणके नियम, लय आदि का उपयोग करने की कला की आदत डाले।

इन कुछेक उद्देश्यों के अन्तर्गत अनेक अन्य उद्देश्य भी सफल अभिव्यक्ति के लिए भाषाविदों और साहित्यकारो ने बताये हैं। लेकिन उन सभी की चर्चा न करके यही समझना चाहिये कि उन सभी उद्देश्यो के मूल में यदि देखा जाय तो अभिव्यक्ति का एकमात्र उद्देश्य यह है कि हमारा भाव श्रोता तक ठीक से पहुँच जाय और जिस उद्देश्य से हम बोलने को प्रेरित हुए हों, वह शत-प्रतिशत सफल हो।

बोलचाल मानव के जीवन का अत्यन्त ही उपयोगी अलंकार है। निस्सन्देह हमारे प्राचीन शास्त्रकारों ने इसके गुणों का सम्यक विवेचन करके बताया है कि बोलने मे निम्न प्रकार के गुण आवश्यक हैं:—

> माधुर्यमक्षर व्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वर।
> धैर्य्यं लय समर्थञ्च षडेते पाठका गुणाः ।।

यथाः बोलने में माधुर्य, अक्षरों की स्पष्टता, पदों का पृथक-पृथक उच्चारण, स्वर का उतार-चढ़ाव, धीरता, और लय का उचित ध्यान रखना चाहिये।

(क) माधुर्यः—बोलने का वास्तविक अलंकार उसके मधुर होने में है। कटु बोलना पाशविक वृत्ति का परिचायक है। मीठी बोली से मनुष्य सभी जगह सम्मान और प्रतिष्ठा पाता है। हमारी सामाजिक परिधि का विस्तार मधुर बोलने से ही सम्भव है। कहा भी गया है कि सत्य बात भी अप्रिय न कहनी चाहिए। उसे मीठी बात से ही कहनी चाहिये।

अक्षरों की स्पष्टता :—बोलने का यह भी एक आवश्यक गुण है कि प्रयुक्त भाषा व्याकरण की दृष्टि से स्पष्ट और शुद्ध हो, अक्षरों का स्थान और उच्चारण भी साफ और शुद्ध हो। इस प्रकार की भाषा बोधगम्य होती है।

पदों का पृथक-पृथक उच्चारण :—इससे यह अभिप्राय है कि पदों का अलग-अलग उच्चारण किया जाय। मिश्रित पदों के प्रयोग में साधारणतया भावार्थ समझने मे कठिनाई होती है।

सुस्वरता :—इसका यह तात्पर्य है कि बोलने में किस शब्द पर क्या बल देना है या किस स्वर पर कितना बल देना है। इसे ही भाषाविदों ने स्वराघात की संज्ञा दी है। सुस्वरता के अभाव में प्राय: शब्दो के अर्थ में अनर्थ हो जाया करता है। साथ ही स्वराघात के अभाव मे बोली में मानो प्राणहीनता आ जाती है।

धीरता :—धीरता वह गुण विशेष है जो बोलने वाले की भाषा-प्रवाह मे संयम का काम करती है। कुछ लोग ऐमे है जो अपनी बात को शीघ्राति-शीघ्र बोलने की कोशिश करते है, कुछ ऐसे भी है जो थिरक-थिरक कर धीरे-धीरे बोलते है। पहली अवस्था मे शीघ्रता के कारण यह ग्रहण नही होता, दूसरी अवस्था मे बोली सुनना कठिन-सा हो जाता है। अतएव बोली का यह गुण है कि वक्ता धैर्य के साथ अपना सारा मन्तव्य प्रकट कर दे। धैर्यपूर्वक भापा का उच्चारण करने से अर्थ तो स्पस्ट होता ही है वह विशेप प्रभाव भी उत्पन्न करता है।

लय के अनुसार :—बोलने मे लय की नितान्त आवश्यकता है। बोलचाल में लय का टूट जाना एक दोष समझा जाता है। लय गतिशीलता का सूचक है। अतएव भापा मे उचित प्रवाह बनाये रखने के लिये लया-नुसार बोलना वक्ता की एक प्रमुख विशेपता मानी गयी है।

विद्वानों ने इन छ: गुणो के अतिरिक्त अन्य गुण भी बताये है जैसे भाषा मे शिष्टता का प्रयोग, भापा की आन्तरिक शक्ति और अवसरानुकूलता आदि। वास्तव मे, ये तीन गुण पृथक रूप से नही बल्कि ऊपर के ही छ: गुणो में सन्निहित हैं। मधुर भाषी शिष्टता का अवश्य ही ख्याल रखेगा, साथ ही वह अवसर के अनुकूल भी अपनी बात कहेगा। तथा भाषा की आन्तरिक शक्ति स्वयं लय, धीरता, सस्वरता तथा अक्षरों की शुद्धता पर निर्भर करती है। बोलने के कतिपय दोषों की ओर भी हमारे विद्वानो ने

ध्यान आकर्षित किया है। वे मुख्यतया शारीरिक और मानसिक विकार के कारण हो सकते है और तदनुकूल दो वर्गो मे विभाजित हो सकते है।

(क) *शारीरिक विकार के कारण बोलने के दोष :—*

(i) **नाक से बोलना** —बहुत से लोग सभी वर्णो का नाक से ही उच्चारण किया करते है। कुछ मे तो शारीरिक विकार के कारण ऐसा होता है जैसे बचपन से मुख का प्रयोग कम करना और नासिका का ही अधिक। इस रोग की चिकित्सा के द्वारा यह दोष दूर हो सकता है। इसके अलावे कुछ लोग उचित प्रशिक्षण और अभ्यास के अभाव मे भी सभी वर्णो को अनुनासिक बना कर ही बोलते है। अतएव प्रशिक्षण से तथा सतत अभ्यास से यह विकार दूर हो सकते है।

(ii) **तुतलाना** :—कुछ स्वर अवयवो मे विकार आने से स्पष्ट वाणी उच्चारित नही होती और बच्चे तुतलाने लगते है। अवयवों के ऐसे विकार भी प्रशिक्षण और अभ्यास मे दूर हो सकते है।

(ख) *मानसिक विकार :—*

(i) **दीन होकर बोलना** :—आत्म विश्वास के अभाव मे कुछ बालक दीन होकर बोलने का अभ्यास कर लेते है। दीन होना एक मनोवैज्ञानिक दोष है जो प्रवृत्तियों का पुष्ट विकास के अभाव मे, और मानसिक अन्तर्द्वन्द्व की विफलता के कारण होता है। अतएव बच्चो मे आत्मविश्वास की भावना जागृत और दृढ करने से यह दोष दूर हो सकता है।

(ii) **अतीशीघ्र बोलना** :—बोलने के लिये एक गति का सकेत किया गया है। इस गति की सीमा पार करने से अतिशीघ्रता का दोष आ जाया करता है। अतिशीघ्रता का प्रधान कारण यह है कि मस्तिष्क में भावों का स्पष्ट स्वरूप उपलब्ध नहीं है और बोलने वाला जल्दी-जल्दी कह कर अपना कार्य समाप्त करना चाहता है। इसका उपाय केवल मात्र सतत अभ्यास और वाचन में नियन्त्रण ही है।

मुँह के भीतर ही बुड़बुड़ाना :—कुछ लोग अपनी बातें स्पष्ट न बोलकर मुख के भीतर ही बुद-बुदाकर प्रकट करना चाहते हैं। यह मानसिक अन्तर्द्वन्द्व और अस्थिरता का परिणाम है और उच्चारण दोष से भी होता है। यह दोष दूर करना चाहिये और इसके लिये एक ओर बालक के अन्तर्द्वन्द्व की शान्ति और उच्चारण अभ्यास कराना चाहिये।

(IV) **गाते हुए बोलना** :—गाते हुए बोलना भी एक दोष है जिसका मूल कारण मानसिक असंतुलन माना जाता है। यह प्रशिक्षण और अभ्यास के अभाव में भी होता है। अतएव शिक्षक को चाहिये कि गद्य खण्डों के बोलने मे इस प्रवृत्ति को यथाशीघ्र रोकें।

इनके अतिरिक्त अन्य दोषों की भी गणना की जा सकती है लेकिन स्थानाभाव से हम आगे बढ़ते है।

जब बोलना भाषा का मूलाधार है तथा मानव के सम्पूर्ण ज्ञान को मूर्तरूप देने की एक कला है तब विद्यालयों को ऐसी महत्वपूर्ण और उपयोगी कला की आर पूणतया सावधान और सचेष्ट रहना चाहिये। कुछेक साधनो का वर्णन इस प्रकार किया जा रहा है :—

बालकों को मौखिक अभिव्यक्ति के लिये सदा ही प्रोत्साहित करना चाहिये। प्रायः अशिक्षित परिवारों मे, या शिक्षित परिवारों में भी अज्ञानतावश बालको की इस कला को प्रारम्भ मे ही कुचल दिया जाता है। फल यह होता है कि बालक एक सर्वमान्य आधारभूत कला से प्रारम्भ से ही अवगत नही हो पाता और विद्यालय में प्रवेश पाने पर वह लजीले, कम बोलने वाले और इस प्रकार एक समस्यामूलक बालक (Problem child) बन कर आता है। स्वभाव से सभी बालक अपने भावों को प्रकाशित करने के लिये वाणी का उपयोग किया करते है। यह एक शुभ लक्षण है और अभिभावको, माता-पिता आदि सभी वयस्कों को उन्हें बोलने से कदापि रोकना नहीं चाहिये।

विद्यालय में प्रवेश के समय शिक्षक को बालक की अभिव्यक्ति योग्यता का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये। सहानुभूति पूर्ण व्यवहार से और व्यक्तिगत प्रश्नों को पूछ कर शिक्षक उसे अधिक स्पष्ट होने का अवसर दे सकता है। विद्यालय में मुख्यतया इन साधनों से बालक मे अभिव्यक्ति की इस प्रणाली की सुदृढ़ नीवें पड़ सकती है।

(क) **खेल में बोलचालः**—खेल ही वह स्थल और प्रक्रिया है जहाँ बालक अपने हमजोलियो के साथ खेलते खेलते अपने मनोभव, अनुभूतियों तथा अनेक प्रकार के भावों को स्पष्ट रूप से व्यक्त कर सकता है। जितना स्वच्छन्द वह ऐसे मौकों पर होता है उतना वर्ग में नही या अन्य शिक्षकों के बीच में नही। अतएव खेल का उचित प्रबन्ध आवश्यक है।

(ख) **संगीत के द्वारा बोलचालः**—सगीत एक प्रभावकारी मनोहर माध्यम है जिसके द्वारा लय के अन्तर्गत ही बालक इस साधन मे प्रशिक्षण पा सकता है। बालक के प्रतिदिन के प्रयोग के सामानो, क्रियाकलापो तथा उनके अनुभव को गीत का रूप देकर उन्हे सगीत के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। ऐसा करने से उनमे प्रारम्भ से ही लय, ताल, सुस्वरता तथा शुद्ध उच्चारण का प्रशिक्षण मिल जाया करेगा।

(ग) **कहानी द्वारा बोलचालः**—यह निर्विवाद है कि छोटी-छोटी उम्र के लडके-लडकिया कहानी से अधिक प्रभावित होती है। वे कहानियाँ सुनना चाहते है और सुनाना भी। वस्तुतः कहानियो का माध्यम एक अत्यन्त ही उपयोगी और प्रभावशाली साधन है जिसकी ओर शिक्षकों का ध्यान जाना चाहिये। इसके लिये शिक्षक आयु और रुचि को ध्यान मे रखते हुए कहानियों का चुनाव करें तथा लडकों को अर्द्ध वृत्ताकार बनाकर कहानी सुनावें। बीच-बीच मे प्रश्नो को पूछना भी वांछनीय होगा लेकिन इतना और ऐसा नहीं कि कहानी का क्रम टूट हो जाय। शिक्षक कहानी सुना कर बालकों से कहानी कहने के लिये भी कहें।

(घ) **वाक्य-रचना द्वारा बोलचाल** :—बालकों को अपने दैनिक कार्यक्रम क्रियाकलापों आदि के आधार पर छोटे-छोटे वाक्यों की रचना के लिये प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। खेल, उद्योग, बागवानी, आदि ऐसे अनेक क्रियाशालन है जिनका वर्णन बालक वाक्यों के माध्यम से कर सकता है जो उसे बोलने के लिये उचित पृष्ठभूमि तैयार कर सकते हैं। ऊपर के वर्गों में इसका लिखित रूप होगा, जब कि पहले दो वर्गों में मौखिक पद्धति ही अपनायी जानी चाहिये।

(च) **सस्वर-पाठ से बोल चालः**—बालकों को जब पढ़ना आ जाय तब सस्वर पाठ के लिये उन्हे उत्साहित किया जाना चाहिये। ऐसे पाठ समूह में सभी लड़कों से बारी-बारी से दिलवाये जायँ। सस्वर पाठ से वाक्योच्चारण, स्वराघात तथा बोलने की विधिवत आदत पड़ती है।

(घ) **दलगत संभाषण**—ऊपर के वर्गों में दलगत सम्भाषण की विधि अपनाने से लड़कों में बोलने का अभ्यास पड़ता है। विद्यालय के सांस्कृतिक क्रियाशीलनों और अन्य सामूहिक क्रिया-कलापों में ऐसे दल बनाये जायँ जहाँ बालक स्वच्छन्दरूप से अपने भावों को व्यक्त कर सकें। पाठ या पाठ्येतर कक्षा या वगतंर, उद्योग सम्बन्धी क्रिया-कलापों से सम्बन्धित प्रश्न पूछे

जायें और इस प्रकार प्रश्नोत्तर विधि से यह दलगत सम्भाषण की प्रणाली बालकों को बोलचाल का प्रशिक्षण देने का एक प्रभावपूर्ण माध्यम है।

इस प्रकार की विधियो को अपनाने से प्राथमिक विद्यालय की उच्च श्रेणियो तक बालको को मौखिक अभिव्यक्ति के लिये प्रारम्भिक प्रशिक्षण तथा उनमे पर्याप्त योग्यता आ जाती है। ऊपर के वर्गो में बोलने का शास्त्रीय रूप प्रस्तुत किया जा सकता है जिनके लिये शिक्षक को निम्नलिखित साधन अपनाना चाहिये।

(क) पाठ्यपुस्तक के पाठ से सम्बन्धित प्रश्न करके शिक्षक बालकों का उत्तर देने के लिये उत्साहित करे। इसका फल यह होगा कि लड़के पाठ का इस प्रकार अध्ययन करेंगे कि इससे सम्बन्धित प्रश्नो के उत्तर देने के लिये सदैव तत्पर और तैयार रहें। प्रश्न भी पाठ से सम्बन्धित हों और विचार प्रेरक (Thought provoking) हो।

(ख) शिक्षक को यह भी चाहिये कि दिये गये गद्य या पद्य पाठ को बच्चों से पुनः रचना के लिये कहे। पाठो की पुनः रचना से बालकों में, अभिव्यक्ति योग्यता बढ़ती है साथ ही शैली का प्रयोग मालूम होता है। यह पुनर्रचना केवल भाषा शिक्षण ही नहीं, अन्य सभी प्रकार के पाठों से सम्बन्ध रखें।

(ग) बालकों की अर्थ-ग्राहिता का इससे भी पता चलेगा कि दिये गये पाठ का सार लिखने या कहने को कहा जाय। पुस्तक के किसी पाठ को संक्षेप में वर्णन करने से लडकों को अभिव्यक्ति का एक अवसर मिलता है। इस प्रकार का संक्षिप्त वर्णन उन्हें अभिव्यक्ति की एक शैली से परिचित करायेगा और यथाविधि प्रशिक्षण मिला करेगा।

(घ) बालको को अपने अनुभवों का वर्णन करने के लिये कहा जाय जिससे मनोगत भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति का प्रशिक्षण मिले।

(च) देखी गयी चीजो या चित्रो का वर्णन के लिये भी शिक्षक बालकों का प्रेरित और उत्साहित किया करें। यात्रा वर्णन और पर्य्यवेक्षण का माध्यम भी अपनाया जा सकता है। ऐसा करने का फल यह होता है कि बालको में व्यक्तिगत शैली का निर्माण होता है। जिसमे वह सूक्ष्म ग्राहिता पर्य्यवेक्षण आदि के गुणों से भरा रहता है।

(छ) ऊपर की कक्षाओ में सास्कृतिक क्रियाशीलनों का अपनाना मौखिक आत्माभिव्यक्ति के लिये बड़ा ही सुन्दर पृष्ठभूमि प्रस्तुत मिलता

है । परम्परागत विद्यालय से बुनियादी विद्यालय इसी बात से इतना अधिक प्रगतिशील है कि उनके यहाँ के छोटे-छोटे बालक भी आत्माभिव्यक्ति की कला मे प्रशिक्षित होते हैं । कथा, कहानी, व्याख्यान, कर्मसंगीत, लोकगीत, निबन्ध, रचना, अभिनय, सभाषण आदि ऐसे साधन है जहाँ बालक को आत्माभिव्यक्ति के लिये सुन्दर वातावरण उपलब्ध मिलता है। ऐसे आयोजन से समूह में बोलने का अभ्यास पड़ता है और बच्चो का लजीलापन सहज मे दूर हो सकता है । अतएव शिक्षको को विद्यालय में साप्ताहिक बैठकों का आयोजन करना चाहिये जिनसे बालकों को मौखिक अभिव्यक्ति के लिये ।

(i) व्याख्यान देने का कार्यक्रम रखा जाय,
(ii) अभिनय का प्रबन्ध हो,
(iii) संभाषण की व्यवस्था की जाय ।
(iv) साथ ही मनोरजनात्मक क्रियाशीलनो को भी अपनाया जाय ।

इस प्रकार के कियाशीलनों में सभी लडको को बारी-बारी से प्रोत्साहित करना चाहिये कोई लडका इस प्रमुख कला के प्रशिक्षण से वंचित न हो ।

इनके अतिरिक्त, शिक्षकों को ऊपर की कक्षाओ के लिये वादविवाद प्रतियोगिताओं का प्रबन्ध करना चाहिये जहाँ बालकों को किसी विषय पर विवाद करने का अवसर मिले । इससे उनमे बोलने का अभ्यास होता है, विचारो को तर्कपूर्ण, शैली सहित प्रभावित करने के गुणों से लैस होता हे । इसके साथ ही साहित्यिक गोष्ठियो का आयोजन भी बालकों की मौखिक अभिव्यक्ति के लिये यथेष्ठ अवसर प्रदान करते है ।

इस प्रकार साधनों को हम एक जगह एकत्रित करके गिना नही सकते । शिक्षक अपने कार्यक्षेत्र के अनुभवों के आधार पर स्वयं ऐसे अनेक साधन खोज निकालते है जो लड़कों के बोलचाल के प्रशिक्षण से सम्बन्ध रखते हो । इस बात से सभी सहमत होंगे कि जब मौखिक अभिव्यक्ति मानव के जीवन में इतना व्यापक और महत्वपूर्ण स्थान रखती है तो उसके प्रशिक्षण के लिये भी उन्हें प्रत्येक तरह के क्रियाशीलनों और साधनों को अपनाना चाहिये । और चूँकि ऐसे साधनों को एक जगह संकलित कर वर्णन करमा संभव नहीं है, इसलिये यह केवल शिक्षक की योग्यता, विशाल अनुभूति और कार्यकुशलता पर ही निर्भर है कि किस प्रकार के अनेकानेक साधनों को काम में ले आता है ।

अध्याय ७

उच्चारण की शिक्षा

भाषा-शिक्षण मे उच्चारण का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। उच्चारण एक प्रकार से भाषा का नियन्त्रण है। शरीर के विभिन्न उच्चारणोपयोगी अवयवों द्वारा जो ध्वनि निकलती है उनका वैज्ञानिक वर्गीकरण ही ध्वनि-शास्त्र (Phoenetics) का विषय है।

भारतवर्ष में प्राचीनकाल से ही ध्वनिशास्त्र और उच्चारण विधान पर विद्वतापूर्ण विवेचन किया गया है। पाणिनी ने उच्चारण की प्रक्रिया की चर्चा करते हुए बताया है कि "शब्दोच्चारण के पूर्व आत्मा बुद्धि के साथ मिलकर अर्थ-ज्ञान करता है। तदनन्तर वह मन को बोलने की इच्छा से प्रेरित करता है। मन शरीर की अग्नि (नाभि के ऊपर और हृदय के बीचवाले भाग) पर आघात करता है। जिसके कारण वायु को अग्नि प्रेरित करती है। वह वायु हृदय-स्थान मे पहुँचने पर गम्भीर ध्वनि उत्पन्न करती है। वहाँ से चलकर फिर वह ऊपर मूर्द्धा से टक्कर खाकर लौटती है और मुख-भाग से बाहर निकलते हुए विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ उत्पन्न करती है।"

पाणिनी की व्याख्या का यदि विश्लेषण करें तो उच्चारण का वास्तविक स्वरूप इस प्रकार स्पष्ट होता है।

(क) उच्चारण के पहले शब्दार्थ का ज्ञान आवश्यक है;

(ख) अर्थ के ज्ञान के कारण बोलने की इच्छा से मन प्रेरित होता है।

(ग) मन शरीर के अंगविशेष (जिसे ऊपर अग्नि कहा गया है) पर आघात करता है।

(छ) इस आघात से अग्नि-स्थल से वायु का संचार होता है।

(च) वायु हृदयस्थल पर पहुँच कर एक ध्वनि उत्पन्न करती है।

(छ) वह ध्वनि मूर्द्धा से टक्कर खाकर लौटती है और

(ज) फिर मुख-भाग से बाहर निकलते हुए विभिन्न ध्वनियाँ पैदा करती है। यही उच्चारण की व्याख्या है।

इससे स्पष्ट है कि उच्चारण मे शरीर के विभिन्न अवयवो को श्रम करना पडता है। वाणी के लिये मानव का यह श्रम अत्यन्त उपयोगी, आवश्यक और नैसर्गिक है। भाषा मे उच्चारण का इतना महत्वपूर्ण स्थान इस बात से भी प्रमाणित होता है कि—"उच्चारण का महत्व व्याकरण से द्विगुना है क्योकि अशुद्ध व्याकरण मे भी शुद्ध उच्चरित वाक्य आपको अर्थ का वास्तविक ज्ञान दे सकता है, परन्तु शुद्ध व्याकरण मे भी अशुद्ध रूप से उच्चरित वाक्य अच्छी तरह से समझ में नही आ सकता है, या अपूर्ण रूप से ही समझा जा सकता है या सुननेवाले की ओर से प्रयत्न से ही समझा जा सकता है।"

हिन्दी भाषा-शास्त्र में हिन्दी वर्णो के उच्चारण की निम्नलिखित व्याख्या की गयी है जिसकी ओर प्रत्येक हिन्दी-विद्यार्थी का ध्यान जाना चाहिए।

स्वरों का उच्चारण

अ—यह ह्रस्व, अर्द्ध विवृत मिश्र स्वर है। उच्चारण मे जीभ की स्थिति न तो बिलकुल पीछे रहती है और न बिलकुल आगे। जीभ केवल थोडा-सा ऊपर उठती है। इसलिये इसे अर्द्ध विवृत कहते है। (कमल)*

आ—यह दीर्घ, विवृत, पश्च स्वर है। अ और आ मे केवल मात्रा भेद ही नहीं है। प्रयत्न और स्थान भेद भी है। आ के उच्चारण मे जीभ बिलकुल पीछे रहती है और मुखद्वार खुल जाता है, इसीलिये विवृत कहा गया। (आदमी)

इ—यह संस्कृत ह्रस्व अग्र स्वर है। जीभ का स्थान कुछ अधिक नीचा तथा पीछे मध्य की ओर झुका रहता है। होठ फैले रहते है और ढीले भी। (इंगलिश)

ई—यह संस्कृत दीर्घ अग्रस्वर है। जीभ का अगला भाग ऊपर कठोर तालुके बहुत निकट पहुँच जाता है और होंठ फैले रहते है। (ईख)

---

* "...that pronunciation is of at lesat twice as much importance as grammar (beacuse) a well pronouned sentence even in very bad grammar can still convey you meaning, but a sentence in perfect grammar very badly pronounced will either not be understood at all, imperfectly understood or understood only with effort ;on the part of the hearer.'. Quoted from the Teaching of English in India, Shyam Nandan Sahay, p. 74.

उ—यह संस्कृत ह्रस्व पश्चवृत्ताकार स्वर है। जीभ का पिछला भाग कंठ की ओर काफी ऊँचा उठता है और आगे मध्य की ओर झुका रहता है। (उदार)

ऊ—यह संस्कृत दीर्घ पश्चवृत्ताकार स्वर है। इसके उच्चारण मे होठ भी अधिक बन्द-से और गोल हो जाते है। (ऊँट)

ए—यह अर्द्धविवृत दीर्घ स्वर है। इसके उच्चारण में जिह्वा कुछ पीछे की ओर ऊपर उठा रहता है। (एक)

ओ—यह अर्धसंवृत दीर्घ पश्चवृत्ताकार स्वर है। इसमें होठ कुछ गोल हो जाते है लेकिन 'ऊ' से कम ही। (ओला)

संध्यक्षर ऐ और औ का उच्चारण

ऐ—यह अ+ए की सन्धि से बना है। इसीलिये इसमे 'अ' के उच्चारण से शीघ्रता से 'ए' पर उतर जाता है। इसी शीघ्रता से मेल के कारण इन्हे संध्यक्षर भी माना गया है। (ऐनक)

औ—यह अ+ओ के संयोग से बना है। इसका उच्चारण भी इसी प्रकार 'अ' से शीघ्रता से 'ओ' पर उतर जाता है। इसी शीघ्रता से यह भी संध्यक्षर माना गया है। (औरत)

इन स्वरों के अतिरिक्त अन्य प्रकार के स्वर भी विदेशी भाषाओं के प्रभाव से बनते जा रहे हैं जो इन्ही मूल स्वरों के विभिन्न भेद या उपभेद हैं। इनमें कुछ तो भाषा-विकास क्रम में नये रूप पकड रहे हैं। इनमें 'ऑ' का विशेष स्थान है जो हमारे प्रयोग में अक्सर आते है। जैसे आइजनहॉवर, कॉग्रेस, मैकॉले, लॉर्ड आदि। ऑ, प्रत्यक्ष 'आ' की अपेक्षा अर्द्धविवृत है।

अनुनासिक स्वरों का उच्चारण

इन सभी स्वरों के अनुनासिक रूप भी मिलते है। इनका उच्चारण भी उसी प्रकार होता है; जैसे अन्य स्वर। भेद केवल इतना ही है कि इनके उच्चारण में कोमल तालु और कौआ के नीचे झुक जाने से हवा मुख से बाहर न जाकर, नासिकाविवर में पहुँचती है और वहाँ गूँजकर बाहर निकलती है।

व्यंजन के उच्चारण

'क' वर्ग—'क' वर्ग के उच्चारण में जीभ का पिछला भाग अर्थात् जिह्वा मध्य भाग कोमल तालु को छूता है। प्राचीनकाल में 'क' वर्ग का

उच्चारण और भी पीछे होता था। इसीलिये 'क' वर्ग जिह्वामूलीय माना जाता था, पीछे कण्ठ्य हो गया। कण्ठ्य का अर्थ गले से उत्पन्न नही लिया जाना चाहिये जिसे अंग्रेजी मे (guttural) कहते है। कण्ठ कोमल तालु का ही पर्याय हे। अतएव कवर्ग को जब कण्ठ्य कहा जाता है तो उसका अर्थ यह होता है कि कोमल तालु से सम्बन्ध रखता है।

क—अल्पप्राण, अघोष, कण्ठ्य स्पर्श है (काला)
ख—महाप्राण, अघोष ,, ,, ,, (खाना)
ग—अल्पप्राण, घोष ,, ,, ,, (गाना)
घ—महाप्राण, घोष ,, ,, ,, (घाना)

'ट' वर्ग—'ट' वर्गीय ध्वनियाँ कठोर तालु के मध्य भाग मे उलटी जीभ की नोकके स्पर्श से उत्पन्न होती हैं। कठोर तालु को मूर्धन्य कहने के कारण इस वर्ग को मूर्धन्य कहा जाता है।

ट—अल्पप्राण, अघोष, मूर्धन्य स्पर्श है। (टमटम)
ठ—महाप्राण ,, ,, ,, ,, (साठ)
ड—अल्पप्राण घोष ,, ,, ,, (डकार)
ढ—महाप्राण घोष ,, ,, ,, (मेंढक)

'त' वर्ग—'त' वर्ग के उच्चारण में जीभ की नाक ऊपरवाली दन्तपंक्ति को छूती है। इसलिये दन्त्य कहते हैं।

त—अल्पप्राण, अघोष, दन्त्य-स्पर्श है। (ताला)
थ—महाप्राण अघोष ,, ,, ,, (थाली)
द—अल्पप्राण घोष ,, ,, ,, (दतवन)
ध—महाप्राण घोष ,, ,, ,, (धान)

'प' वग—प वर्ग के उच्चारण में दानों होठों का स्पर्श होता है। इसमें जीभ से वस्तुतः कोई सहायता नहीं ली जाती। होठों से हा ध्वनि निकलने के कारण इन्हें ओष्ठ्य कहते हैं।

प—अल्पप्राण, अघोष, ओष्ठ्य स्पर्श है। (पानी)
फ—महाप्राण, अघोष ,, ,, ,, (फल)
ब—अल्पप्राण घोष ,, ,, ,, (बन्दर)
भ—महाप्राण घोष ,, ,, ,, (भगवान)

'च' वर्ग—इस वर्ग के उच्चारण में जीभ की नोक तो नही, उससे कुछ पीछे वाला भाग (जिह्वोपाग्र) ऊपरी मसूढ़ों के पास तालु के अगले भाग का स्पर्श करता है कि एक प्रकार की रगड होती है। तालु से ध्वनि निकलने के कारण यह वर्ग तालव्य कहा जाता है।

च—यह अल्पप्राण, अघोष तालव्य स्पर्श है (चादर)
छ—यह महाप्राण, अघोष ,, ,, (छमछम)
ज—यह अल्पप्राण, घोष ,, ,, (जाड़ा)
झ—यह महाप्राण, घोष ,, ,, (झगड़ा)

व्यंजन माला में पाँच अनुनासिक व्यजन है जो अपने वर्ग के होने के कारण उन्ही स्थलों और अवयवो द्वारा उच्चरित होते हैं। भेद केवल इतना ही है कि यहाँ हवा मुखविवर से न निकल कर नासिकाविवर मे जाकर गूजती है। मुखविवर से हवा नही निकलने का कारण स्पष्ट है कि सम्बद्ध अवयव कुछ इस प्रकार झुक जाता है कि हवा को विवश होकर नासिकाविवर में जाना पड़ता है। इसका विवरण ऊपर अनुनासिक स्वरो के खण्ड में भी दिया गया है।

ङ—अल्पप्राण, घोष, कंठ्य अनुनासिक स्पर्श ध्वनि (गङ्गा)
ञ— ,, ,, तालव्य ,, ,, (चञ्चल)
ण— ,, ,, मूर्धन्य ,, ,, (रण)
न— ,, ,, वर्त्स्य ,, ,, (नमक)
म— ,, ,, ओष्ठ्य ,, ,, (मुमताज)

य—इसके उच्चारण में जिह्वोपाग्र कठोर तालु की ओर उठता है पर स्पष्ट घर्षण नही होता। यह तालव्य, घोष, अर्द्धस्वर है। यह अन्तस्थ भी कहा जाता है। क्योंकि वायु अन्तस्थल से आती है। (यस्मिन)

र—इसे लुण्ठित व्यञ्जन कहा जाता है, क्योंकि जीभ की नोक को लपेट खाकर ऊपरी मसूढों को छूना पडता है। यह अल्पप्राण, वर्त्स्य, घोष ध्वनि है। (रणभूमि)

ल—इसे पार्श्विक की सज्ञा दी गयी है। जीभ की नोक ऊपर के मसूढ़ों को अच्छी तरह छूती है। साथ ही जीभ के दोनों ओर कुछ खुला स्थान मिलने से हवा बाहर निकल जाती है। इसीलिये इसे पार्श्विक (किनारे की) कहते है। यह अल्पप्राण घोष वर्त्स्य ध्वनि है। (लटपट)

व—व का उच्चारण दन्तोष्ठ्य है क्योंकि यहाँ दाँत और ओष्ठ्य के क्षणिक सम्पर्क से हवा बाहर निकलती है। यह घोष घर्ष ध्वनि है। (वन)

श—इसमें जीभ की नोक कठोर तालु के बहुत पास पहुँच जाती है पर पूरा-पूरा स्पर्श नहीं होता है। तालु और जीभ के बीच में से हवा रगड़ खाकर बिना रुके बाहर निकल जाती है। यह घोष, घर्ष, तालव्य ध्वनि है। (शाब्बास, शेषनाग)

स—यह 'श' का सरल रूप है। जीभ की नोक और वर्त्स के बीच रगड़ खाकर हवा बिना रुकावट के 'सी' 'सी' करती बाहर निकल जाती है। (सेवक)

ह—इसके उच्चारण मे फेफड़े से हवा वेग से निकलती है और मुखद्वार के खुले रहने से काकल के बाहर रगड उत्पन्न होता है। (हाथ)

ष—इसका उच्चारण भी जीभ द्वारा मूर्धा के साथ घर्षण से होता है। (लषण, भाषण)

विदेशी व्यंजनों के उच्चारण

विदेशी भाषाओ के सम्पर्क से कुछ व्यजन नवीन रूप से हमारे सामने आते है जो इस प्रकार हैं—

क़—काबिल
ख़—बुखार
ग़—चोगा
ज़—बाज़
फ़—कफन

ये सभी हिन्दी उच्चारण मे अपने वर्गों में मिल जाते है, लेकिन इनके उच्चारण में एक प्रकार का घर्षण अनुभव होता है जो कठिन श्रम परिचायक है।

हिन्दी-वैयाकरणों ने ध्वनि और उच्चारण सम्बन्धी जो शास्त्रीय विवेचन किया है इसका मूलाधार सस्कृत ही है। यह मूलाधार नियन्त्रक का कार्य करने के कारण हिन्दी के शब्दो के उच्चारण विधान में बहुत ही प्रभावकारी, आवश्यक एवं व्यापक है। हिन्दी वर्णमाला के उच्चारण स्थान और उनकी संज्ञा का कोष्ठक निम्नांकित रूप से दिया जाता है। यह कोष्ठक ऊपर के विवरण का ही चित्रित रूप है जिसे देखकर पाठक पर स्थायी प्रभाव पड़ सकता है :—

हिन्दी ध्वनि विवरण

उच्चारण स्थान	स्वर	व्यञ्जन (अघोष)	व्यञ्जन (घोष)	अन्तःस्थ	ऊष्म
कण्ठ्य	अ, आ, अः	क क़, ख ख़	ग ग़, घ ङ		ह
तालव्य	इ, ई	च छ	ज झ ञ	य	श
मूर्धन्य		ट ठ	ड ड़ ढ ढ़, ण	र	ष
दन्त्य		त थ	द, ध, न	ल	
ओष्ठ्य	उ, ऊ	प फ	ब, भ, म		
कण्ठ-तालव्य	ए, ऐ				
कण्ठोष्ठ्य	ओ, औ				
अनुनासिक	अं, आं, इं, ईं, उं, ऊँ, एं, ऐं, ओं, औं		ङ, ञ, ण, न, म		
दन्तोष्ठ्य		फ़		व	
वर्त्स्य					स, ज़

वैयाकरणो तथा ध्वनि शास्त्रियो द्वारा इतना व्यापक और कड़ा नियन्त्रण रखने पर भी वर्णो का या शब्दों का उच्चारण भेद हुआ करता है शिक्षित वर्ग विद्यार्थी समुदाय तथा भाषा के ज्ञातागण उच्चारण सम्बन्धी निर्देशो और उपदेशों को धरोहर स्वरूप भले ही रखते चलें लेकिन कुछ ऐसे नैसर्गिक विधान भी प्रभाव मे न ,र आते है जो उच्चारण भेदके फलस्वरूप भाषा का स्वरूप ही बदल दिया करते है।

अनपढ समुदाय भाषा को तोड़ने-मरोडने में अधिक पटु है और वह भाषा को काला अक्षर भम बराबर क्यो न माने, लेकिन कडे-कडे शब्दों को भी अपनी रीति से उच्चरित कर देता है।

इस प्रकार शिक्षित या अशिक्षित, विद्वान या गँवार सभी भाषा के विकास मे अपना महत्वपूर्ण योगदान देते है और उनका एकमात्र माध्यम उनकी उच्चारण-प्रणाली का भेद है। फल यह होता है कि कुछ ध्वनियाँ लुप्त हो जाती है, कुछ नयी ध्वनियाँ आ धमकती है। जिस भाषा का सम्पर्क जितना ही विस्तृत रहता है उसमे उतने ही नवीन प्रकार की ध्वनियाँ अर्जित की जाती हैं। हिन्दी भाषा की ध्वनियो के अध्ययन से हमारा ध्यान सहज रूप से उस ऐतिहासिक तथ्य की ओर जाता है जहाँ—

वैदिक ध्वनि समूह,
पाली ध्वनि समूह,
प्राकृत ध्वनि समूह,
अपभ्रंश ध्वनि समूह

—एक स्रोत से निकलने पर भी उच्चारण सम्बन्धी पारस्परिक विभेद के स्पष्ट शिकार दीख पडते हैं। व्युत्पत्ति के आधार पर शब्दों का इतिहास यह स्पष्ट करता है कि उसकी विकृति या नवीन आकृति में उच्चारण ही प्रमुख कार्यकर्त्ता रहा है। सत्य ही "प्राचीन परिष्कृत भाषाओं के व्याकरण और वर्ण विन्यास में चाहे परिवर्तन न हो तो भी उनके उच्चारण में परिवर्तन कालान्तर में हो ही जाता है।"*

भाषा के शब्दो का उच्चारण-भेद कई स्पष्ट कारणों से होता है। जैसे व्यक्ति का शारीरिक विकार, भौगोलिक प्रभाव, समाजगत प्रभाव, शिक्षित या अशिक्षित का प्रभाव।

(क) व्यक्ति का शारीरिक विकारः—मनुष्य की बोली का सम्बन्ध उसके स्वर यन्त्र से है। यदि उसका स्वर यन्त्र विकृत हो गया है तो वह गूँगा हो जाता है। उच्चारणोपयोगी विभिन्न अवयवों में भी विकार आने से उच्चारण पर प्रभाव पड़ने लगता है। Adenoids का रोगी उच्चारण ठीक तरह से कभी नहीं कर सकता क्योंकि उसका मुखविवर सदा खुला ही रहता है। इसके विपरीत उस व्यक्ति का उच्चारण सदा नासिका द्वारा (अनुस्वार-

---

* तुलनात्मक भाषा विज्ञान, डा० मंगलदेव शास्त्री, पृ० ११२।

पूर्ण) होगा जिसका नासिकोविवर विकृत है और वह मुख से हवा बाहर जाने देने की अपेक्षा सदा नासिका नली से ही भेजता है। गले की बीमारी, कान के रोग तथा नासिका रोग के कारण विद्यार्थियो को उच्चारण सम्बन्धी असमर्थता का शिकार होना पड़ता है। शिक्षको का ध्यान इस ओर जाना चाहिये।

शारीरिक प्रभाव इतना स्थायी और व्यापक पड़ता है कि "बाल्यावस्था मे जिस प्रकार की भाषा अथवा बोली का हम प्रयोग करते है, युवावस्था मे शिष्टता, सभ्यता तथा ज्ञान के कारण उनमे कुछ परिवर्तन हो जाता है। वृद्धावस्था मे स्वर यन्त्र की विकृति के कारण हमारी ध्वनियों मे कुछ स्वाभाविक परिवर्तन हो जाता है और भाषा का उच्चारण कुछ विकृत हो जाता है।"*

उच्चारण के अवयवो की नाप तथा उसके मस्तिष्क की गुरुता दूसरे के अवयवों और मस्तिष्क से भिन्न होने के कारण भी उच्चारण मे भेद पैदा होता है।

(ख) सामाजिक प्रभाव :—हमारे भाव प्रकाशन और भावग्रहण पर हमारे समाज का बडा ही व्यापक प्रभाव पड़ता है। घर की बोली और विद्यालय की बोली मे क्या अन्तर है सो सभी जानते है। घर मे घरेलू बोली में हम अपने भाव प्रगट करते है। तथा शब्दों का उच्चारण भी कुछ उसी प्रकार घरेलू वातावरण का होता है जैसे--राजकुमार को राजो, रज्जू, राजन कहा जाता है। घरों में कभी-कभी 'टुनटुन को' 'टनटन भाजा' या 'ठनठन' प्यार से कहा जाता है। लेकिन यह भाषा का विकृत रूप ही कहा जायगा। एक शिक्षित व्यक्ति भी घर के नौकर को 'अरे भगवनवा' कह कर पुकारता है, हाला कि विद्यालय या कार्यालय के आदेशपाल को वह 'भगवानदास' के नाम से ही पुकारता है। उसी प्रकार परिवार समाज के अलावे, बाहर के समाज के लोगों में उच्चारण के विभेद का स्पष्ट कारण विद्यमान है।

इतना ही नही, वकीलों, डाक्टरों, वैद्यो, व्यवसायियों, धोबी, लोहार, बढई, राजमिस्त्री के समाज में एक ही शब्द के भिन्न-भिन्न रूप में उच्चारण देखा जाता है। बढ़ई अपने काम मे दोषों को डिफेट (defect) के नाम से पुकारता है; राजमिस्त्री (level machine) का केवल 'लबल'

---

* अभिनव भाषा विज्ञान, आचार्य नरेन्द्रनाथ, पृ० ४४।

कहकर पुकारता है और हम भले ही नहीं समझें, उसके साथ काम करनेवाला कुली भली-भाँति समझ जाता है ।

भौगोलिक प्रभाव :—उच्चारण भेद मे भौगोलिक प्रभाव भी स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ता है । विदेशी भाषा के, विशेषतः अन्य परिवार की भाषा को सीखने में बहुधा उच्चारण सम्बन्धी कठिनाई हुआ करती है । एक अंग्रेज 'तुम' को 'टुम' 'जानता' को 'जानटा' 'तुम्हारा' को 'टुम्हारा' ही उच्चारण करता है । दक्षिण भारत वाले महाराष्ट्री 'धर्म' का 'धर्म्मा' (dharmma) के रूप मे उच्चारण करते हैं ।

इंगलैण्ड में School of Oriental and African studies के एक अंग्रेज हिन्दी विद्वान ने जब एक भारतीय विद्यार्थी से पूछा कि How many rasas are there in Hindi litera ture ? तो वह स्पष्ट रूप से rasas का 'रसाज' और Hindi का उच्चारण 'हिन्डी' कर रहा था । भारतीय विद्यार्थी का यकायक इसका उत्तर नही देना यह प्रमाणित करता है कि वह 'रसों' शब्द का अभ्यस्त 'रसाज्' नही समझ सका, भले ही 'हिन्दी' के बदले 'हिन्डी' के ऊच्चारण को सुलभ रीति से समझ गया हो ।

विदेशी भाषाओं के वर्णो का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि किन्हीं भाषाओ में कोई वर्ण है ही नही, और किन्ही मे अधिक हैं । शीत देशों और उष्ण देशों के वर्ण-अध्ययन से यह प्रगट होता है । एक फ्रेन्च और दक्खिनी बेल्जियन 'ट' का उच्चारण 'त' के रूप में ही करेगा टाइम का 'ताइम' और टैन्क को 'तैन्क' ।

शिक्षित-अशिक्षित का प्रभाव:—शब्दों का उच्चारण भेद वक्ता के शिक्षित और अशिक्षित होने में ही पाया जाता है । यदि आप गाँवों में अशिक्षित व्यक्तियों के पास जायें तो बहुधा :—

सिगनल का सिंगल,	कैप्टेन का कप्तान,
सुपरइन्टेन्डेन्ट का सुपरडैन्ट,	जेनेरल का जरनैल,
ओवरसियर का ओसियर,	कर्नल का करनैल,
सीमीन्ट का सिरमिट,	फ्लैनेल का फलानन,
पेट्रौल का पिटरौल,	सेप्टिक टैन्क का सिपि टन्की,
सेक्रेटेरियट का सिकेट्री,	पोयान्ट्समैन का पैटमैन, आदि

उच्चारण पायेंगे । इस प्रकार, खोजने में अनेक शब्द मिलेंगे । पटने में रिक्शावाला को सेक्रेटेरियट कहिये तो आपका गन्तव्य स्थान वह नहीं

जानता लेकिन 'सिकेट्री' कहने से वह तुरन्त समझा जाता है। इस प्रकार के उच्चारण से शब्दों का रूप बदल जाता है और मूल शब्द का उच्चारण भी प्रायः भूल जाया जाता है।

उच्चारण दोष किन-किन कारणों से होता है उनका वर्णन वाछनीय होगा।

(क) **प्रयत्नलाघव:**—जिस प्रकार मानव अपनी प्रकृति के अनुसार कम श्रम करना चाहता है, वह बोलने मे भी उसी प्रकार कम श्रम करना पसन्द करता है। शार्टकट की विधि अपनाने की उसकी प्रवृत्ति सी हो गयी है। उच्चारण दोष इसी प्रयत्नलाघव से होता है। प्रयत्नलाघवके ही कारण मास्टर साहब आज मासाब हो गये (मास्टर साहब—माट साहब–मास्साहब–मस्साब) तथा पॉवखाने का रूप विकृत होकर पैखाना (पॉवखाना – पॉयखाना – पायखाना—पैखाना) हो गया। मसुलीपटम —मछलीपटम— मछछीनटम् हो गया।

यह उच्चारण भेद भाषा के विकास मे चाहे जो भी योगदान देवे और अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता हो, लेकिन वैयाकरण को क्षुब्ध करने के लिए ये अचूक अस्त्र है। ध्वनिकार यह चाहता है कि जो उच्चारण सम्बन्धी निर्देश दिये गये है यदि जनसाधारण इनका पालन नही करता तो शब्दों का स्वरूप विकृत हो जाता है और भाषा अपने वास्तविक पद से उतर कर अपभ्रंश में मिल जाती है। अतएव उच्चारण पर कड़ा नियन्त्रण रखना भाषाविदों का प्रधान कर्तव्य है। तथा नियमोल्लंघन को अशुद्ध उच्चारण की संज्ञा दी जाती है। "एकैकस्य हि शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशा:"

(ख) **शीघ्रता प्रयत्न :**—शार्टकट का उद्देश्य है जल्द ही काम समाप्त करना। मानव स्वभाव से यह प्रवृति रखता है कि एक काम जल्द ही समाप्त कर दिया जाय और दूसरा प्रारम्भ। शब्दो के उच्चारण मे भी यही शीघ्रता-भाव आते हैं। फल यह होता है कि शब्दों का पूर्ण उच्चारण नही होता। (अजय–अजे)

(ग) **अभ्यास और आदत**—वैयक्तिक आदत के अनुसार भी अशुद्ध उच्चारण पाया जाता है। प्रचलित है कि लखनऊ को नखलऊ, अमरूद को अरमूद, डालटेनगंज को लालटेनगंज कहने की आदत बहुत जगहों में पढ़े लिखे लोगों की भी पड़ गयी है। बोलने में कोई रुक कर बोलता है, कोई शीघ्रता से बोलता है, कोई ज़रूर के बदले 'जरूर' कहता है।

(घ) कुछ लोगों को बोलने के क्रम मे 'समझे न,' (Understand) आदि की एक आदत पड जाती है ज। शब्दो के वास्तविक उच्चारण पर अपना प्रभाव छोड देते हैं। वाक्य के धारा प्रवाह उच्चारण मे ऐसे वाक्याक्षप्त अंशो से रुकावट होती है।

(च) वर्णों के शुद्ध उच्चारण का अज्ञान—बहुत से लागों मे वणो के शुद्ध उच्चारण का ज्ञान नही रहता। सभवत: इसका अभ्यास नही कराया जाता है फलस्वरूप प्रश्न को प्रशन, बृक्ष को बृच्छ, प्रताप को परताप, सिंहेश्वर को सिघेशर कृपा को किरपा कहने की आदत पड जाती है।

(छ) प्रान्तीय या ग्राम्य प्रभाव के कारण भी एक ही शब्द का भिन्न-भिन्न रूपों मे उच्चारण पाया जाता है। फलतः शब्द अपना मूलरूप नही रख पाते हैं। सिलचर का हिन्दी भाषी दिल्ली के हिन्दी भाषी से निश्चय ही पृथक उच्चारण करता है। दिल्ली और बनारस मे प्रयुक्त शब्दो का उच्चारण-भेद देखिये।

खींचना—खेचना
अघूरा—अधोरा
मन्दिर—मन्दर
प्रताप परताप
पार्वती—परबती
शत्रुघ्न—शतरोघन
श्री—शिरी

जिन उच्चारण दोषों की चर्चा ऊपर की गयी है उनमें कुछेक का शास्त्रीय वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है:—

(क) व्यञ्जन स्वर भक्ति—भक्ति—भगति
भक्त—भगत
शैलेन्द्र—शैलेन्दर आदि

(ख) व्यञ्जन स्वर लोप—

उपाध्याय—ओझा; मुकुट—मउड़
बन्दोपाध्याय—बनर्जी; सागर—साअर
चट्टोपाध्याय—चटर्जी; बचन—बैन

(ग) व्यञ्जन स्वरागम—स्कूल—इस्कूल; पत्नी—पतनी
स्नान—अस्नान; निश्चय—निहचय
स्त्री—इस्त्री; बानर—बन्दर

(घ) **ह्रस्व या दीर्घ** दोष—लिपि—लिपी

पतित—पतीत परन्तु—परन्तू

किन्तु—किन्तू कुली—कुलि आदि

(च) **वर्ण विनिमय या विपर्यय—**

अमरूद—अरमूद; एरण्ड—रेंडी

रिक्सा—रिस्का, डालटेनगज—लालटेनगंज

पहुँचना—चहुँपना; लखनऊ—नखलऊ

(छ) **ऋ, र, अर का भ्रम—**

ऋषि—रिषि ऋतु—रितु

मार्ग—मारग आश्रम—आशरम

शर्म—शरम

(ज) **न और ण का भ्रम—**

रणभूमि को रनभूमि गुण को गुन

प्रणाम को प्रनाम महान को महाण

(झ) **ड, ड़, ढ, ढ़ का भ्रम—**

प्राय: लोग साडी को साडी, सोडा को सोडा, मेढक को मेढक, बूढ़ा बुड्ढा कहते दिखायी पडते है या लिखते भी है।

इनके अतिरिक्त उच्चारण सम्बन्धी दोष कई रूपो में मिलते हैं जैसे शब्द विपयर्य (Spoonerism) यहां 'गाय का सीगं भैस मे, के बदले 'गाय का भैस सीगं मे' कहना। यह उच्चारण दोष नहीं होने पर भी उच्चारण को प्रभावित करता है। शब्दों में सन्धि करने, एकी भाव से, (चर्मकार—चमार) सारुप्य और सावर्ण्य प्रणाली (चक्र—चक्का) से ध्वनि परिवर्त्तन होने के कारण उच्चारण दोष भी उत्पन्न होते है।

अनुनासिकता की भूल—हाथ को हाथ

सच्चा को संचा

कच्चा को कंचा कहना इसी

कोटि के अन्तर्गत आता है। इनके, अतिरिक्त, वर्णो पर अनावश्यक आघात या आवश्यक आघात नहीं देना भी हमारे उच्चारण को दोषपूर्ण बनाते है।

उच्चारण सम्बन्धी कड़े नियन्त्रण हमारे भाषा शास्त्रियों और ध्वनिकारों ने प्राचीनकाल से ही दिया है। उन्होंने साथ ही अच्छे उच्चारण के लिये जो निर्देश दिये है वे अवलोकनीय है।

वैयाकरण पाणिनी का इस सम्बन्ध में स्पष्ट आदेश है कि—शंकित होकर, डर कर, खूब चिल्लाकर, अस्पष्टता के साथ, नाक से, कौवे की आवाज मे, मूर्धास्थल से, उच्चारण करके, उचित स्थानों से उच्चारण न करके जल्दी-जल्दी बोलते हुए, रुक-रुककर गद्-गद् स्वर मे गा-गाकर, वर्णों को चबा-चबाकर पदों और अक्षरो को पूर्ण रूप मे उच्चारण न करके, दीनतायुक्त स्वर मे और सभी को अनुनासिक ढंग से उच्चारण करना ठीक नही है।'

महर्षि याज्ञवल्क्य ने तो उच्चारण का सौदर्य इस भावपूर्ण व्याख्या में उपस्थित किया है:—

'जिस प्रकार बाघिनी अपने बच्चो को मुँह मे लेकर चलती है कि न तो बच्चो को दात चुभते है और न वे बच्चे मुँह से गिर ही पड़ते है, उसी प्रकार वर्णो का उच्चारण करना चाहिये। उच्चारण मधुर हो, स्पष्ट हो, एक वर्ण दूसरे वर्ण को दबाए न हो। प्रत्येक वर्ण का पूरा उच्चारण किया जाय, वे आपस मे एक दूसरे से मिल न जायें। जिस प्रकार मतवाला हाथी एक पैर के बाद दूसरा पैर रखता है उसी प्रकार एक पद और पदान्त को अलग-अलग स्पष्ट बोलना चाहिये।'

इन विवरणों से स्पष्ट होगा कि उच्चारण मे किन किन बातों पर ध्यान देना चाहिये। और अच्छे उच्चारण के कौन-कौन से लक्षण हैं। इन उद्धरणों से हिन्दी शिक्षकों को यथेष्ठ मार्ग प्रदर्शन मिलता रहेगा। भाषाशास्त्र में इन वैज्ञानिक नियमों का समावेश जिन सिद्धान्तों पर हुआ है, तथा जिन उद्देश्यों से उन्हे हम आज अध्ययन करते हैं, वास्तव में वे हिन्दी के विद्यार्थी ही नही किसी भाषा के अध्ययन करने वाले को उच्चारण सम्बन्धी दोषों के निवारण के लिये उचित प्रकाश प्रस्तुत करते हैं।

उच्चारण का हमारे स्वरयन्त्र से घना सम्बन्ध है। स्वरयन्त्र के संचालन से ही उच्चारण किया जाता है शरीर के जो अवयव उच्चारण में क्रिया करते हैं या श्रम करते है वे उच्चारणोपयोगी शरीरावयव कहे जाते हैं। वे है—ओठ, दाँत, वर्त्स (डा० मंगलदेव शास्त्री के अनुसार इसका शुद्धसंस्कृत नाम बर्स्व है) तालू, स्वरतन्त्रियों का स्थान, श्वासनलिका एवं नासिकाविवर।

यहाँ हम मानव उच्चारणोपयोगी शरीरावयवों का एक चित्र प्रस्तुत कर रहे है जिनसे शिक्षक और छात्रों को लाभ हो सकता है । तथा उन विभिन्न अवयवो की क्रिया का भी विवेचन किया जा रहा है ।

मानव उच्चारणोपयोगी शरीरावयव
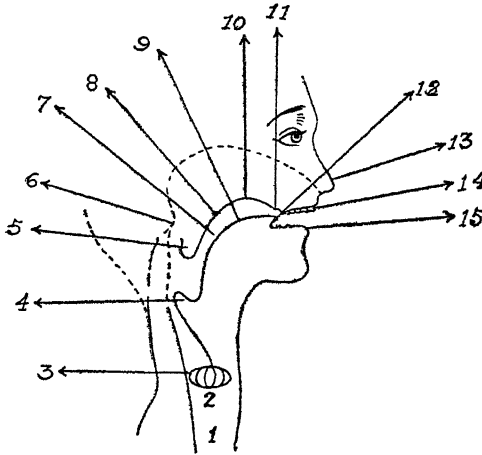
१. श्वास नलिका (Wind pipe)	८. कोमल तालु (Soft palate)
२. कंठपिटक (Larynx)	९. जिह्वा (Tongue)
३. स्वर तंत्री (Vocal chords)	१०. मूर्धा (Hard palate)
४. अभिकाकल (Epiglottis)	११. वर्त्स (Teeth ridge)
५. कौवा (Uvulva)	१२. ऊपर के दांत (Upper teeth)
६. नासिका विवर (Nasal cavity)	१३. नाक (Nose)
	१४. ऊपर का ओष्ठ (Upper lip)
७. कंठ (Guttur)	१५. निचला ओठ (Lower lip)

हिन्दी क्या, किसी भी भाषा के शिक्षक के लिए यह अत्यन्त ही आवश्यक है कि वह मानव के उच्चारणोपयोगी शरीरावयवों की रचना और विविध क्रियाओं को ठीक-ठीक समझ ले। इस प्रकार की जानकारी से वह उच्चारण सम्बन्धी बहुत-सी विशेषताओं, एवं दोषों को जानकर अपने कार्यक्षेत्र में सफल हो सकता है। शरीर के इन अवयवों मे कुछ तो प्राकृतिक रूप से, कुछ भयानक रोगो तथा अचानक घटनाओं से विकृत हो जाते है और बालक उच्चारण करने मे असमर्थ हो जाता है। इनमे कुछ विकार तो शल्य-चिकित्सा या अन्य प्रकार के इलाजों से अच्छे होकर दूर हो सकते है। अतएव शिक्षक को अपने भाषा-अध्यापन में उच्चारणोपयोगी अवयवों की पूरी जाँच-पडताल कर लेनी चाहिए। उनके प्रारम्भिक जाँच-पडताल से बहुत-सी बातों का पता लग सकता है जो सामान्यत: अशिक्षित तथा अज्ञान परिवार नही जान पाते है। शिक्षक की जाँच के बाद उनके रोगों के निदान की सम्भावना होने से बालकों के बहुत-से उच्चारण सम्बन्धी विकार दूर हो सकते है। अतएव सिद्ध है कि शरीर के इन महत्वपूर्ण अवयवो का अध्ययन कर लिया जाय।

इन अवयवो की जानकारी शिक्षक दर्पण द्वारा स्वय कर सकते है। बालको को भी दर्पण लेकर अपने उच्चारणोंपयोगी अवयवों को देखने की जानकारी दे सकते हैं। दर्पण के अतिरिक्त माडल भी, जो विभिन्न अवयवो को प्रत्यक्ष रूप से पृथक-पृथक दिखा सकते है, काम मे लाये जा सकते हैं। बडे-बडे कागजो पर छपे चित्रों से भी सहायता ली जा सकती है। अर्थ यह है कि भाषा के शिक्षक और विद्यार्थी को अपने उच्चारण के विभिन्न अवयवों की पूरी जानकारी होनी चाहिये।

(क) **ओठ:**—ओठ दो भागों में बँटा है, ऊपर और नीचे। ये ओठ अन्दर से आनेवाली वायु को पूर्णतः अंशतः, स्थायी या क्षणिक रूप से बाहर निकलने से रोक देते है। और इस कारण एक विभिन्न प्रकार की ध्वनि निकलती है। इन्ही विभिन्न ध्वनियों को स्थानानुसार हम विभिन्न नाम दिया करते हैं। कभी तो दोनों ओठ बन्द हो जाते हैं, कभी दोनों खुले रहते हैं, कभी दोनों ओठ मुखान्ध्र की निकलती वायु के आघात के कारण कुछ खुले रह जाते है। ओठों द्वारा वायु का क्षणिक निरोध करने से 'प' वर्ग का उच्चारण होता है। आ के उच्चारण में ओठों का पूरा खुला रहना, 'इ' के उच्चारण मे कुछ बन्द हो जाना और 'उ' में वृत्ताकार हो जाना हम

दर्पण से साफ देख सकते है। ओठो के कुछ खुले रहने से जब वायु घर्षण करता हुआ बाहर निकलता है तब हम 'व्' का उच्चारण करते है, जैसे 'विकार'।

(ख) **दाँत:**—ओठ के पीछे दाँत की पक्तियाँ—ऊपर और नीचे की है। दाँत का जीभ तथा ओष्ठ से जिस-जिस प्रकार का स्पर्श होता है उच्चारण भेद स्पष्ट पाया जा सकता है।

जब जीभ का अग्रभाग ऊपरी दाँत के साथ क्षणिक स्पर्श या अधिक स्पर्श या एकदम अलग होता है तो कई प्रकार के वर्णो का उच्चारण होता है। उच्चारण के लिए, दाँत का प्रदेश तीन भागों मे बाँटा जा सकता है। जैसे—दाँत के पिछले हिस्से का नीचे का भाग, दाँतो की जड़ और उससे सटा हुआ उभरा भाग जो बर्स्व कहा जाता है। दाँतो के इन तीन भागों का ज्ञान क्रमशः ताला, रजाई और टाइम के उच्चारण से स्पष्ट होगा।

ऊपर के दाँत का निचले ओठ से जब सम्पर्क होता है तो वायु कम या अधिक देर तक रोकी जा सकती है। ऐसी अवस्था मे स्वभाव रूप से 'व' का उच्चारण होता है। यथा—वन, वायस (Voice), आदि।

(ग) वर्त्स:—ऊपर कहा जा चुका है कि दाँतों के जड़ के ऊपर वाला उभरा खुरदरा भाग वर्त्स के नाम से कहा जाता है। डा० मंगलदेव शास्त्री ने इसका शुद्ध संस्कृत नाम 'बर्स्व' बताया है। इसका क्षेत्र कठोर तालू के प्रारम्भ तक है। यह अस्थिमय होने के कारण ही कठोर है। जीभ का वर्त्स स्थान से जब सम्पर्क होकर ध्वनि निकलती है तब उन वर्णो का उच्चारण होता है जिन्हें हम 'वर्त्स्य वर्ण' कहते है।

(घ) तालु:—वर्त्स से कौवा तक का सारा प्रदेश तालु कहा जाता है। 'यह मुख का छत भी कहा जा सकता है।' यह छत दो भागों में बँटा है—अगला भाग और पिछला भाग। अगले भाग को कठोर तालु कहा जाता है। अस्थिमय होने के कारण ही इसका नाम कठोर तालु रखा गया है। इसे मूर्धा भी कहते हैं। तथा इस स्थल से किये गये उच्चरित वर्ण मूर्धन्य कहे जाते है। वर्त्स और मूर्धा के बीच का भाग तालु कहा जाता है। पिछला भाग कोमल और चिकना होता है। इसे कोमल तालु कहा जाता है। जीभ के सहारे या अंगुली लगा कर इसका अनुभव हो सकता है। कोमल तालु में जीभ या अँगुली से स्पर्श करने से एक प्रकार की गुदगुदी पैदा होती है।

(ङ) कौवा:—कोमल तालु के पीछे का मासपिण्ड ही कौवा कहा जाता है। यह लटका रहता है और घण्टी के आकार का होता है। यह वायु को

नासिकाविवर मे जाने से रोकने के लिए उठ जाता है। अनुनासिक वर्णों के उच्चारण में यह भाग यथावत बना रहता है, उठता नहीं है। यह कौवा हवा को फेफड़े से ऊपर आने के बाद विभिन्न प्रदेशो मे जाने की अनुमति देता या जाने से अवरोध पैदा करता है। उच्चारण सम्बन्धी कई तरह के दोष इसके अन्तर्गत विकार हो जाने से होते है।

जिह्वाः—जिह्वा अत्यन्त ही कोमल अवयव है जो प्रयत्न से अनेक आकार बना सकती है। यह रबड़ से भी अधिक लचीला और इच्छानुकल बाहर-भीतर, चौड़ा-पतला, नोकदार सभी आकृति धारण कर सकती है। यह लचकता हुआ एक मास-पिण्ड है जो सभी प्रकार के उच्चारण में महत्वपूर्ण क्रिया करती है। यह न केवल लम्बाई मे ही घटती-बढती है, वरन् अपने क्षेत्र की उपलब्ध ऊँचाई में भी कई तरह के आकार परिवर्तन कर सकती है। यह समुद्र के तरंग की तरह ⌒⌣⌒ भी अपनी आकृति बना लेती है; चूँकि इस अवयव को प्रायः सभी वर्गो के उच्चारण मे श्रम करना पडता है इसलिए इसे सबसे अधिक क्षेत्र मिला है।

जीभ को इतना व्यापक क्षेत्रफल मिल जाने से फल यह होता है कि वह आवश्यकतानुसार या सुविधानुसार अपने विभिन्न अगों से अपनी क्रिया पूरी करती है। उन अंगों को हम जिहवाग्र (जीभ की अगली नोक), जिहवा-मूल (जीभ की जड) या जिहवामध्य (जीभ का मध्य क्षेत्र) या जीहवाग्र से सटा जिहवोपाग्र, याजिहवा मूल के आगे जिहवापश्च आदि नाम से उनके स्थान के अनुसार पुकारते हैं।

जीभ की नोक दाँत, तालु, मूर्धा आदि स्थानो का इस प्रकार स्पर्श करती है कि अन्दर की आती हुयी हवा का प्रवाह रुक जाता है। लेकिन जीभ अभीष्ट निर्दिष्ट स्थान का स्पर्श करके तुरन्त पीछे लौट जाती है और रुकी हुयी हवा को बाहर जाने का अवसर मिल जाता है। इस क्रिया से विभिन्न ध्वनियाँ निकलती है इसके अन्तर्गत सभी स्पर्श वर्ण आते है।

स्वरों के उच्चारण में जीभ आगे से चाड़ा और पीछे से संकुचित हो सकती है तब का उच्चारण देखिये। साथ हा, कभी जीभ आगे से संकुचित और पीछे से चौड़ा होकर भी कुछ स्वरों का उच्चारण करने में सहायता करती है जैसे इमली, इशाई आदि। इस क्रिया में जीभ के आकार के किनारे से वायु निरबाध रूप से आगे निकल जाती है। वायु के

निकलने की पहली स्थिति में ◁ ऐसा क्षेत्र और दूसरी स्थिति मे इसके विपरीत ▷ ऐसा आकार हो जाता। इनके अतिरिक्त, कभी-कभा जीभ उस मध्यम मार्ग को भी अपनाती है जहाँ वह वायु के वेग को पूरा-पूरा न रोक कर उन्हे इस स्थिति मे रखती है जहाँ वह बल प्रयोग से घर्षण करती हुयी बाहर निकल जाती है। घर्षक वर्णो—स, ज आदि के उच्चारण में ऐसा होता है। चौथी स्थिति यह भी होती है जहाँ जीभ निष्त्रय-सी हो जाती है और वायु अधिक स्वच्छन्द रीति से बाहर निकल जाती है। ऐसा स्वरों के उच्चारण मे ही होता है जैसे—अ, आ आदि।

स्वर यंत्रावरण—हमारे शरीर मे एक भोजन-नली है और दूसरी श्वास-नलिका। हम जो कुछ खाते है वह श्वास-नलिका के ऊपरी भाग को पार करता हुआ भोजन-नली में पहुँच जाता है। इस पार करने की स्थिति में, इसे पृथक करनेवाला छोटा-सा अंश स्वरयन्त्रावरण कार्य करता है। वह एक प्रकार का ढक्कन है इसी से उसे आवरण कहते है। यदि यह निष्क्रिय हो जाय या इसकी क्रिया मे किसी प्रकार की अप्रत्याशित बाधा उत्पन्न हो जाय तो भोजन श्वास-नलिका मे उतर जाती है और हमे श्वास सम्बन्धी कष्ट पहुँचाने लगता है। इसीलिये भोजन के समय बोलना वर्जित है। शान्तिपूर्वक भोजन करने का विधान इसीलिये बनाया गया है। यह आवरण स्वरयंत्र की रक्षा का एक प्रमुख अवयव है जिसे अंग्रेजी मे (Uvulva) कहते है।

श्वास-नलिका—फेफड़े से कण्ठ तक की लम्बी नली श्वास-नलिका कही जाती है। फेफड़े की हवा इसी नलिका के द्वारा आकर मुख मे या नासिका-विवर में विभिन्न स्थलों का स्पर्श करके अनेक ध्वनियाँ उत्पन्न करती है।

कण्ठ-पिटक—इसी नलिका का सबसे आवश्यक भाग कण्ठ-पिटक है। अंग्रेजी में इसे (Larynx) कहते है। यह एक प्रकार का पिटारा ही है। इसे हम स्वर-यन्त्र भी कहते है। स्वर-यन्त्र के भीतर स्वर-तन्त्रियाँ होती है। कण्ठ-पिटक को टेंटुआ भी कहते है जो गर्दन के बाहर उभरा-सा मालूम पड़ता है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का कण्ठ-पिटक कम उभरा रहता है।

स्वर-तन्त्रियाँ—स्वर-तन्त्रियाँ दो परदे हैं जो टेंटुआ को दोनों तरफ से घेरे रहते है। वायु इन परदों के किनारे से निर्बाध्य रूप से आगे बढ़ जाती है। लेकिन यदि ये परदे मार्ग अवरोध कर दें तो हवा को बल प्रयोग करके आगे बढ़ना पड़ेगा। तब इन तन्त्रियों में कम्पन होने लगता है। संगीतकारों

के शास्त्रीय संगीत में यह देखा जा सकता है जहाँ स्वरों का उतार-चढ़ाव, आरोह-अवरोह प्रचुर मात्रा मे होता है। इन दोनों स्थितियो में क्रमशः विभिन्न ध्वनियाँ उत्पन्न होती है जो यहाँ विवेचन का विषय नही है। इतना ही समझना चाहिये कि उच्चारण मे इन तन्त्रियों का बहुत ही उपयोग है।

फेफड़ा—फेफडा ही वह मूल स्थान है जहाँ से उच्चारण के लिये वायु उत्प्ररित होकर बाहर निकलती है। जिस प्रकार लोहार की धौकनी के कारण जो हवा निकलती है वह कोयले की अग्नि को अधिक प्रज्ज्वलित करती है, ठीक उसी प्रकार से फेफडे की निकलती हवा भी हमारे वर्णो को प्रज्ज्वलित और उच्चरित करती है।"

नासिकाविवर—नासिका की वह नली है जिसके द्वारा हम मुखविवर को बन्द करके अपना वर्णोच्चारण कभी-कभी किया करते है। अनुनासिक ध्वनियों का मुख्य प्रकाशक यही अवयव है।

मानव स्वर-तन्त्रियों का सम्यक विवेचन इस अभिप्राय मे किया गया है कि हिन्दी के शिक्षक और विद्यार्थी भलीभाँति जान जायें कि हिन्दी वर्ण-माला का उच्चारण किन-किन अवयवो के श्रम से करना पडता है। इसका शास्त्रीय विवेचन और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भाषाविदों ने प्राचीनकाल से ही किया है। जिससे हिन्दी के शिक्षकों का मार्ग-प्रदर्शन प्रचुर मात्रा में हो सकता है। हिन्दी वर्णमाला की ध्वनियो का सकेत इस अध्याय के प्रारम्भ में किया गया है जिससे पर्याप्त सहायता की सम्भावना है। अतएव प्रशिक्षण विद्यालयों और महाविद्यालयों में हिन्दी शिक्षण के अन्तर्गत हिन्दी ध्वनि-शास्त्र का व्यापक अध्ययन और सतत अभ्यास की व्यवस्था होनी चाहिये।

व्यापक अध्ययन और अभ्यास का संकेत इसलिये किया गया है कि शब्दों के शुद्ध उच्चारण का स्वरूप प्रारम्भ से ही निश्चित हो जाय। यदि उच्चारण में शिक्षकों को उचित प्रशिक्षण मिल जायगा तो वे भी अपनी सस्था में लौटने पर बालकों के उच्चारण का पूर्ण पर्यवेक्षण करके आवश्यक सुधार ला सकते हैं। यदि शिक्षकों को स्वयं ध्वनि-शास्त्र का ज्ञान नहीं होगा तो वे बालकों की उच्चारण सम्बन्धी अशुद्धियों पर किसी प्रकार का ध्यान देने में असमर्थ ही रहेंगे। फलतः उच्चारण सम्बन्धी दोषों का निवारण नहीं कर सकेंगे और बच्चों में शुद्ध उच्चारण का अभ्यास नहीं होगा।

एक कुशल और प्रशिक्षित शिक्षक अपने विद्यार्थी के समक्ष भी ध्वनि-शास्त्र के सामान्य नियमों की जानकारी प्रस्तुत करता है। निस्सन्देह यह व्यवस्था ऊपर की कक्षाओं मे ही की जा सकती है, विशेषतः माध्यमिक स्तर पर। ध्वनि विचार की बाते बताने के लिये शिक्षक को मानव स्वर-यन्त्र का चित्र उपयोग मे लाना चाहिये। वे स्वर-यन्त्रो के मॉडलों (Models) की भी सहायता ले सकते है। ऐसे मॉडल प्रत्येक अंग अवयव को अलग-अलग कर सकते हैं और इस प्रकार विद्यार्थी उन सभी अवयवों का रूप देख सकता है जिन्हें वह दर्पण लेकर भी नही देख पायेगा। दर्पण का सहारा उपरोक्त चीजों के अभाव मे ही लिया जा सकता है जिसके द्वारा बालक अपने मुख में भीतर के उच्चारणोपयोगी अवयवों तथा जिह्वा के क्रिया-कलापों को स्वयं भी देख सकता है। आधुनिक काल मे उच्चारण के प्रशिक्षण हेतु ग्रामोफोन और लिंग्वाफोन (Linguaphone) भी काम में लाये जाते है।

इस प्रकार ध्वनि विचार के बाद शिक्षक को हिन्दी की ध्वनियों का वर्गीकरण भी बालकों के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिये। विद्वानो ने ध्वनियों का वर्गीकरण निम्न रूप से किया है।

(क) उच्चारण स्थान के अनुसार वर्णो को कण्ठ्य (क वर्ग), तालव्य (च वर्ग), मूर्धन्य, (ट वर्ग), वर्त्स्य (प वर्ग), दन्त्य (त वर्ग) कहा गया है।

(ख) उच्चारण की प्रकृति के अनुसार उन्हें स्वर, ह्रस्व, दीर्घ आदि में तथा स्पर्श, ऊष्म, अन्तःस्थ, लुण्ठित, उत्क्षिप्त, पार्श्विक और अनुनासिक वर्णो के अन्तर्गत रखा गया है।

(ग) उच्चारण मे मुख के भीतर के परिवर्तनों के फलानुसार उन्हें विवृत (खुला हुआ), संवृत्त (बन्द) और अर्द्ध संवृत्त या अर्धविवृत्त (कुछ बन्द कुछ खुला) वर्णो में भी बाँटा गया है। जैसे— प' और 'आ' आदि।

(घ) उच्चारण में एक प्रयत्न ऐसा भी होता है जिसके अनुसार वर्णो के लिए कुछ अधिक या कुछ कम परिश्रम करना पडता है। अधिक परिश्रम मे वे महाप्राण की सज्ञा पाते है। जैसे वर्गो का दूसरा और चौथा वर्ण (ख, घ आदि)। अल्पप्राण में यह चेष्टा क्षणिक होती है जैसे 'क' और 'ग'। वर्गो मे पहला और तीसरा इस श्रेणी में आते हैं।

इनके अतिरिक्त घोष और अघोष वर्णो का भी वर्गीकरण किया गया है। साराश यह है कि हिन्दी शिक्षकों को सभी वर्णो का इन विशेषताओं के

कारण वर्गीकृत होने का पूर्ण विवरण प्रस्तुत करना चाहिये। क्योंकि हमारा विश्वास है कि हिन्दी शिक्षण की सफलता की एकमात्र कुंजी उसकी वर्ण विशेषता और उच्चारण सम्बन्धी आवश्यक शर्तों मे निहित है। भाषा शिक्षण का उच्चारण मुख्य आधार है जिस पर भाषा शिक्षक का ध्यान देना परमावश्यक है।

उच्चारण सम्बन्धी अवयवों के स्वरूप और क्रियाओं की जानकारी आवश्यक होने पर भी यह निश्चित नही कि बालक शुद्ध उच्चारण कर सके। यह तो केवल एक मार्ग प्रदर्शन है। वास्तव मे उच्चारण की सफलता की कुंजी उसके अभ्यास और आदत में निहित है। कहा गया है कि कठोर प्रशिक्षण से ही शुद्ध उच्चारण सम्भव है। इसे ज़ुबान का प्रशिक्षण (Training of tongue) भी कहते है। प्रायः हिन्दी छात्र बाल्यावस्था मे 'क़' का उच्चारण नही कर सकते है क्योंकि ऐसे वर्णोंवाले शब्द उनके दैनिक प्रयोग में लगभग नहीं ही आते है। एक बार मैंने देखा था कि एक मौलवी साहब ने एक लड़के को 'कौवा' 'कटहल' और 'काश्मीर' का शुद्ध उच्चारण एक घण्टे के अभ्यास द्वारा करा दिया था। तात्पर्य यह है कि शुद्ध उच्चारण के लिए शब्दों के उच्चारण का नियमित अभ्यास कराया जाय। शिक्षक को स्वय शुद्ध उच्चारण करना चाहिये तथा बालको से भी उसका अभ्यास कराना चाहिये। बोलचाल मे, पाठ पढने में, भाषण आदि में जहाँ भी हो उनके उच्चारण पर पूर्ण ध्यान देना चाहिये। पढ़ने मे न केवल अशुद्ध उच्चरित शब्द को ही वरन् पूर्ण वाक्य को पढ़वा कर शुद्ध उच्चारण का अभ्यास कराना चाहिये। वार्तालाप के सम्बन्ध में पिछले अध्याय में शुद्ध उच्चारण का संकेत किया गया है। वाचन में उच्चारण की शुद्धता का वर्णन 'वाचन' के अध्याय मे किया जायगा।

इसका अर्थ यह हुआ कि शिक्षक को लड़कों की वाचन-क्रिया का पूर्ण पर्यवेक्षण करना चाहिये तथा वाचन के क्रम मे ही शब्दों के शुद्ध उच्चारण का ख्याल रखना चाहिये। इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षक स्वयं पाठ का शुद्ध सस्वर पाठ वर्ग में करें जिसमें वर्ग के सभी लड़के सहज रूप से शिक्षक के उच्चारण को ग्रहण कर सकें। उच्चारण ऐसा हो कि पिछला लड़का भी साफ-साफ भलीभाँति सुन सके; आदर्श पाठ देने के बाद शिक्षक बालकों द्वारा भी सस्वर पाठ दिलायें। उनके वाचन में शिक्षक उच्चारण के मुखावयव की क्रियाओं, स्वरों का उतार-चढ़ाव आदि को ध्यानपूर्वक देखें। अशुद्धियों को सामूहिक रूप से दूर कराना चाहिये।

वाचन के दोषो के कारण उच्चारण दोष भी उत्पन्न होते है। जल्दी से पढ़ना या बहुत धीरे-धीरे पढ़ना, तुतलाकर पढ़ना या हड़बडा कर पढ़ना कई रूप के वाचन दोष है जिनके कारण हमारा उच्चारण प्रभावित हा जाता है। शिक्षक को वाचन का उचित ढग अभ्यास मे लाना चाहिये तथा अशुद्ध उच्चारणो को दूर करना चाहिये।

प्राय: लड़के वाचन मे निम्नांकित दोषों के शिकार हो जाया करते है। जैसे:—

(i) श के बदले में स या इनका उलटा कहना।
(ii) न के बदले ण का उच्चारण या इसका विपरीत।
(iii) व के बदले ब या ब के बदले व।
(iv) ड का ड़, ड़ का ड।
(v) क्ष का छ, छ का क्ष।
(vi) ढ का ढ़ या ढ़ का ढ आदि।

शहर — सहर
घड़ा — घडा
पक्ष — पछ
वाण — बान आदि।

शिक्षकों को इन वर्णों के शुद्ध उच्चारण पर पूरा सतर्क रहना चाहिये।

शुद्ध उच्चारण की शिक्षा के लिये आज विश्लेषणात्मक विधि को भी अपनाया जाता है। वास्तव मे शब्दो के विश्लेषण कर देने से बालक उनके अवयवों का अलग-अलग ज्ञान प्राप्त कर लेते है। बड़े-बड़े शब्दों का इस प्रकार का खण्ड लड़कों के लिए उन्हें सुगम तथा सुग्राह्य बना देता है। नीचे की कक्षाओं में शब्दों का विश्लेषण करके उच्चारण का प्रशिक्षण देना चाहिये। छोटे शब्द भले ही विश्लेषण में न आयें लेकिन लम्बे शब्दों को निश्चय ही इस प्रणाली के अनुसार अलग-अलग करके बताना चाहिये। जैसे,

स्वराघात—स्व रा घा त
मनोविज्ञान—म नो वि ज्ञा न
पाठशाला—पा ठ शा ला
प्रार्थना—प्रा र्थ ना
साधारणतया—सा धा र ण त या
समुदाय—स मु दा य आदि।

शुद्ध उच्चारण के लिए शिक्षक का न केवल वर्गगत वाचन पर ही ध्यान देना चाहिये वरन् बालको के मौखिक कार्यो की ओर भी ध्यान देना चाहिये। शुद्ध उच्चारण लयात्मक गीत, कर्म सगीत तथा नाटकीय संवादों के उचित सम्पादन से भी सम्भव है। उद्योगो के क्रियाशीलनो मे कार्य के बीच-बीच जिन शब्दो का प्रयोग होना है उनका उचित उच्चारण होना चाहिये। विद्यालय का अधिक समय बातचीत मे ही व्यतीत होता है। इसलिए उन स्थलों पर शिक्षक का पूर्ण ध्यान जाना चाहिये, जहाँ पारस्परिक सवाद होना हो जो सम्भाषण स्थल हो तथा अन्य सार्वजनिक उत्सवों पर जो भाषागत व्यवहार हुआ करता है। आज विद्यालयों मे सांस्कृतिक एवं शास्त्रीय तथा अन्य क्रियाकलाप है, जहाँ परस्पर सम्भाषण का ही प्रमुख आधार है। ऐसे अवसरों पर या विद्यालय के किसी भी सामाजिक सम्पर्क स्थल के बातचीत के क्रम में शुद्ध उच्चारण पर ध्यान देना चाहिये। मौखिक क्रियाशीलनों से जो विद्यालय मुखरित होते हैं, शिक्षक उच्चारण सम्बन्धी व्यापक सुधार ला सकता है।

उच्चारण में स्वरों का महत्वपूर्ण स्थान है। इनसे अर्थ बहुत पुष्ट तथा स्पष्ट होता है। स्वराघात से वक्ता का उद्देश्य पूर्णतया प्रकाशित होता है। स्वराघात यदि ठीक से न हो तो अर्थ का अनर्थ भी हो जाता है। आप कौन हैं ? आप कौन हैं ?—इन दो वाक्यो का अर्थ से अनर्थ हो जाना स्वराघात का परिणाम होगा। वर्ग में, बोलचाल में, अभिनय में, संवाद में ये आघात बहुत ही उपयोगी और अर्थपूर्ण होते हैं। अतएव शिक्षक को चाहिए कि लम्बेगद्यांश पढ़ाते समय इन स्वराघातों का पूरा ख्याल रखें।

उच्चारण भाषा का मूलाधार और सर्वविद्यमान विशेषता है। अतः इसे पृथक अध्याय में बाँधकर वर्णन करना संभव नहीं है। अतएव इसका भाव-प्रकाशन के विभिन्न साधनों—के अन्तर्गत ही विवेचन किया जायगा। ऊपर जिन प्रक्रिया का वर्णन किया गया है उनसे बालक के उच्चारण सम्बन्धी सुधार वर्गगत या विद्यालय के क्रियाशीलनों द्वारा सम्भव है। लेकिन इनके अतिरिक्त समाज का जो व्यापक चतुर्दिक प्रभाव उच्चारण सम्बन्धी अनेक दोषों के लिये उत्तरदायी हैं उनकी ओर शिक्षक के अलावे शिक्षित जनसमुदाय का भी ध्यान जाना चाहिये।

इस दिशा में सर्व प्रथम एक शिक्षित परिवार उच्चारण की शुद्धता का उचित वातावरण और पृष्ठभूमि तैयार कर सकता है। शिक्षित-परिवार के

लडको के बातचीत के ढंग और उच्चारण अशिक्षित परिवार के लड़को से निस्सन्देह शुद्ध और अच्छे होगे। ऐसे घरों मे भाषा का शुद्ध उच्चारण पाया जाता है, व्याकरण के अनुकूल शुद्ध वाक्य-रचना पायी जाती है। जहाँ की प्रादेशिक भाषा और मातृभाषा मे अन्तर है उनमे प्रायः देखा जाता है कि घर की बोली और होती है और विद्यालय की और। मुसलिम परिवारो मे घर की बोली और मदरसा की जुबान खालिश उर्दू होती है। अतएव लडका जैसा घर मे बोलता है वैसा ही स्कूल मे भी। लेकिन हिन्दी प्रदेश मे घर की हिन्दी और विद्यालय की हिन्दी मे पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। इस अन्तर के फलस्वरूप लड़को को शुद्ध उच्चारण के मार्ग मे बाधाओं का सामना करना पडता है। उचित यही प्रतीत होता है कि शिक्षित-परिवार हिन्दी के शब्दों का शास्त्रीय उच्चारण ही किया करे।

स्थानीय प्रभावो के कारण अशुद्ध उच्चारण भी हुआ करता है जिसका शिकार विद्यार्थी होता है। जैसे पटने मे अमरूद को अरमूद कहा जाता है। कुछ लोग लखनऊ को नखलऊ कहते है।

डॉलटेनगंज को लालटेनगज कह कर भी उच्चारण दोष का प्रदर्शन किया जाता है। करैले को कड़ैले, मन्दिर को मन्द्र आदि कहने के अशुद्ध उच्चारण से परिवार को यथासम्भव बचना चाहिये। प्रायः शिक्षित-परिवारो में भी दोषपूर्ण उच्चारण पाया जाता है जैसे अनुचर को पुकारने के लिये 'राजेन्द्र' की जगह 'रजेन्दरा', सुरेन्द्र का 'सुरेन्दरा' आदि का प्रयोग बालक के उच्चारण को प्रभावित करते है।

परिवार को इन अशुद्ध उच्चारणो को यथासम्भव त्याग देना चाहिये और शिक्षित वर्ग से यही आशा भी की जा सकती है। 'श्यामसुन्दरदास' का विकृत स्वरूप 'शमसुन्दरा' शिक्षित व्यक्ति के लिये शोभा की बात नही है।

उच्चारण में परिवार के अतिरिक्त विशाल जनसमुदाय का भी बड़ा भारी हाथ रहता है जो बालक के चतुर्दिक अवस्थित है। शब्दोच्चारण का दोष प्राय: इसी प्रकार के सम्पर्क संसर्ग स्थल से प्रारम्भ होता है। शिक्षित मुहल्ले के लडको मे उच्चारण सम्बन्धी दोष कम मिलेंगे, अशिक्षित स्थानों में अधिक। इस व्यापक प्रभाव—सामाजिक मिलना जुलना—को सर्वथा रोका नही जा सकता। साथ ही हम उच्चारण दोष को इस बडी संख्या में उत्पन्न होने देना नही चाहते। अच्छा तो यह होता कि मुहल्लों में भाव-प्रकाशन सम्बन्धी मौखिक क्रियाशीलनों का समय-समय पर आयोजन किया

जाता और बालकों को भाग लेने के लिये उत्साहित किया जाता। ऐसे शास्त्रीय क्रियाशीलनों से उच्चारण के दोषों का निवारण हो सकता है साथ ही शुद्ध उच्चारण की उचित पृष्ठभूमि भी तैयार हो सकती है। इस दिशा मे स्थानीय शिक्षक तथा शिक्षित युवक पुस्तकालयों की स्थापना तथा सस्थाओं के तत्वावधान मे क्रियाशीलनो के आयोजन की व्यवस्था करें तो उत्तम परिणाम अवश्यम्भावी है।

अतएव उच्चारण सम्बन्धी दोषों का निवारण--शिक्षक, शिक्षित परिवार, तथा शिक्षित जनता के सम्मिलित प्रयासों से ही सम्भव है। हा शिक्षक पर इसका विशेष भार है क्योंकि यह विद्यालय का ही प्रमुख कर्त्तव्य है कि उसके विद्यार्थी भाषा के शुद्ध उच्चारण की क्षमता रखे। लेकिन विद्यालय मे भी केवल हिन्दी शिक्षक ही नही, सभी शिक्षकों का परस्पर और सम्मिलित सहयोग मनोवाछित फल की प्राप्ति मे सहायक होगा।

अध्याय ८

वाचन की शिक्षा

इस बात से सभी हिन्दी शिक्षक अवश्य ही सहमत होंगे कि हिन्दी शिक्षण में अभी तक वाचन को उचित स्थान नही दिया गया है। यही बात अन्य भारतीय भाषाओ के लिये भी सामान्यतः सत्य है। वाचन के जिन विशेष और सामान्य उद्देश्यो (जिनकी चर्चा इस अध्याय में आगे की जायगी) के पूरे होने की बातें कही जाती है, उनका मूल्याकण करने से भी यह बात सर्वथा सत्य प्रमाणित हो जाती है। बालको की भाषा सम्बन्धी उपलब्धियाँ, जैसे भाव-प्रकाशन की योग्यता, भाव-प्रकाशन की शैली और साहित्य का उचित गुणा-गुणज्ञान (appreciation) बहुत ही न्यून मात्रा मे पायी जाती हैं। यही तक नही, परीक्षाफलो से भी यह पुष्ट है कि वाचन–अध्ययन का एक प्रमुख अवयव–हमारे प्राथमिक, तथा माध्यमिक विद्यालयों और महाविद्यालयों में किस प्रकार उपेक्षित–सा रहा है। इसका अनुभव शिक्षकों को शिक्षण कार्य में, परीक्षकों को विद्यार्थियों की लिखित या मौखिक जाच में या निरीक्षकों को निरीक्षण क्रम में हो रहा है। अध्ययन और उपलब्धि सम्बन्धी ह्रास की यह अवस्था निस्सन्देह चिन्ता का विषय है जिसकी ओर हमारे शिक्षकों का ध्यान अविलम्ब जाना चाहिये। शैक्षिक स्तर में निरतर ह्रास होने में चाहे अन्य कितने ही कारण क्यों न हों, उनमें वाचन का असफल शिक्षण भी एक प्रमुख प्रभावकारी कारण है।

वाचन का आखिर सर्वव्यापक महत्व क्या है जिसकी चर्चा शिक्षाविद् इस प्रकार किया करते हैं। एक अप्रशिक्षित शिक्षक के लिये वाचन शिक्षण की एक प्रक्रिया मात्र है। लेकिन एक प्रशिक्षित, कुशल और अनुभवी शिक्षक के लिये वाचन सम्पूर्ण शिक्षण कार्य-क्रमों का मूलाधार ही है।

वाचन का महत्वः—यदि सच पूछा जाय तो वाचन का महत्व केवल निम्नलिखित तीन बातों पर ही केन्द्रित है। यथाः—

(क) वाचन से व्यक्ति के मानसिक औत्सुक्य की शान्ति होती है;

(ख) वाचन से व्यक्ति के व्यावहारिक जीवन में बहुत ही सहायता मिलती है ।

(ग) वाचन व्यक्ति के मनोविनोद और मनोरंजन का एक प्रमुख साधन है ।

इनका सविस्तार वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है ।

(क) वाचन हमारे जीवन की एक महत्वपूर्ण क्रिया है । हमारे जीवन में उसका बड़ा ही घनिष्ट सम्बन्ध है । वाचन व्यक्ति को इस योग्य बनाता है कि वह किसी बात को स्पष्ट रूप में समझ सकने की शक्ति का निरन्तर विकास करता रहे । मौखिक अभिव्यक्ति और उच्चारण के प्रशिक्षण और अभ्यास के पश्चात् जब बालकों को वाक्यों का ज्ञान प्राप्त हो जाता है और उन्हें लिपि की जानकारी हो जाती है तो उनके जीवन का एक बहुत बड़ा और महत्वपूर्ण रहस्य उनके सामने प्रगट हो जाता है । लिपिबद्ध विचारों और भावों का कुशल ज्ञान वाचन के ही माध्यम से हो सकता है । मनुष्य के जीवन में मानसिक उत्सुकता जो स्थान रखती है उसे मिटाने के लिये वाचन का प्रयोग ही उत्तम माना गया है । स्पष्ट और उचित रीति से वाचन करने से अर्थ प्रकाशन और अर्थ ग्रहण दोनों में समान रूप से सहायता मिलती है । वास्तव में, वाचन के महत्व को प्रतिष्ठित करने के लिये इन्हीं दो उद्देश्यों की पूर्ति पर्याप्त मानी जा सकती है ।

वाचन के द्वारा व्यक्ति पुस्तकों की संचित अमूल्य निधि को प्राप्त कर सकता है । जब व्यक्ति लिपिबद्ध विचारों को सफलतापूर्वक पढ़ सकने की क्षमता प्राप्त करता है तो वह अपने विचारों में दिनोंदिन वृद्धि और विकास लाता है । विचारों की वृद्धि और विकास से उसमें व्यक्तित्व निखरने के लिये एक अनुकूल अवसर मिलता है । वाचन व्यक्तित्व की कुंजी ही है ।

(ख) वाचन का महत्व केवल व्यक्तिगत जीवन में ही सम्बद्ध नहीं है । वह व्यक्ति को बोलने की एक विशेष कला से परिचित कराता है, जिसकी जानकारी के पश्चात् हम अपने भावों को व्यक्त करने के योग्य होते हैं । किस व्यक्ति के साथ, किस अवसर पर अपने को किस प्रकार भावपूर्ण तरीके से व्यक्त करें—वास्तव में वाचन की शिक्षा का महत्व इसी बात में निहित है ।

वाचन का महत्व सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से भी स्पष्ट हो जाता है । हम जिस समाज में रहते हैं वहाँ कुछ न कुछ ऐसे अवसर बराबर आते हैं जहाँ वाचन की आवश्यकता होती है । सभा में, बैठकों में तथा अनेक प्रकार

के सैामाजिक आयोजनों मे, व्यक्ति का वाचन की आवश्यकता होती है। प्रगति तिवेदन पढ़ना, लेख पढ़ सुनाना, भाषण पढ़ना, घोपणा सुनाना, अभिनन्दन पाठ, समाचार वाचन इत्यादि अनेक कार्य करने पड़ते है। ऐसे अवसरों पर वाचन में प्रशिक्षित व्यक्ति अपने लिये विशिष्ट स्थान के अधिकारी हो जाते है।

. (ग) वाचन का महत्व केवल इसी बात में नही है कि उसके द्वारा हमारा ज्ञान विकसित होता है और हमे अनेक तथ्यो की जानकारी प्राप्त होती है (जो साक्षरता के अभाव मे असम्भव हाता) वरन् उसका महत्व इस बात में भी है कि वह हमारे लिये मनोरंजन और मानसिक विश्राम के विविध साधनों को सामने प्रस्तुत करता है। वर्ग के अन्दर या वर्ग के बाहर, घर मे या बाजार में, कार्यालय मे या दूकानों में बहुत से मनोरजनात्मक स्थल उपलब्ध हैं जिनका सफल उपयोग केवल वाचन द्वारा ही संभव होगा। अपने अवकास के समय एक साक्षर व्यक्ति वाचन का सहारा लेता है। मानसिक यातनाओं के बीच भी मनुष्य ऐसे मनोरंजनात्मक क्रियाणीलनों से अपनी याचनाएँ, बहुत दूर तक, दूर कर सकता है।

इसके अतिरिक्त वाचन का शैक्षिक कार्यक्रमों में एक महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा का यह एक प्रमुख साधन भी है। प्राथमिक पाठशालाओ में सम्पूर्ण समय का लगभग ७० प्रतिशत शिक्षकों को लिखित या मुद्रित शब्दों से बालकों को परिचित कराने में लगता है। लिखने की अपेक्षा वाचन एक सरल क्रिया भी है; यहाँ मानसिक जटिलताएँ कम से कम होती है।

जो विद्यार्थी मानसिक उत्सुकता की शान्ति के लिये, मनोरंजन के लिये या व्यावहारिक उपयोगिता के लिये वाचन का नियमित रूप से अभ्यस्त नहीं है, वह व्यर्थ ही शिक्षा के निमित्त विद्यालय भेजा जाता है। वह विद्यालय द्वारा दी गयी एक अत्यन्त ही अमूल्य कर्म कौशल उपकरण (Tool of workmanship) से वंचित हो जाता है। विज्ञान, इतिहास, राजनीति, तथा सामाजिक समस्याओं, धर्म और साहित्य की रुचि पुरानी पड़ जाती है और मानसिक विकास में अवरोध उत्पन्न हो जाता है। साथ ही भाषा सम्बन्धी योग्यताएँ लुप्त हो जाती है और मानसिक क्रियाएँ ठप्प पड़ जाती है। अतएव वाचन शिक्षा की एक महत्वपूर्ण इकाई है और उसका (शिक्षा का) वास्तविक लक्ष्य भी यही है कि व्यक्ति में वाचन सम्बन्धी रुचि निरन्तर विकसित होती रहे। इस प्रकार वाचन हमारे जीवन में महत्वपूर्ण स्थान का अधिकारी है और

उसके महत्व को प्रमाणित करने के लिये और अधिक तर्क की आवश्यकता नहीं है।

अतएव ऐसे महत्वपूर्ण क्रियाशीलन को विद्यालयों में सर्वप्रथम स्थान मिलना चाहिये। "संक्षेप में, विद्यालय के जीवन के समाप्त हो जाने के बाद आगे विकास के लिये अच्छे वाचन के अभ्यास की प्रेरणा के समान, उन्हीं संभाव्यताओं से भरपूर, या कम से कम उससे आधे मूल्य की भी कोई अन्य चीज नहीं है जो कि विद्यालय पूरी कर सकता है।"*

वाचन के प्रकार

वाचन एक विस्तृत अर्थद्योतक शब्द है। साधारण तौर पर वाचन का तात्पर्य पुस्तक पढ़ने से है। यह पढ़ना केवल लिपि को पहचानकर उच्चारण सहित बोलना नहीं है, वरन् उसका वास्तविक अर्थ यह है कि लिपि को देखकर, समझकर, अर्थ ग्रहण के साथ व्यक्ति पढ़े।

वाचन के तीन प्रकार हैं :—

(क) सस्वर पाठ (Reading aloud)

(ख) मौन पाठ (Silent reading)

(ग) अध्ययन (Study)

(क) सस्वर पाठ :—जैसा कि नाम से ही ज्ञात होता है स्वर सहित पढ़ने को सस्वर पाठ कहा जाता है। इसमें बालक लिपि को उच्चारण सहित इस प्रकार पढ़ता है कि उसके सामने का श्रोता उसे अर्थ सहित समझ सके। इसमें आँखें, मस्तिष्क और उच्चारणोपयोगी अवयव काम करते है। सस्वर वाचन की क्रिया से वाचक लेखक के विचारों, भावनाओं और सन्देशों को श्रोता तक अपने वाचन के माध्यम से पहुँचा देता है। वह एक ओर तो स्वयं अर्थ ग्रहण कर लेता है और दूसरी ओर श्रोता की ओर भाव प्रकाशन कर देता है।

सस्वर वाचन के विश्लेषण से विदित होगा कि वाचन की यह क्रिया कितनी दुरुह है और उसमे, "विद्यार्थी—अपनी ध्वनि उत्पन्न नहीं कर रहा है

---

* In short, there are few things school can do that are half as valuable or contain nearly the same potentialities for further growth, when our school days are over as the inculcation of good reading habits,"

The Teaching of Reading, E. W. Menzel, p. 18.

जैसा कि वह सामान्यत: आदत स्वरूप अपने भावों, इच्छाओं और भावनाओं को व्यक्त करता है—कुछ भिन्न कर रहा है; वह लेखक या कहानी या अभिनय के पात्रों के विचारों, इच्छाओं और भावनाओ को व्यक्त कर रहा है।''* प्रस्तुत अध्याय मे वाचन के इसी प्रकार की व्याख्या अभिष्ट है।

(ख) मौन पाठ (Silent Reading) :—मुख से बिना उच्चारण किये, चुपचाप, आँखों और मस्तिष्क की सहायता से अर्थ ग्रहण की क्रिया को मौन पाठ की संज्ञा दी जाती है। इसमें पढ़ने की गति और अर्थग्रहण शक्ति सस्वर वाचन की अपेक्षा अधिक होती है। इसके अभ्यास से बालक बिना औरों को बाधा पहुँचाये चुपचाप पढ़ सकता है। कार्यालयों, घरों, पुस्तकालयों पूजास्थलो तथा अन्य स्थलो में सस्वर वाचन सभव नही है क्योकि औरो को बाधा पहुँचती है। इसलिये मौन पाठ का सहारा लिया जाना चाहिये। इस सम्बन्ध मे एक स्वतन्त्र अध्याय मे विवेचन किया गया है अतएव हम आगे बढ़ते है।

(ग) अध्ययन (Study) :–अध्ययन का तात्पर्य किसी विषय के गम्भीर पठन से है। वास्तव में अध्ययन ही ज्ञानोपार्जन का एकमात्र साधन है। निरन्तर अभ्यास के कारण व्यक्ति में यान्त्रिक विधि से मौन होकर पढने की आदत पड़ जाती है और उसके लिये लिपि केवल विचारों और अर्थ का प्रकटीकरण करती है। अध्ययन मस्तिष्क के प्रशिक्षणोपरान्त की एक विशेष अवस्था है जहाँ वह इस योग्य हो जाता है कि भाषा भावो को दर्पण की तरह साफ-साफ सामने व्यक्त करती जाती हो। मानो लिपिवद्ध विचार अध्ययन से मुखरित होते जाते हो।

अध्ययन मे व्यक्ति यान्त्रिक विधि से चुपचाप पढ़ता है। यहाँ व्यक्ति प्रवाह और गति से पढ़ता है और लिपिवद्ध विचारों को यथाशीघ्र ग्रहण करता है। अध्ययन में व्यक्ति एक विशेष दृष्टिकोण और लक्ष्य को रखता

---

* "......in reading aloud the pupil is not using his voice as he habitually does, to express his own thoughts wishes, feelings, he is doing something different, he is expressing the thoughts, wishes, feelings of the writer or of the characters in a story or play."

Teaching the Mother Tongue in Secondary Schools, P. Gurrey, p. 60–61.

है और उसी विचारधारा से प्रेरित होकर अपने अध्ययन के विषय में भावों को ग्रहण और त्याग, विचारों का विश्लेषण और मीमांसा तथा अन्तिम निष्कर्ष निकालता है। अध्ययन में "विश्लेषण, आलोचना और निष्कर्ष" ही सोपान है।

यदि ध्यान से देखा जाय तो वाचन के ये तीन भेद, जिनका परिचयात्मक वर्णन ऊपर किया गया है—उसकी तीन अवस्थाएं हैं। सस्वर वाचन सबसे प्रारम्भिक अवस्था है जहां स्वर सहित पढ़ने और अर्थ ग्रहण करने की क्षमता लाने का अभ्यास किया जाता है। यह भाषा और लिपि सम्बन्धी ज्ञान का प्रवेश काल माना जाना चाहिये। यहां मुख्य उद्देश्य यह है कि बालक स्वर सहित, लय और स्वराघात के अनुसार पढ़े और उसका अर्थ ग्रहण करे। उसका वाचन ऐसा उच्चरित हो कि उसके पास का व्यक्ति भी सुनकर उसका वास्तविक अर्थ ठीक से समझ सके। इस प्रकार के वाचन से अभ्यास और आदत डालने से बालक दूसरी अवस्था में प्रवेश करता है जहां उसे बिना उच्चारण के ही लिपिबद्ध विचारों को ग्रहण करने की योग्यता प्रगट होता है। जीवन में मौन पठन की नितान्त आवश्यकता हर क्षण होती है। अतएव मिडिल और माध्यमिक कक्षाओ में इसका विधिवत अभ्यास करना चाहिए। यह वाचन की उन्नत अवस्था है जहाँ बालक का मस्तिष्क अर्थ ग्रहण करने की विशेष कला से परिचित और उसमें प्रशिक्षित होता है।

अध्ययन वाचन की सर्वोच्च और अन्तिम अवस्था है। मस्तिष्क की परिपक्वावस्था में ही इस प्रकार का वाचन संभव है। यह नियंत्रित और अनुशासित मस्तिष्क का सर्वोत्कृष्ट गुण है। सत्य ही, अध्ययन ही वाचन का अन्तिम लक्ष्य है तथा सस्वर वाचन और मौन पाठ तो उसके सोपान मात्र हैं। वाचन की यही पराकाष्ठा है और यही उसकी परम गति है। निस्सन्देह यदि ज्ञानोपार्जन व्यक्ति का चरम लक्ष्य है तो वाचन की यह उच्च अवस्था ही उसका एकमात्र साधन माना जाता है। प्रस्तुत अध्याय में वाचन के प्रारम्भिक भेद, सस्वर वाचन के उद्देश्यों और विभिन्न प्रणालियों का वर्णन किया गया है।

वाचन के उद्देश्य :—

मनोवैज्ञानिकों, भाषाविदों और शिक्षाशास्त्रियो ने वाचन के जिन उद्देश्यों का निरूपण किया है उनका वर्णन इस प्रकार किया जा रहा है :—

(क) वाचन से बालक मे शब्दोच्चारण की योग्यता उत्पन्न होती है। वाचन से ही उच्चारण का नियमित रूप से अभ्यास कराया जा सकता है। वाचन मे स्वर, गति, प्रवाह, लय तथा भावानुरूप भाषा का पाठ ही प्रमुख उद्देश्य है।

(ख) जब शुद्ध उच्चारण से पाठ पढ़ा जायगा तब उसके अर्थ ग्रहण मे पर्याप्त सहायता मिलता है। अतएव वाचन द्वारा शब्द के अर्थ ग्रहण का उद्देश्य स्पष्ट है।

(ग) वाचन से न केवल शब्दों या वाक्यो का सरलार्थ समझ मे आता है वरन् उससे तो लिपिबद्ध विचार का पूरा आशय और भाव भी समझ मे आना चाहिये।

(घ) वाचन से व्यक्ति मे यह अभ्यास आना चाहिये कि वह किसी पठित अशो के सभी सम्बद्ध प्रश्नो का उत्तर देने की क्षमता रखे, उसको किसी प्रकार की कठिनाई नही हो।

(च) बालक न केवल सम्बद्ध प्रश्नों का उत्तर देने की क्षमता रखे वरन् उसमे यह योग्यता आनी चाहिये कि वह स्वय उस अंश से सम्बद्ध अनेक उचित और विचार-प्रेरक (Thought-provoking) प्रश्न भी करने योग्य हो।

(छ) वाचन का यह भी एक उद्देश्य है कि बालक लिपिबद्ध विचारों को सरलता से समझ सके और उसके अन्तर्गत दिये गये आदेशो को ग्रहण करने योग्य हो, जैसे प्रयोग सम्बन्धी आदेश, खेल की प्रक्रियाओं का आदेश तथा कोई सामान बनाने सम्बन्धी आदेशो को समझना। वाचन से इस प्रकार का आदेश-ग्रहण स्पष्ट, सरल और सुबोध हो जाता है।

(ज) वाचन से बालक मे तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने की क्षमता आनी चाहिये।

(झ) वाचन से बालक मे पाठ को उचित द्रुतगति और शुद्धता के साथ पढ़ने और उसका भाव ग्रहण करने की क्षमता आनी चाहिये।

(ञ) वाचन का वास्तविक उद्देश्य यह है कि बालक को वाचन के प्रति अभिरुचि पैदा हो और पढ़ने से प्रेम रखे। उसे विभिन्न विषयों की न केवल पाठ्य पुस्तकों वरन् अन्य पुस्तकों को भी पढ़ने की रुचि हो जो उसकी आयु, योग्यता और रुचि के अनुसार लिखी गयी हों।

(ट) वाचन का उद्देश्य केवल पुस्तकों के पढ़ने तक ही सीमित नहीं है. उसकी सीमा अन्य पाठ्य सामग्री तक भी विस्तृत है। बालक में पुस्तकों के अतिरिक्त समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, विज्ञापन तथा अनेकानेक साधनों का भी उपयोग करने की क्षमता उत्पन्न होनी चाहिये।

(ठ) वाचन का प्राञ्जल उद्देश्य यह है कि बालक में लिपिबद्ध विचारों को, चाहे वे पुस्तक में हों या पत्र-पत्रिकाओं में, चाहे मुद्रित या लिखित— वर्णित चरित्र, अभिनयात्मक स्थिति एवं आनन्दवृत्ति (humour) का सम्यक् विवेचन और मूल्यांकन करने की योग्यता उत्पन्न हो।

वाचन के जिन उद्देश्यों की चर्चा की गयी है वे वास्तव में प्रारम्भिक स्तर की हैं और उनका सम्बन्ध प्रारम्भिक कक्षाओं से है। जिनकी पूर्ति सामान्यतया सस्वर वाचन से होती है। ज्यों-ज्यों बालकों की अवस्था में विकास होता है तथा माध्यमिक विद्यालय के स्तर में वाचन की उन्नत अवस्था-मौन वाचन और अध्ययन के इन उद्देश्यों के उच्चतर आदर्श माने जाने चाहिए। वास्तव में वाचन का लक्ष्य कहीं अधिक ऊँचा, भावात्मक तथा महान ही है।

(क) वाचन का वास्तविक उद्देश्य व्यक्ति के ज्ञान का विकास है।

(ख) वाचन से अध्ययन की प्रेरणा मिलती है और बालक विद्यालय का जीवन समाप्त करने के बाद भी इसमें रुचि रखता है।

(ग) वाचन से व्यक्ति अपने विचारों को औरों के विचारों से अवलोकित प्राञ्जल तथा प्रगतिशील बनाता है।

(घ) वाचन से व्यक्ति को साहित्य के प्रति अभिरुचि उत्पन्न होती है। इस प्रकार वह साहित्य के विभिन्न भागों से परिचय प्राप्त करके उनका विवेचन, उनकी समीक्षा और उनका मूल्यांकन करने की क्षमता उत्पन्न करता है।

(च) वाचन से व्यक्ति में आन्तरिक आनन्द की उपलब्धि होती है। उसे मनोविनोद, मनोरंजन के विभिन्न साधनों से परिचय प्राप्त होता है तथा इस प्रकार उसके संवेगों का विकास होता है।

(छ) वाचन का प्रमुख उद्देश्य यही नहीं है कि उसमें भावग्रहण की क्षमता उत्पन्न हो, वरन् यह भी कि उसे उत्तम तरीके के भाव-प्रकाशन के साधन का भी ज्ञान हो जाय। वाचन से व्यक्ति को एक प्रकार की आन्तरिक प्रेरणा मिलती है, जिसके आधार पर वह स्वयं अपने विचारों को उत्तम शैली और उत्तम भाषा में व्यक्त कर सके। उसे इस प्रकार लेखक होने की एक

प्ररणा भी मिलती है। भावग्रहण की तीव्रता और भाव-प्रकाशन की व्यग्रता का सकेत इसी लेखन-कला में मिलता है। अतएव वाचन का यह भी एक व्यावहारिक उद्देश्य है।

वाचन की यांत्रिकता (The mechanics of Reading):—

वाचन की शिक्षा में वाचन की यात्रिकता (mechanics of reading) पर शिक्षको को सर्वप्रथम विचार कर लेना चाहिये। इस यात्रिकता का ज्ञान-अभाव ही वाचन सम्बन्धी अनेक दोषों का मूल कारण है। इस अनभिज्ञता का फल यह होता है कि शिक्षक यह जान नही पाते कि वाचन में बालकों के लिए किन आवश्यकताओ की पूर्ति परमावश्यक है। वाचन सम्बन्धी किस-किस प्रकार के दोष उत्पन्न हो जाया करते है, फलतः दोषो के प्रति भी शिक्षक का ध्यान नही जाता है। सुवाचन के लिये कौन-कौन-सी अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न करनी चाहिये। इसकी ओर भी शिक्षक का ध्यान जाना चाहिये। वाचन मे अभ्यास का क्या स्थान और महत्व है, इसका सम्यक ज्ञान शिक्षक को यात्रिकता के समझने से ही हो सकता है। सम्पूर्ण तर्क का सारांश यह है कि शिक्षक को वाचन की यात्रिकता के स्वरूप और प्रक्रिया का ज्ञान रखना चाहिये। साथ ही, प्रशिक्षण केन्द्रों मे इसका सम्यक् विवेचन, विश्लेषण और अनुकूल अभ्यास कराया जाना चाहिये।

साधारणतया यह समझ लिया जाता कि बालक जब अक्षरों को पहचानने लगता है तो लिपिबद्ध शब्द या शब्द-समूह को आसानी से उच्चारण कर सकता है। अक्षरो को पहचानने से उन्हे मिलाकर एक साथ पढने मे उसे किसी प्रकार की कठिनाई नही होनी चाहिये। लेकिन वास्तविकता सर्वथा इसके विपरीत है। अक्षर-ज्ञान रहने पर भी बालक वाचन में सदा असफल रहेगे यदि उन्हें वाचन का उचित प्रशिक्षण और अभ्यास का अवसर नही दिया जायगा। इसके लिये शिक्षक द्वारा वाचन में शरीर के विभिन्न अवयवों के क्रियाशीलनों का अध्ययन परमावश्यक हो जाता है।

मनुष्य ने जब से लिपि का आविष्कार किया है तब से ही वाचन की प्रणाली विद्यमान है। लेकिन इसकी यात्रिकता की ओर शायद ही लोगो का ध्यान गया था। इस सम्बन्ध में विगत १०० वर्षो के अन्दर प्रयौगिक मनोविज्ञान और आधुनिक शिक्षण-सिद्धान्तों के अध्ययन से इस विषय—वाचन का भी विस्तृत अध्ययन किया गया है। "बोध-प्रक्रियाओं की प्रकृति

से सम्बद्ध गवेषणाओं की तरह इनका (वाचन सम्बन्धी गवेषणाओं) भी प्रारम्भ सामान्यतः १८७० से, प्रायोगिक मनोविज्ञान के अध्ययन के प्रारम्भ से माना जाता है।"* मनोवैज्ञानिक तथा शिक्षण-शास्त्रियों द्वारा यह अध्ययन बड़ा ही मनोरंजक, उपयोगी तथा शिक्षाप्रद है। यदि शिक्षक इसका ऐतिहासिक अध्ययन करे तो वाचन सम्बन्धी कितने ही दोष आसानी से दूर हो सकते हैं। तथा वाचन की सफलता के लिये एक अनुकूल पृष्ठभूमि प्रस्तुत मिलेगी। अतएव वाचन की यांत्रिकता का अध्ययन करना वाञ्छनीय होगा।

वाचन में शरीर के जो चार अंग कार्य करते हैं। वे इस प्रकार हैं :— आँखें, मस्तिष्क, उच्चारणोपयोगी अवयव तथा कान।

(क) आँखें :—वाचन में आँखें क्या करती हैं, यदि इसका विधिवत विश्लेषण किया जाय तो सहसा बहुतों को किसी प्रकार का कोई विश्वास न होगा। वे तभी सन्तुष्ट होंगे जब उन्हें इसका वास्तविक प्रयोग करके दिखा दिया जाय।

जब हमारी दृष्टि किसी लिपि पर पड़ती है तो आँखें उन्हें किस प्रकार देखती है यह एक मनोरंजनपूर्ण विषय है। हमारी आँखें बहुत ही चचल, सतर्क तथा सक्रिय अवयव हैं। हिन्दी साहित्य में इनका प्रचुर मात्रा में वर्णन पाया जाता है। वे इतनी सजग और सतर्क रहती है कि अपनी दृष्टि परिधि को सम्पूर्ण देख लेती है। छपी या लिखी पंक्ति को वे न केवल आगे की ओर ही देखती है वरन् वे पीछे भी देखती हैं। जहाँ तक दृष्टि जाती है वे देख लेती हैं। वे पंक्तियों के ऊपर भी देखती है और उसके नीचे भी। वे अक्षरों पर धीमी गति से नहीं वरन् काफी द्रुतगति से चलती है। लिपि को पहचान कर अविलम्ब उसकी सूचना मस्तिष्क तथा उसके द्वारा वाचन सम्बन्धी अन्य अवयवों को देती है। मनोवैज्ञानिकों ने यह बताया है कि पहचानने में बहुतों की आँखें एक सेकण्ड का दसवां भाग लेती हैं।

पहचानने (Recognition) में जरा भी अवरोध हुआ तो आँखें वहाँ कष्ट में पड़ जाती हैं और उन्हें वहाँ अपनी इच्छा के विरुद्ध ठहर जाना पड़ता है। यह ठहराव विरामस्थल (Fixation-point) कहा जाता है। एक विरामस्थल से दूसरे विराम-स्थल के बीच की लम्बाई जितनी ही अधिक

* "The origin of these investigations, like those concerned with the nature of the perceptual process, dates largely from the rise of the science of experimental psychology in 1870"—
—Silent Reading—G. A. O. Brien, p. 5.

हों, बोध में जितना हा कम समय लगे—यह एक सफल वाचन की पहचान है। "एक विराम-स्थल से दूसरे विराम-स्थल के बीच आँखे इस विद्युत-की-सी गति से चलती है कि……जहाँ तक स्वच्छ बोध का सम्बन्ध है, आँखें व्यवहार रूप में इन गतियो मे अन्धी हो जाती है।"* तब आँखे देखती कैसे है !

जब आँखें गतिमानावस्था में तीव्रता के कारण एक विराम से दूसरे विराम तक तथा एक पंक्ति के समाप्त होते ही दूसरी पंक्ति के प्रारम्भ स्थल पर पहुँचने में स्पष्टतया देख नहीं पाती तब यह स्पष्ट होता है कि, विराम (pause) मे ही जो भी समय मिलता है, आँखें वास्तव मे उनमें ही देखने का कार्य द्रुतगति से कर लेती है।

वाचन मे आँखो की क्रिया के सम्बन्ध मे यह ध्यान रखना चाहिये कि—

(क) प्रत्येक पंक्ति मे आँखों का विराम होता है; ऐसे स्थल को विराम-स्थल (Fixation point) कहते है।

(ख) इन स्थलों पर विराम को कुछ समय भी लगता है जो बहुत ही अल्प होता है। इसे विरामावधि कहते है।

(ग) नेत्रगति की लम्बाई भी होती है जिसे दृष्टि-परिधि (eye-span) कहते है।

(घ) नेत्रगति और विराम मे निश्चितरूप से कुछ पारस्परिक सम्बन्ध पाया जाता है।

आँखों की इस प्रक्रिया-वर्णन से स्पष्ट हो गया होगा कि वे वाचन में कितना महत्वपूर्ण कार्य करती है। आँखों की इन गतियों का पर्यवेक्षण करने के लिये वैज्ञानिको ने tachistocope नामक यन्त्र का आविष्कार किया है जिनमे परदे पर आँखों की सभी हरकतो (क्रियाओ) का चित्र प्रतिबिम्बित हो जाता है।

इस प्रकार, वाचन की सफलता बहुत कुछ ही नही मुख्य रूप से आँखों पर ही निर्भर है। दोषपूर्ण आँखें ठीक तरह से देख नही सकती। वे, इस

---

* "With such lightning like veloctiy do the eyes move from fixation point to fixation point......so that as far as purposes of clear perception are concerned the eyes are practically blind during these movements."

—Silent Reading, O' Brien p. 9.

प्रकार, वाचन में गति और सफलता नहीं आ सकती। नेत्रों के लिये पर्याप्त प्रकाश की आवश्यकता है जिससे वे ठीक से लिपि को देख सकें। दायी ओर की अपेक्षा बायी ओर से प्रकाश आना चाहिये। अतएव शिक्षकों का ध्यान बालक के नेत्रो और यदि उनमे कुछ दोष हो तो उनकी ओर जाना परमावश्यक है। तेज गति से पढ़नेवाले छात्रों की अपेक्षा धीमी गति से पढ़नेवाले छात्रो के नेत्र सम्बन्धी विकारो की जाच पड़ताल और चिकित्सा होनी चाहिये।

(ख) **मस्तिष्क** :—वाचन में आखें केवल शब्दो को पहचान ही नही लेती है वे उनके प्रतिबिम्ब भी चित्रित करके मस्तिष्क की ओर भेज देती हैं। मस्तिष्क को इसका ज्ञान रहता है और वह अविलम्ब अर्थग्रहण कर लेता है। अर्थग्रहण के पश्चात मस्तिष्क शरीर के उच्चारणोपयोगी अवयवो को उनके वाचन के लिये उत्प्रेरित करता है। जो क्रियाये बाह्यान्तर में आंखें करती हैं, उन्ही को हमारा मस्तिष्क आभ्यन्तर में करता है। आँखे शब्दों को देखती जाती है और मस्तिष्क उनका अर्थ-ग्रहण करता है। उसे एक प्रकार से आँखो के पीछे दौडना पड़ता है। अर्थग्रहण में किसी प्रकार की बाधा पड़ने से मानो गतिमान यन्त्र में एक प्रकार की रोक लग जाती है। जिस शब्द का अर्थ सुलभ होता है मस्तिष्क उसे ग्रहण करता है। जहा शब्द कठिन होते है मस्तिष्क को असमर्थ होकर खडा हो जाना पड़ता है।

वाचन की यह क्रिया—आँखों द्वारा पहचान (recognition) और मस्तिष्क द्वारा अर्थग्रहण (comprehension)—दो बातों से प्रभावित होती है। (१) यदि शब्दों को आँखों ने या मस्तिष्क ने पहले भी कभी देखा हो, वे उसके अभ्यास में आये हों तो वे आँखों की पहचान में तुरत आ जाते है। जिस प्रकार, जिन लोगों को हम निरन्तर अपने समीप देखते हैं उनसे हम परिचित होते हैं, उसी प्रकार एक शब्द भी जिसे हम देख चुके हैं, परिचित सा मालूम पड़ता है। इसके विपरीत यदि वे नये शब्द हों तो अर्थ-ग्रहण में मस्तिष्क को कुछ विलम्ब होता हैं। इसके लिये हमें शब्दकोष देखना पडता है। (२) यदि शब्द अर्थपूर्ण हो तो मस्तिष्क कम समय में ही उसे स्वीकार कर सकता है। (अर्थ समझे या नही)। लेकिन यदि अनाप शनाप अर्थहीन शब्द आये हों तो वे न तो आँखों को ही और न मस्तिष्क को ही भायेंगे। जब आँखें प्रशिक्षित न होंगी या मस्तिष्क में शब्दभांडार नहीं होगा तो ऐसी अवस्था में अर्थग्रहण सहज रीति से नहीं किया जा सकता।

• शिक्षकों को यह ध्यान रखना चाहिये कि वाचन में शब्दों का चुनाव ठीक तरह से हो और मस्तिष्क में शब्दावली भी बढाई जायी इसके लिये दैनिक व्यवहार के शब्दसमूह का चयन और संकलन वांछनीय होगा। पाठ्य पुस्तकों के लेखन में इस बात पर विचार करना आवश्यक है।

(ग) **उच्चारणोपयोगी अवयव** :—उच्चारणोपयोगी अवयवो को सस्वर पाठ में कार्य करना पड़ता है। मौन पाठ में इन्हें कोई कार्य नही करना पडता।

जब मस्तिष्क अर्थग्रहण कर लेता है तो उसकी प्रेरणा से हमारे शरीर के उच्चारणोपयोगी अवयव उनका वाचन प्रारम्भ करते है। वाचन में उच्चारण सम्बन्धी, शर्तो, आवश्यकताओं, अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियो का वर्णन पिछले अध्याय में किया जा चुका है लेकिन प्रसंगानुसार यहाँ भी कुछ कहना आवश्यक है। उच्चारण मे अवयवों को ऐसा प्रशिक्षण चाहिये कि वर्णो का कोई दोष न हो, उनमें लय हो, स्वराघात हो, स्वर संयम हो याने ऐसा प्रवाह हो मानो पाठक के माध्यम से लेखक ही बोल रहा है। वास्तव में आत्मवाचन की यही विशेषता भी है जिस प्रकार ग्रामोफोन का तवा गाना या भाषण का वही मूलरूप हमारे सामने प्रस्तुत करता है, उसी प्रकार वाचन का भी यही उद्देश्य है कि लेखक के मूलभावों को प्रत्यक्ष रूप से हमारे सामने वाचक प्रस्तुत कर सके।

(घ) **कान** :—वाचन की क्रिया तो सामान्यत: उच्चरित पाठ के साथ समाप्त हो जाती है फिर भी इसमे कानों का भी एक विशेष महत्व हैं। उनके माध्यम से बालक अपने पढ़े हुए विषय को सुनता है और किसी प्रकार की अशुद्धि होने पर इसकी सूचना मस्तिप्क को देता है। तदुपरान्त उसका शुद्धिकरण भी कर लिया जाता है। स्थानाभाव के कारण यांत्रिकता का प्रकरण अधिक लम्बा न करके हम अन्य विषय पर आते है।

सुवाचन के लिये शिक्षको को वाचन की यात्रिकता का अध्ययन स्पष्ट रूप से सहायक प्रमाणित होगा। एक सफल और असफल वाचक के सम्बन्ध में जुड (Judd) महोदय द्वारा यह वर्णन उद्धृत करके हम इस प्रकरण को यही समाप्त करते है।

---

* "For the poor reader the more mechnical processes are obstacles and he loses time in trying to perform the preliminary acts which are necessary before he can comprehend the passage. In the case of the good reader, on the other hand, the mechanics of the process are very fluent and rapid. The proficient reader has mastered the words and moves on, without hesitation. to the meaning" (quoted from Silent Reading, O' Brien, p 20).

अर्थात्, एक मन्दगति के वाचक के लिये केवल यांत्रिक प्रक्रियाएं ही व्यवधान का कार्य करती हैं और वह उन्हीं प्रारम्भिक कार्यों को करने में अपना समय बर्बाद करता है जो वाक्यांश के अर्थग्रहण के पहले आवश्यक हैं। इसके विपरीत, एक कुशल वाचक के लिये प्रक्रियाओं की यांत्रिकता प्रवाहपूर्ण और गत्यमान है। एक निपुण वाचक ने शब्दों पर पूर्णतः अधिकार प्राप्त कर लिया है तथा वह बिना हिचक के ही शब्दार्थ के लिये आगे बढ़ जाता है।"

वाचन सम्बन्धी दोष :—

शारीरिक, मानसिक और सामाजिक आदि कारणों से वाचन सम्बन्धी दोष उत्पन्न हो जाया करते हैं जिनकी ओर शिक्षकों का ध्यान जाना चाहिये। इन दोषों की जानकारी रखने से शिक्षक को अपने कार्य सम्पादन में अनेक कठिनाइयों के दूर करने में सहायता मिलेगी तथा वे वाचन सम्बन्धी सुधार और विकास लाने में समर्थ हो सकते हैं।

(क) शारीरिक प्रभावः—वाचन सम्बन्धी शरीर के क्रियाशील अवयवों में किसी प्रकार का विकार होने से वाचन के दोष उत्पन्न हो सकते हैं। जैसे दुर्बल दृष्टि से अक्षरों के पहचानने और वाचन में कठिनाई हो सकती है। उच्चारणोपयोगी अवयवों में भी विकार रहने से वाचन ठीक तरह से नहीं हो सकता है। दुर्बल फेफड़े तथा अन्य स्नायुओं की दुर्बलता से भी वाचन दोष हुआ करता है। जिह्वा का अनुचित उपयोग, उच्चारणस्थलों के प्रशिक्षण का अभाव भी शारीरिक प्रभाव के अन्तर्गत आते हैं।

(ख) मानसिक प्रभावः—यदि बालक के मानसिक विकास के अनुकूल वाचन नहीं कराया गया तो वाचन दोष पैदा होता है। जब बालक के मानसिक आयु और वाचन का खण्ड आपस में किसी प्रकार का तालमेल नहीं रखते तो ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है। कम विकसित बच्चों के लिये ऊँचे दर्जे की किताबें, वाचन के ऐसे पाठ जिनमें परिचित शब्दावली नहीं है तथा टाइपों के दोष जैसे छोटे अक्षर या बहुत बड़े अक्षरों के प्रयोग से भी वाचन दोष होता है।

बालक की मानसिक स्थिति में असंतुलन आने से भी वाचन दोष होने की आशंका सदा बनी रहती है। यदि बालक क्रोध में, निराशा में, लज्जा आदि के प्रभाव में है तो वाचन में गति और द्रुतता नहीं आ सकती है। संवेगों और ऐसे अन्य प्रभावकारी कारणों से भी वाचन का दोष संभव है। यदि बालक में शब्द भंडार की कमी है तो वाचन सफल नहीं होगा।

(ग) सामाजिक प्रभाव:—यदि बालक का समाज शिक्षित समुदाय के बीच नहीं है तो सुवाचन की शिक्षा स्थायी तौर से नही टिकती। हिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी भाषा का विशेष स्थान रहने से इस प्रकार की कठिनाई भले ही उपस्थित न हो लेकिन सामान्यतः यह बात सही है। इसके विपरीत यदि बालक का समाज शिक्षितो के बीच है तो वाचन में इच्छित सुधार लाया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त शब्द-अन्धापन (Word blindness) से भी वाचन दोष होता है। यह शब्दों के पहचान के उचित अभ्यास के अभाव में होता है जब बालक किसी किसी शब्द या अक्षर को छोड़कर पढ़ता है।

वाचन सम्बन्धी यह भी एक दोष पाया जाता है कि बालक आगे के शब्द-समूहों को ग्रहण करके वाचन करता है, साथ ही वह पीछे के शब्दों को भी पुनः देखता जाता है। इससे वाचन की गति धीमी पड़ती है जो वाचन का एक दोष माना जाना चाहिये। यह दोष मूलतः दो बातों से होता है। (क) आँखें पर्यवेक्षण मे पटु नही होती; प्रशिक्षण और अभ्यास के अभाव में वे शब्दों को गति के साथ ग्रहण नही कर सकतीं। फलतः बालक धीमी गति से आगे-पीछे करके पढता है। (ख) बालक मे आत्मविश्वास (Self Confidence) का अभाव भी सम्भव है। इसके कारण वह निश्चित नही हो पाता कि जो कुछ उसने पढा है वह सही है या नही। इस कारण वह पीछे भी देखता है। इस क्रिया को प्रत्यागमन (Regression) कहते है। प्रत्यागमन गति में बाधक का काम करता है।

अतएव वाचन में शिक्षक को दो बातों पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिये। प्रथम तो यह कि आँखों को इस प्रकार प्रशिक्षित किया जाय कि वे एक ही छलाँग (Jump) में अधिक से अधिक शब्दो को ग्रहण करने के अभ्यस्त हो जायें। यह केवल अभ्यास से सम्भव है। दूसरा यह कि प्रत्यागति की लत जल्द से जल्द दूर हो जाय। साथ ही शिक्षक को यह भी देखना चाहिये कि बालक घबराहट के कारण वाचन सम्बन्धी दोषों का शिकार न हो।

वाचन सम्बन्धी विशेषताएँ :—

इस अध्याय में वाचन सम्बन्धी जो भी विवेचन प्रस्तुत किया गया है उससे भलीभाँति विदित हो गया होगा कि आखिर सुवाचन के लिए शिक्षक और छात्र को क्या करना चाहिये। यदि शिक्षक और छात्रों का सम्मिलित

प्रयास रहा तो वाचन स्वभावत: अनेक विशेषताओं से विभूषित हो जा सकता है। इनमे कुछ ये है :—

(क) वाचन की पहली विशेषता यह है कि शब्दों का उच्चारण शुद्ध और प्रभावशाली हो। लय, गति, स्वराघात तथा अक्षर व्यक्ति नियमानुसार हो। जो भी पढ़े उसका वास्तविक अर्थ श्रोता द्वारा ग्रहण किया जा सके।

(ख) वाचन की दूसरी विशेषता यह है कि वाचन में निर्धारित गति हो। निर्धारित गति का अर्थ यह है कि शब्दों के पढ़ने में न तो इतनी तेजी हो कि उन्हें ग्रहण करने मे कठिनाई हो और न तो इतनी सुस्ती या धीमी गति हो कि वे सुनाई न पड़ें। गति मे असन्तुलन आने से ग्रहण की कठिनाई होती है। शब्द-समूह बालक के ग्रहण योग्य होने के कारण गति मे सहयोग देते है। साथ ही, निर्बाध गति से बालक पढ़ सके। अर्थात् उसकी गति में किसी प्रकार की बाधा न हो। इस प्रसग में बाधा का अर्थ इतना ही मानना चाहिये कि आखों के लिए ऐसे नये शब्द अधिक संख्या मे न हों जिसका प्रभाव उसके वाचन पर पड़े। "यह पाया गया है कि ३० शब्दों में एक नया शब्द आ जाने से बिना शब्द- कोश के भी बालक निर्बाध रूप से पढ़ता जा सकता है।"*

(ग) वाचन की यह भी एक आवश्यक विशेषता है कि वाचन में उचित स्वर प्रक्षेपण (Voice projection) हो। इसका अर्थ यह है कि स्वरों का आघात, अक्षर व्यक्ति आदि इस प्रकार हो कि वाचन सभी को सुग्राह्य हो साथ ही सुनने मे एक प्रकार के उचित क्रम का समावेश हो।

(घ) वाचन की अन्तिम, लेकिन सबसे उत्तम विशेषता यह है कि वाचन मे स्पष्टता (Expressiveness) हो। स्पष्टता का तात्पर्य यह है कि बालक को पाठ का वास्तविक उद्देश्य और अर्थ का ज्ञान हो तथा उसके अनुकूल ही स्वर प्रशिक्षित हो। बालक अपने पाठ का उसी भाव से वाचन करता हो जिस भावना को लेखक व्यक्त कर रहा हो। यदि वाचन मे स्पष्टता सम्बन्धी विशेषता आ जाती है तो लेखक का वास्तविक उद्देश्य स्पष्टतया पूरा हो जाता है। यदि वाचन में यह विशेषता नही आती है तो इसका अर्थ

* "It has been found that one new word in 30 running words permits smooh unhindered reading which can be well understood without resort to a dictionary."

—The Teaching of Reading, E. W. Menzel p. 32

यह मानना चाहिये कि बालक केवल यन्त्र की तरह अपना पाठ पढ़ रहा है जिसके अर्थ और भाव का उसे कोई ज्ञान नही है।

वाचन की वास्तविक विशेषता इस बात में है कि वह मस्तिष्क को मनन और विचार की शक्ति से विभूषित करता है। जान लॉक (Locke) ने कहा था कि वाचन से हमारे मस्तिष्क का ज्ञान विस्तृत होता है और हम जो कुछ भी पढते है उनमे विचार शक्ति ही उन्हें अपना बना लेता है।

(Reading furnishes the mind only with materials of knowledge, it is thinking makes what we read ours).

यदि वाचन मे विचार शक्ति से काम नही लिया गया तो वह केवल मात्र यान्त्रिक पाठ कहा जायगा।

वाचन के साधन—जब वाचन सम्पूर्ण शिक्षा का महत्वपूर्ण साधन और साध्य भी है, प्रारम्भिक इकाई और अन्तिम लक्ष्य भी है, तो निस्सन्देह हमारे विद्यालय और उनके कार्यकर्त्ताओं को हर संभव साधन का उपयोग करना चाहिये जिनसे बालकों मे वाचन सम्बन्धी रुचि निरंतर विद्यमान रहे। तथा विद्यालय का जीवन समाप्त करने के बाद भी वे इस विशेष अस्त्र से अपना ज्ञानभांडार बढ़ायें, आत्म-तुष्टि करे तथा अपना मनोरंजन भी कर सके।

इन्ही साधनो का हम क्रमानुसार वर्णन नीचे कर रहे हैं।

पुस्तक पढ़ने के पहले उन सभी साधनों का उपयोग वांछनीय होगा जो बालक की रूचि और उत्सुकता को पुस्तक की ओर उत्प्रेरित कर सके। यथा-

(क) गत्ते के छोटे-छोटे टुकड़ो पर अक्षर लिखे रहें और बालको द्वारा उन्हें पढ़वाया जाय।

(ख) फ्लैश कार्ड पर लिखे अक्षर या शब्द को अल्पावधि मे दिखाकर पढ़वाने का अभ्यास कराया जाय। इससे शब्द-ग्रहण (Word recognition) की कला का अभ्यास होता है।

(ग) अक्षरों या शब्दों के खेलने योग्य ताश बनवाये जायें और बालकों को खेलने के लिये प्रोत्साहन दिया जाय। शिक्षक एक कार्ड को निकाल कर सभी लड़कों को उसी तरह का कार्ड निकालने के लिये कहें और उनसे पढ़वाये।

(घ) विद्यालय में, वर्ग में, कृषि या बागवानी के छोटे-छोटे टुकड़ों (Plots) पर नाम-पट्ट (Plates) लगाये हों और वे लड़कों द्वारा पढ़वाये जायें।

(च) किंडर गार्टेन-बक्स विद्यालय में रखे जाये जिनमें काठ के टुकड़ों पर अक्षर या अक्षर या शब्द लिखे हों। उन अक्षरों के मेल से शब्द या शब्दों के मेल से शब्द-समूह बनवाये और पढ़वाये जायें।

(छ) खेल के मॉडल (Play models) रखे जायें जिनके मेल से अक्षर बनाये जाते हों। अक्षर या शब्द बनवा कर पढ़वाये जायें।

(ज) श्यामपट पर शिक्षक स्वयं या विद्यार्थी द्वारा अक्षर या शब्द लिखें या लिखवायें और उन्हें बालकों द्वारा पढ़वायें।

(झ) दीवाल पर, वर्ग में या वर्ग के बाहर शब्द या शब्द समूह के चार्टस् टँगे हों और शिक्षक उन्हें बालकों द्वारा पढ़वाये।

(ट) दीवालों पर छोटे-छोटे उपदेश वाक्य, (Mottoes), आदेश वाक्य (Commands) तथा अन्य स्मरणीय वाक्य कार्ड पर लिखकर टाँगे जाये और बालकों द्वारा पढ़वाये जायें।

(ठ) दीवाल पर चित्र (Pictures) और उनके नाम टँगे हों और बालक उन्हें पढ़ने का अभ्यास करें। जैसे,

राष्ट्रपिता—महात्मा गान्धी।

राष्ट्रपति—डा० राजेन्द्र प्रसाद।

प्रधानमंत्री—जवाहरलाल नेहरू।

रामचन्द्र, श्रीकृष्ण, बुद्ध, महावीर आदि के चित्र।

जब बालक पुस्तकों को क्रमबद्ध पढ़ना सीख लें, तो शिक्षक को उन अनेक पाठ्य-सामग्रियों का उपयोग करना चाहिये जिनसे बालकों में पढ़ने के प्रति रुचि में निरंतर वृद्धि होती रहे। जैसे,

(क) पाठ्य-सामग्री बालक के प्राकृतिक, सामाजिक प्रतिवेश के हों, और उनका सम्बन्ध उसके जीवन के क्रियाकलापों से हो। वर्ग और वगतर की क्रियाओं को प्रमुख स्थान मिलना चाहिये।

(ख) पाठ्य-सामग्री में विद्यालय की सूचनाओं, आदेश वाक्यों तथा उपदेशवाक्यों को भी शामिल मानना चाहिये, जो विद्यालय में जगह-जगह पर लिख कर टाँगे जाते हैं।

(ग) विद्यालय द्वारा तैयार की गयी पत्रिका या बालोपयोगी पत्रिकायें भी पढ़वाई जायें जो समय समय से निकलती हैं या विद्यालय में आती हैं।

(घ) छोटी-छोटी कहानियों तथा सुन्दर पाठों की सचित्र और रंगीन पुस्तकों के पढ़वाने का अभ्यास कराया जाय ।

(च) छोटे-छोटे प्राइमर बनवाये जायें जो बालकों द्वारा पढे जा सकें ।

(छ) इन प्राइमरो में बालक के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली सामान्य अनुभूतियों, क्रियाशीलनों-खेलकूद, उद्योग कार्य, बागवानी कार्य, कर्मसंगीत, कविता गीत आदि को स्थान मिलना चाहिये ।

(ज) छोटी-छोटी पुस्तकें—जो ऊँचे दर्जे के विद्यार्थियों द्वारा तैयार करायी जाती है—भी काम में लायी जा सकती है ।

(झ) छपी हुयी बालोपयोगी पत्रिकाएँ, जो विद्यालय मे आती हों, भी पढ़वाने का अभ्यास कराया जाना चाहिए ।

(ञ) पुस्तकालय में भी बालोपयोगी पुस्तकें रक्खी जानी चाहिये । प्रत्येक विद्यालय में बाल पुस्तकालय की व्यवस्था होनी चाहिये जहाँ बालकों की रूचि, योग्यता और आयु के अनुसार लिखी पुस्तकें रखी जायें । इस दिशा में भारतवर्ष मे पुस्तकों का सर्वथा अभाव है । विदेशी भाषाओं में इस तरह की पुस्तकें प्रचुर मात्रा में मिलती हैं जो अनुकरणीय है । बाल सुलभ साहित्यमाला के अन्तर्गत ऐसी पुस्तकें लिखवाई जानी चाहिये, जिसकी ओर शासन, शिक्षा विभाग, प्रकाशक और व्यावसायिक लेखकों का ध्यान अपेक्षित है।

(त) जब बालक पाठ्य-पुस्तक पढ़ना सीख लें तो पुस्तक के अनुच्छेदों का शिक्षकों द्वारा आदर्श पाठ (Model Reading) दिया जाना चाहिए । इस प्रकार आदर्श सस्वर वाचन से बालको में भी सस्वर वाचन का नियमित अभ्यास उत्पन्न होता है ।

(थ) समाचार पत्र के आवश्यक अंशों का बालकों द्वारा पढ़वा कर सुनवाने का अभ्यास भी कराना चाहिए ।

ऊपर जिन साधनों का उपयोग वर्णन किया गया है, उनका क्षेत्र संभवतः प्रारम्भिक कक्षाओ के तीसरे या चौथे वर्ग तक है इसलिये ऊपर के वर्गो—विशेषतः चौथी श्रेणी से ऊपर—में सस्वर वाचन के निम्नांकित अवसरों का उपयोग शिक्षकों द्वारा सफलता से किया जा सकता है ।

(१) विद्यालय संसद (School Parliament) में सम्बद्ध मंत्रियों द्वारा अपने विभागों की योजना पढ़कर सुनाना तथा प्रगति का प्रतिवेदन भी

पढकर सुनाने का अवसर। जैसे—वर्ग मत्री, कताई मंत्री, सांस्कृतिक मंत्री, बागवानी मंत्री, मफाई मंत्री, भोजनमत्री, तथा प्रधानमंत्री का प्रतिवेदन।

(२) विद्यालय की सास्कृतिक सभाओ मे छात्रो द्वारा लेख, निबन्ध, कविता, कहानी, आदि का सस्वर वाचन तथा अभिनय या अन्य अवसरों पर क्रियाशीलनो मे भाग लेने से सस्वर वाचन सम्बन्धी अवसरो का उपयोग।

(३) वर्ग मे या विद्यालय की आम सभा मे बालको द्वारा समाचार पत्रों का बारी-बारी से वाचन।

(४) बालको द्वारा अपनी दैनिक चर्याओं को पढ़कर सुनाना।

(५) विद्यालय में ऊपर की कक्षाओं में विशेषतः माध्यमिक कक्षाओं में साहित्यिक गोष्टियों, विवाद सभाओं और अध्ययन वृत्तों का आयोजन किया जाना चाहिए। साहित्यिक गोष्टियों में लड़के अपनी रचनायें—कहानी, निबन्ध, लेख कविता आदि—पढ़कर सुनायेंगे। विवाद सभाओं में विवाद के विषय के पक्ष या विपक्ष की दलीलें लिखकर लायें गे और यथासमय उन्हें पढ़कर सुना भी सकते हैं। अध्ययन मंडलियों में लड़के विचारविमर्श के बाद जो प्रतिवेदन तैयारकरेंगे उसे वे वर्ग में या आम सभा में पढ़ कर सुना सकते हैं।

(६) समाज-सेवा के अन्तर्गत सभी बालक निकटवर्ती ग्राम या जनसमुदाय में काम करने जाते हैं। ऐसे केन्द्रों में लड़कों द्वारा सरकार के विभिन्न विकास वाले विभागों की सूचनाये पढ़कर सुनायी जा सकती हैं। जैसे,

(i) खेती सम्बन्धी सूचना—उत्तम खेती के लिये खाद बनाने कीविधि—

(ii) शिक्षा सम्बन्धी सूचना—सभी लड़कों को विद्यालय भेजने की सूचना और शिक्षा के प्रसार के लिए अन्य सूचनायें।

(iii) उद्योग सम्बन्धी सूचना—स्थानीय उद्योगों के विकास के लिये आदेश और सामान बनाने की विधि का ज्ञान—जैसे टोकड़ी बनाना, रस्सी बनाना आदि।

इस प्रकार सामाजिक केद्रों में बालकों को अपने से बड़ी आयुवाले लोगों के बीच सस्वर वाचन का अवसर मिलता है। इस प्रकार के वाचन से सभी तरह की हिचक दूर हो जाती है और वाचन के उद्देश्य पूरे होते हैं।

ऊपर जिन साधनों का वर्णन किया गया है वे अन्तिम नहीं है। वे तो सुझाव स्वरूप दिये गये हैं। शिक्षकों के कार्य सम्पादन में अनेक ऐसे अवसर मिलेंगे जहाँ सस्वर वाचन की आवश्यकता होगी। एक कुशल शिक्षक अपने अनुभव और व्यावसायिक निपुणता के द्वारा सभी उपलब्ध साधनों और अवसरो का उपयोग करता है जहाँ बालक—एकत्रित जनसमूह चाहे वह वर्गगत हो या वर्ग के बाहर का, विद्यालय या निकट के ग्राम समुदाय का हो—को सस्वर वाचन का अवसर मिलता हो क्योंकि सस्वर वाचन ही भाषा शिक्षा की नीव है।

अध्याय ९

भाषा की प्रथम इकाई की शिक्षा

(अक्षर या शब्द बोध)

पिछले अध्याय में वाचन की शिक्षा सम्बन्धी जिन साधनों का उल्लेख किया गया है उनका प्रयोग उसी हालत मे वाछनीय कहा जायगा जब बालको को भाषा के मूलाधार अक्षरो, शब्दो और वाक्यों का ज्ञान हो जाय। अक्षरों, शब्दों और वाक्यों के ज्ञान का भी एक क्रम होता है, और उसी तरह वाचन का भी एक क्रम पूर्व निश्चित है।

बिना अक्षर ज्ञान के बालक पुस्तक पढ नही सकता। अतएव वाचन की पहली अवस्था वह है जहाँ शिक्षक को बालक में पुस्तकों से प्रेम जागृत करना चाहिये। इस प्रकार का प्रेम, उत्सुकता आदि के जागृत होने से वे पुस्तकों का पढ़ना एक आवश्यक, उपयोगी कला मानेगे और उनकी यही तत्परता शिक्षक की कार्य-सिद्धि का एक बहुत ही अनुकूल वातावरण प्रस्तुत करेगी। तत्पश्चात् बालक पुस्तक पढना सीखेंगे। पुस्तक से परिचय हो जानेपर वे उसे किसी अवस्था मे सस्वर पढेंगे, किसी अवस्था मे मौनपाठ करेंगे और तब वाचन की अन्तिम अवस्था होगी जब वे किसी भी लिपिबद्ध विचार को किसी विशेष उद्देश्य से, चाहे तो, अध्ययन भी करना चाहेंगे।

अक्षर या भाषा के अवयवों का ज्ञान इस प्रकार अत्यन्त ही महत्वपूर्ण काम करता है। यह उसी तत्परता के समय सिखाया जा सकता है जिसका संकेत ऊपर किया गया है। वास्तव मे यही तत्परता (Readiness) बालक का सम्बन्ध भाषा से कराती हैं जो वाचन की द्वितीयावस्था कही जाती है। जहाँ प्रथमावस्था का संध्याकाल और द्वितीयावस्था का प्रारम्भकाल है उसके बीच की कड़ी यह अक्षर ज्ञान है।

सभी भाषाओं और शिक्षा प्रणालियों में इस अवस्था का बड़ा ही विशद विवेचन किया गया है। यहाँ हम कुछेक प्रणालियों का वर्णन करते हैं जो विश्व में मुख्यरूप से प्रचलित हैं।

(क) **वर्ण विधि** (Alphabetic Method) :—वर्ण विधि के अनुसार सर्वप्रथम बालक को अक्षरों का ज्ञान कराया जाता है। पहले स्वर सिखाये जाते है, जैसे अ, आ, इ, ई आदि। उसके बाद व्यञ्जनों का क्रम आता है, जैसे क वर्ग, च वर्ग आदि। फिर मात्राओं का ज्ञान दिया जाता है, जैसे ा, ि, ी आदि। इसके बाद अक्षरों के मेल से बने संयुक्त अक्षर सिखाये जाते है। अन्त मे शब्दो और वाक्यो की जानकारी करायी जाती है। इस पद्धति से बालक प्रारम्भ से ही वर्णों को अनुकरण, आवृत्ति और अभ्यास के द्वारा सीखता है। इस विधि में अक्षरों की ही भाषा की प्रथम इकाई माना गया है अतएव स्वभावतः अक्षरो को प्रथम स्थान दिया गया है। इसे स्वर विधि (Phonic method) भी कहा जाता है।

अक्षर-बोध की यह प्रणाली मानव की आदि प्रणाली है। भारत, यूनान, रोम तथा विश्व की सभी जातियो मे यह प्रणाली पुरातन काल से ही आ रही है। सिद्धान्त यह है कि जब तक बालक प्रत्येक अक्षर का ज्ञान नहीं प्राप्त कर लेता, उसका ठीक उच्चारण नही सीख लेता, तब तक वह उन्ही अक्षरों से निर्मित शब्दों या वाक्यो का ज्ञान कैसे प्राप्त कर सकेगा। "वर्णमाला की यह विधि उन्नीसवी सदी के अन्तिम चरण तक विश्व के सभी विद्यालयो में सार्वभौम रूप से विद्यमान रही।" इस विधि से बालक में प्रारम्भ से ही शुद्ध उच्चारण का अभ्यास पड़ जाता है। अक्षरो और मात्राओं के ज्ञान से शब्दों के पहचानने (Recognition) की प्रक्रिया में किसी प्रकार की कठिनाई नही होती। नये शब्दो के ग्रहण और उच्चारण में भी पर्याप्त सहायता मिलती है। इस प्रकार वाचन भी सरल और स्पष्ट हो जाता है।

लेकिन ज़ब से प्रोयौगिक मनोविज्ञान का विकास हुआ है इस प्रणाली के अनेक दोषों और विवशताओं का विवेचन किया जा रहा है। इस विवे न क्रम के आधार पर इस विधि को त्यागने की परम्परा-सी प्रारम्भ हो गयी है। नये-नये शोधो के अनुसार यह ज्ञात हो चुका है कि बालक या कोई भी, अक्षरों में अपने भाव नहीं सोचता है, और न उसे व्यक्त ही करता है। नैसर्गिक रूप से उसके हृदय मे भाव-उत्पन्न होते हैं और उन्हें वह शब्दो के ही माध्यम से व्यक्त करता है। माँ के लिये 'मामा' का प्रयोग, पानी के लिये 'मम्मा' का प्रयोग, भात के लिये 'भत्ता', मारना के लिये 'माम्मा' का प्रयोग यह प्रामाणित करता है कि भाव व्यक्त करने का एकमात्र माध्यम शब्द है, न कि अक्षर। बालक के लिये अक्षर अर्थहीन और व्यर्थ हैं। उसकी उत्सुकता किसी प्रकार इस विधि से नहीं मिटती। रुचि

के अभाव में मानसिक शिथिलता भी आ जाती है। अक्षर—शब्द—वाक्य के क्रम मे पुस्तको के पढने मे काफी समय भी लगता है। इस प्रकार मनोवैज्ञानिक अध्ययन स्पष्ट रूप से वर्णविधि की अनुपयुक्तता प्रमाणित करता है। अतएव वर्णबोध की प्रणाली मे सुधार लाकर अक्षरों के स्थान पर शब्दों द्वारा ही ज्ञान दिया जाना चाहिये। मनोवैज्ञानिकों ने इस सुधार में कई प्रणालियों को उपयोगी बताया है जो आगे विवेचन का विषय है।

लेकिन इतना मानने पर भी यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि अक्षरों को अलग-अलग रूप में बताना नितान्त आवश्यक है। भले ही हम अक्षरों से भाषा शिक्षण प्रारम्भ न करें, लेकिन हमें अक्षरों का विधिवत ज्ञान तो पीछे चल कर देना ही होगा। इससे किसी प्रकार का छुटकारा संभव नही। विश्लेषण के पश्चात् अक्षरों का ज्ञान देने की कई पद्धतियाँ है।

(ख) **ध्वनि-साम्य-विधि** (Phonetic method)—अक्षर बोध विधि की प्रथम उन्नत प्रणाली ध्वनि साम्य विधि मानी गयी है। अर्थात यह वर्ण बोध विधि की संशोधित और परिष्कृत विधि है।

इसके अनुसार लड़कों को अक्षरों का ज्ञान ध्वनियों के अभ्यास से कराया जाता है। एक साथ उच्चरित होने वाले शब्द एक साथ सिखाये जाते हैं जैसे नाम, काम, धाम,—ताला, माला, बाला। हिन्दी में वर्णमाला के अक्षरों का क्रम उच्चारण-स्थान के अनुसार सज्जित है। इसलिये बालकों को कोई कठिनाई नहीं होती। अंगेजी में भी a (ए), b (बी) c (सी), आदि को अलग अलग न सिखाकर ध्वनि साम्य सिद्धान्त के आधार पर mat, cat, fat, rat, आदि शब्दों का ज्ञान कराया जाता है। ध्वनि साम्य को दृष्टि में रखते हुऐ ऐसे शब्द चुने जाते है जो बालकों के लिये कोमल, सरल, तथा सुनने में मधुर मालूम हों। ध्वनि समता के कारण बालक को एक प्रकार से लय का ज्ञान होता है। और वह एक शब्द सीखने के बाद उसी प्रकार से उच्चारण वाले अनेक शब्दों को पढ़ने में सुविधा और रुचि का अनुभव करता है जैसे

लट्टू	धुनाई,	आम	राजा	केला
टट्टू	बुनाई,	दाम	खाजा	मेला
चट्टू	तुनाई	काम	साजा	ढेला
खट्टू	लुनाई	साम	ताजा	रेला
बट्टू	सुनाई	राम	बाजा	बेला आदि।

लेकिन इस विधि में भी कुछेक कठिनाइयाँ है जिनके कारण इसे सर्वत्र मान्यता नहीं दी जा सकी है। और उससे अन्य संशोधित और उन्नत विधियाँ लोगों ने बताये हैं। सबसे प्रधान कठिनाई यह है कि छोटे-छोटे बालकों की अनुभव परिधि में ऐसे शब्द पर्याप्त मात्रा मे नहीं है, जिनके प्रयोग से बालकों का शब्द-भांडार बढ़ाया जा सकता है। फल यह होता है कि ऐसे अनेक शब्द लाये जाते हैं जो ध्वनि समता रखते हुए भी अर्थ का बोध नहीं करते। इस सिद्धान्त· पर रची गयी पुस्तक मे शब्दावली कृत्रिम होती है और उनका कोई अर्थ-सम्बन्ध नही भी हो सकता है। बच्चों को ध्वनि के कारण रुचि थोड़ी मात्रा में मिल जाती है। लेकिन उससे वर्ण बोध के उद्देश्य पूर्णतः पूरे नहीं होते। इसके साथ ही, कुछ ऐसे भी शब्द प्रयोग में आयेंगे जिनका बालक घर पर कुछ और ही प्रकार का उच्चारण करता है; जैसे चर्म (चमड़ा), नर्म (नरम)। अतः उन्हें ग्रहण सम्बन्धी कठिनाई हो सकती है। इस विधि के अनुसार ध्वनि पर अधिक ध्यान दिया जाता है जो शब्दों, वाक्य खण्डों और वाक्य के अर्थ पर भी अतिक्रमण कर देता है। शॉनेल (Schonell) ने लिखा है कि इस विधि के अपनाने से अर्थ ग्रहण का उद्देश्य ध्वनि की प्रभुता के कारण गौण पड़ जाता है।

वर्ण बोध और ध्वनि साम्य विधियाँ वास्तव में एक ही प्रकार की है। ये संश्लेषणात्मक विधियाँ कही जाती है क्योंकि इनमें भाषा ज्ञान का क्रम अक्षर—शब्द—वाक्य—इस प्रकार का माना गया है। ये ध्वन्यात्मक भी कही जाती है क्योकि इनमें ध्वनि की प्रधानता मानी जाती है। वर्ण विधि प्रत्येक अक्षर की ध्वनि लेकर चलती है और ध्वनि-साम्य-विधि पूर्ण ध्वनि को लेकर जो शब्द या शब्दांशों (Syllables) द्वारा प्रगट होती हैं। ये विधियाँ चित्रात्मक भी होती हैं क्योंकि इनमें अक्षरों का ज्ञान चित्रों के सहारे देने का परिष्कृत आयोजन अब किया गया है। चित्रों के प्रयोग से स्वभावतः बालकों की रुचि बढ़ती है और वे उसी रुचि के साथ पढ़ते हैं। भारतवर्ष में इस प्रकार की प्रणाली पर आधारित हिन्दी की कई पुस्तकें है जिनका प्रयोग विद्यालय प्रवेश के पहले घरों में किया जाता है।

ये ध्वन्यात्मक विधियाँ नये नये शब्दो को पढ़ सकने की क्षमता उत्पन्न करने में अत्यन्त ही प्रभाव पूर्ण और अचूक हैं। लेकिन इनके द्वारा वाचन में प्रवाह नहीं आता जब तक कि बहुत से शब्द पूर्णतया परिचित न हों। साथ ही ध्वन्यात्मक विधि से छोटे छोटे बालकों या निरक्षर वयस्कों को पढ़ाना अत्यन्त

ही दुरूह और गहन कार्य है, क्योकि, जैसा ऊपर बताया गया है, ध्वनि की प्रभुता के कारण अर्थ-ग्रहण गौण पड़ जाता है। इसी कारण से शब्द पर आधारित कई विधियो का निरूपण किया गया है।

(ग) **देखो और कहो विधि** (Look and Say method) :—इस विधि का मूलाधार शब्द है। इसका विकास संभवतः वर्णबोध की विधियों के विरोध मे हुआ था। इसके अनुसार बच्चों को प्रत्येक शब्द के लिये एक चित्र दिखाया जाता है। चित्र के साथ ही ऊपर या नीचे उसका शब्द भी लिखा रहता है। जैसे गाय के चित्र के साथ 'गाय', माँ के चित्र के साथ 'माँ', कबूतर के चित्र के साथ' कबूतर' आदि। ये शब्द और चित्र या तो बड़े-बड़े चार्ट्स पर लिखे होते हैं जो दीवाल पर शिक्षक टाँग देते है या हाथ से भी श्यामपट पर चित्र सहित शब्द शिक्षक लिख देता है। 'फ्लैस कार्ड' का भी प्रयोग किया जाता है। प्राथमिक पाठशालाओं में इन तीनों साधनों चार्ट, श्याम-पट और फ्लैश कार्ड का उपयोग किया जा सकता है। लेकिन छपे हुए चित्रो के स्थान पर यदि ऊपर की कक्षाओ के लड़कों से गत्ते के छोटे-छोटे टुकड़ो पर चित्र और शब्द लिखवाये जायें तो बहुत ही कम खर्च में सामग्री तैयार हो सकती है। चित्रांकन मे यह काम हो सकता है। शिक्षक इस प्रकार चित्रों और शब्दों को दिखाता है या श्यामपट पर लिखता है। वह उन चित्रों का या शब्दों का नाम भी पढ़ता है। वर्ग के बच्चे चित्रों को पहचानते है और शब्दों का उच्चारण भी करते हैं। 'गाय' के चित्र को देखकर बालक स्वयं गाय कह देता है हालांकि वह अभी अक्षरों से परिचित नहीं है। चूँकि शब्द बालक के अनुभव की परिधि के अन्दर की होती हैं, इसलिये शब्दों को पढ़ने में उसे किसी प्रकार की कठिनाई भी नहीं होती। इस प्रकार चित्रों और उनके शब्दों का साहचर्य (association) बालक के मस्तिष्क मे हो जाता है। साहचर्य सिद्धान्त से वह अनेक परिचित चित्रों में रुचि के कारण शब्दों का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। शब्दों और चित्रों का चुनाव भी इस प्रकार होता है कि नये शब्द या चित्र यकायक न आ जायें। शब्द बालक के प्रतिवेश के हों जिनके चित्रों को वह आसानी से पहचान सके। धीरे-धीरे क्रमिक चित्रों और शब्दों के सहारे उसके वर्ण-ज्ञान को इस प्रकार पूर्ण बना दिया जाता है कि वह उनसे बने शब्दों को आसानी से पढ़ सके। इस प्रकार निरन्तर अभ्यास के कारण वह उन्हें लिख भी सकता है। इस प्रकार यह विधि वाचन से लेखन की ओर जाती है।

लेकिन इस विधि में भी शिक्षाविदों ने कई कमियों का विश्लेषण किया है जिनके कारण यह पूर्णरूप से अपनायी नहीं जा सकती।

इस पद्धति के अनुसार बने या चुने गये शब्द और चित्र वस्तुओं का ज्ञान देने मे समर्थ अवश्य है लेकिन वे भावार्थक और क्रियार्थक शब्दों का ज्ञान देने मे सर्वथा असमर्थ है। क्रोध, आनन्द, रुदन आदि ऐसे भावद्योतक शब्द है या पढना, जाना, टहलना आदि ऐसे क्रियार्थक शब्द है जिनका भली-भाँति ज्ञान बालकों को नही दिलाया जा सकता। यदि 'टहलना' शब्द का ज्ञान देना हो तो किस प्रकार का चित्र उपयोगी होगा या प्रभावपूर्ण होगा यह शिक्षकों के कार्यक्रम मे अनुभव का विषय है। 'आनन्द' शब्द का ज्ञान देने के लिए कैसे चित्र का प्रयोग किया जायगा। मान लीजिये यदि 'बालक' को पुस्तक पढते हुए एक बालक का चित्र दिखाया जाय तो वह 'पुस्तक', 'बालक' का तो ज्ञान प्राप्त कर सकता है लेकिन 'पढ़ना' का नहीं, जब तक कि उसे यह नहीं बताया जाय।

यह पद्धति शब्द को ही प्रथम इकाई मानती है और केवल शब्दों का ही ज्ञान दे सकती है। लेकिन बालक क्या शब्द मे ही सोचता है, या उसका भाव वाक्य मे बंधा रहता है। यदि बालक माँ के सामने दूध कहता है तो स्पष्ट ही वह कहता है—मा, दूध दो या मां दूध चाहिए। अतएव यह प्रणाली पूर्णतः सफल नही कही जा सकती।

शब्द भांडार इस प्रकार संकलित किये जाते है कि बालक परिचित चित्रो के सहारे शब्दों को भले ही जान जाय लेकिन उसका अनुभव सीमित होने के कारण वह उन चित्रों और शब्दों को पहचान नही सकता जो उसके अनुभव के बाहर की चीजें है। 'रेल' का चित्र देखकर 'रेल' वही छात्र कहेगा जिसने रेल को देखा है, दूसरा नही। अतएव इस विधि में शिक्षक को ऐसे ही शब्दो के लिए अधिक क्रियाशील रहना पड़ता है। इस प्रकार अनुभव क्षेत्र के बाहर के शब्द ज्ञान के लिये शिक्षक का निर्देश अत्यावश्यक है। अपरिचित शब्दो के लिए पूर्व वर्णित ध्वन्यात्मक विधियों का सहारा लेना पड़ता है। साथ ही इस विधि का मूलाधार शब्द होने से बड़े भाव-इकाइयो के ग्रहण करने में कठिनाई होती है जिसके लिए वाक्य या कहानी पद्धति का सहारा अत्यावश्यक हो जाता है।

हिन्दी भाषा के शिक्षण के लिए कुछ शिक्षाशास्त्रियों ने इस विधि को ग्राह्य नहीं बताया है। उनके अनुसार हिन्दी और अंग्रेजी के अक्षर-विन्यास

भिन्न-भिन्न है। हिन्दी ध्वन्यात्मक भाषा है जिसकी वर्णमाला वैज्ञानिक है। ध्वनि अनुरूप अक्षर है। लेकिन अंग्रेजी में यह बात नहीं है। अतएव अंग्रेजी शब्दों को सिखाने में ध्वनि अनुरूपता के अभाव में इस विधि का बाहुल्य के साथ प्रयोग किया जाता है। लेकिन "हिन्दी भाषा के लिये इस विधि को अपनाना अपनी वर्णमाला की वैज्ञानिकता का तिरस्कार, उपेक्षा और हत्या करना है।"

(घ) **वाक्य शिक्षण विधि** (Sentence Method) :—शब्द या देखो कहो विधि का परिवर्धित रूप में वाक्य शिक्षण पद्धति का प्रयोग किया गया है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बालक शब्द में नहीं, वरन् वाक्य या वाक्य-खण्ड मे ही सोचता है तथा अपने भाव को व्यक्त करने की इच्छा रखता है। भाषा की इकाई वाक्य है, अक्षर या शब्द नहीं। इसलिये यहाँ शब्दों से आरम्भ करने के बदले वाक्यों से ही आरम्भ किया जाता है। इस पद्धति के अनुसार छोटे-छोटे वाक्यों कों एकत्र करके कहानी का रूप दे देने से तथा उनमें चित्रों को भी प्रमुख स्थान देने से उपादेयता बढ़ जाती है। शिक्षक चित्रमय वाक्यावली को लड़कों के सामने श्यामपट पर टाँग देते हैं। तत्पश्चात् वे देखो और कहो विधि के अनुसार ही उनको पढ़ते है लडके भी बार-बार हर वाक्य को पढ़ते है। इस प्रकार अभ्यास द्वारा वे उन्हें याद कर लेते हैं।

यह बरकत है।
यह बरकत की गाय है।
बरकत की गाय चारा खाती है।
बरकत की गायउजली है।
बरकत की गाय दूध देती है।...

शब्दों को बार-बार आने से और उनके वाचन से लड़कों के मस्तिष्क पर उनकी ध्वनि और उनके चित्र की छाप पड़ जाती है। इस प्रकार वाक्य के बाद शब्द और सबसे अन्त में अक्षरों का ज्ञान कराया जाता है। यह विधि प्रारम्भ में विश्लेषणात्मक है। और अन्त में संश्लेषणात्मक है। क्योंकि वाक्य—शब्द—अक्षर के क्रम से पुनः वाक्य बनाये जाते हैं।

यह विधि मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के अनुकूल है और इसका प्रयोग भी बहुतायत से हो रहा है। लेकिन इसमें एक दोष भी है कि बालकों का शब्द-भण्डार बढ़ नहीं पाता। क्योंकि मस्तिष्क में शब्दों का चित्र अंकित करने

के लिए शब्दों का कई बार प्रयोग हाता है। साथ ही वाक्यों के अभ्यास से समय भी अधिक लगता है। इस पद्धति में कृत्रिमता भी नजर आती है।

(च) **कहानी विधि** (Story Method) :—कहानी विधि वाक्य-विधि की ही एक संशोधित उन्नत विधि है। इसमें वाक्यों का क्रम इस प्रकार रखा जाता है जिसमे एक कहानी का रूप हो जाता है। अध्यापक वर्ग में पाठ की कहानी कहता है। इस प्रंकार बालकों को कहानी में रुचि हो जाती है और उसे लिपिबद्ध देखना चाहते है। तब शिक्षक कहानी के प्रत्येक वाक्य को श्यामपट पर लिख कर उन्हें पढ़ सुनाता है। वर्ग में बालक भी अभ्यास के द्वारा वाक्यों को पहचान लेता है और शिक्षक के सामने उनका वाचन भी करता है। तदनन्तर वाक्यों का विश्लेषण किया जाता है तथा शब्दों और अक्षरों का क्रमशः ज्ञान कराया जाता है।

यह कहा जा चुका है कि यह प्रणाली वाक्य-पद्धति का ही एक उन्नत रूप है। अतएव इसकी सबसे,बड़ी विशेषता यह है कि वाक्यों में तारतम्य और सम्बन्ध होने से रुचि टिकती है। बालक की रुचि वाक्य-विशेष की समाप्ति पर ही अन्त नहीं हो जाती वह सम्पूर्ण कहानी में अपना मन लगा रखता है।

फिर भी यह विधि उन दोषों से ग्रस्त है जो वाक्य और शब्द विधि मे पाये जाते हैं। कहानी का बालक के प्रतिवेश के साथ ही सम्बन्ध रखने से, और उसकी अनुभव परिधि के सीमित होने से यहाँ भी शब्द-भण्डार की कमी का दोष विद्यमान पाया जाता है। फिर कहानी का प्रकरण यदि लम्बा हो तो बालकों पर उनके वाक्यों और शब्दों की स्पष्ट छाप नहीं पड़ती। लेकिन कहानी विधि सर्वप्रचलित पद्धति है और इसमें सभी भाषाओं में अनेकों पाठ्य-पुस्तकें उपलब्ध हैं।

(छ) **कविता विधि** :—गद्य के शिक्षण मे जो स्थान कहानी विधि का है, पद्य में वही स्थान कविता विधि को प्राप्त है। पदों में लयात्मकता होने के कारण यह कहानी विधि से अधिक उपयोगी, स्थायी, रुचिपूर्ण और प्रभावपूर्ण होती है। इसमें पद्यात्मक कहानी का उपयोग हाता है। समवेत-गान में अधिक रुचि के कारण बालक इसे अधिक पसन्द करते है।

ऊपर जिन विधियों का वर्णन किया गया है उनके अतिरिक्त भी पाश्चात्य देशों में अन्य विधियाँ अपनायी गयी है और उनसे यथेष्ट लाभ उठाया गया है।

अनुकरण पद्धति (Imitation method) :—इस विधि के अनुसार अध्यापक वर्ग में शब्दों को कहते है और बालक उनका अनुकरण करके उच्चारण करते है । जैसे यदि शिक्षक ने कहा कि—बरकत की गाय है; तो छात्र भी कहेंगे कि—बरकत की गाय है । यह विधि एक प्रकार से 'देखो और कहो' का ही एक विभेद है और हम इसे सुनो और कहो (Hear and say) पद्धति कहें तो सम्भवत: अधिक उपयुक्त कहा जा सकता है । और सच तो यह है कि यह भाषा-शिक्षण की कोई स्वतन्त्र प्रणाली नही है, केवल मात्र एक प्रक्रिया (Process) है ।

अनुकरण विधि का प्रयोग उन्ही भाषाओं मे विशेषत: होता है और होना चाहिये जहाँ वर्णो का स्थान उच्चारण अनुरूप नहीं है । यह अंग्रेजी और इस परिवार की अन्य भाषाओं के लिये अधिक उपयोगी होगी । अंग्रेजी के शिक्षक को—

Cup—कप
But—बट
Put—पुट आदि

का उच्चारण भेद सिखाने के लिए इस प्रक्रिया का सहारा लेना चाहिये । लेकिन हिन्दी मे इसकी कोई आवश्यकता नहीं है क्योकि वर्णो का उच्चारण पूर्व निश्चित है ।

लिंग्वाफोन पद्धति (Linguaphone Method) :—इसे भी यदि अनुकरण पद्धति का यान्त्रिकरूप कहा जाय तो कोई दोष नही माना जाना चाहिये । इस विधि के अनुसार बालक के सामने एक ग्रामोफोन के तवे (Record) पर पाठ दिया रहता है । लिंग्वाफोन को वर्ग में बजाया जाता है । तवे के चलने से जो आवाज उत्पन्न होती है लड़के उन्हें सुनकर उनका अनुकरण करते हैं । इसके अनुसार लड़कों में शुद्ध उच्चारण की क्षमता उत्पन्न होती है और उनमें अभ्यास के द्वारा शब्दों का ज्ञान दिया जाता है । यह विधि भी पहली — अनुकरण विधि—की तरह हिन्दी भाषा के लिये कोई विशेष महत्व का नही । क्योंकि हिन्दी ध्वन्यात्मक भाषा है जहाँ वर्ण और ध्वनि का साम्य पहले से ही स्थापित है । विदेशी भाषाओं के सीखने में लिंग्वाफोन उपयोगी प्रमाणित होता है । लेकिन यह व्ययपूर्ण है जिसके लिए अभी भारतवर्ष तैयार नहीं कि प्रत्येक विद्यालय में लिंग्वाफोन की व्यवस्था कर सके । फिर

भी अहिन्दी भाषियों के लिए लिग्वाफ़ोन की सहायता सम्भवत: उपयोगी प्रमाणित होगी ।

(ग) सामूहिक वाचन-विधि (Group Reading Method) :—ऊपर की दो प्रणालियों मे व्यक्तिगत पाठन का सम्बन्ध पाया जाता है लेकिन इस विधि में जो पाठ शिक्षक वर्ग मे पढ़ते है उनका समूचा वर्ग सामूहिक पाठ करता है । अतएव "यह अनुकरण विधि के सामूहिक रूप के अतिरिक्त और कुछ नही है किन्तु गान और कविताएँ अपने में एक प्रकार की उच्चारण सम्बन्धी सुविधा तथा सौष्ठव रखती हैं जिससे अनुकरण विधि की नीरसता इसमे कम आने पाती है ।"

(घ) साहचर्य - विधि (Association Method) :—मान्तेसरी प्रणाली मे भाषा-शिक्षण का प्रारम्भ साहचर्य विधि से होता है । इसके अनुसार वर्ग मे बच्चों के खेलने के समान, चित्र, मॉडल, तथा अनेक प्रकार की चीज यथास्थान रखी रहती है । इन सभी चीजों या कुछ ही चीजों पर उनके नाम शब्द कार्ड पर लिखे रहते हैं और उनमे काँटी द्वारा टँगे रहते है या उनके पास दीवाल में ऊपर या नीचे ये कार्ड लटका दिये जाते हैं । प्रतिदिन छात्र उन सामानों और उनके ऊपर लटकाये गये कार्ड को देखते है । यह अवसर उन्हें कई बार दिया जाता है । अभ्यास के कारण बालक के मस्तिष्क मे शब्दों का वस्तुओं के साथ साहचर्य स्थापित हो जाता है फिर उन कार्डो को हटा दिया जाता है और तब बालको को कहा जाता है कि प्रत्येक वस्तु के आगे उसके नाम का कार्ड रखे। बालक कार्डो में से इस प्रकार निकालकर इनके सामने रखता है । वह प्रारम्भ मे गलती भी करता है लेकिन ज्यों-ज्यों साहचर्य घना और स्थायी हो जाता है, उसकी गलती दूर होती जाती है । इस क्रिया का फल यह होता है कि लड़कों को अनेक शब्दो और उनमें प्रयुक्त वर्णो से परिचय प्राप्त हो जाता है । पढ़ने के लिये इस प्रकार एक उचित पूर्वपीठिका तैयार हो जाती है क्योंकि अब पढ़ना बालक के लिये उत्साहवर्धक और रोचक हो जाता है । लेकिन इस विधि के मनोवैज्ञानिक होने के बाद भी इसमें एक दोष है कि यह केवल संज्ञा को ही ज्ञान दिला सकती है; क्रियाओं का नहीं । अतएव यह ।वधि ऊँचे वर्गो के लिये उतनी उपयोगी नहीं है । पूर्व प्रारम्भिक क़क्षा में इसका उपयोग किय। जा सकता है ।

ऊपर जिन प्रणालियों का वर्णन किया गया है, उनमे शिक्षक को कौन-सा प्रयोग में लाना चाहिए, यह एक आवश्यक और व्यावहारिक समस्या का प्रश्न है। शिक्षक के लिए यह विशेषतौर से आवश्यक इसलिए भी हो जाता है क्योंकि हमने सभी प्रणालियों के गुण-दोषों का सम्मिलित विवेचन करके यह देख लिया है कि यह खतरों से खाली नही है कि शिक्षक उनमे से केवल किसी एक को अपनाये। अतएव किसी भी प्रणाली विशेष के अपनाने के पहले हमें निम्नांकित तीन बातों पर विचार कर लेना चाहिए।

(क) हमारा दृष्टिकोण या पहुँच (approach) पूर्णतया मनोवैज्ञानिक होना चाहिए और विषय की अपेक्षा बालक की ही प्रधानता का विचार रखना चाहिये। भले ही यह बात क्रमबद्ध, तर्कपूर्ण या तर्कानुसार न मालूम पड़े, लेकिन हम मनोविज्ञान के आधुनिक निष्कर्षो की किसी प्रकार अवहेलना नही कर सकते। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि बालक को प्रधान स्थान देने से हमारी शिक्षण समस्याएँ बहुत दूर तक स्वतः दूर हो जायँगी।

(ख) जब हमें बालक की प्रधानता को अपने सम्मुख रख कर किसी भी प्रणाली को—जो मनोवैज्ञानिक कही जा सके—अपनाना है तो निस्सन्देह हमें बालकों की भिन्नता का भी अध्ययन कर लेना चाहिये। यह विभिन्नता कई रूपों में दिखाई पड़ती है।

(ग) कुछ लड़के इस प्रकृति के होते हैं जो आँखों के द्वारा, कुछ कानों के सहारे और कुछ घ्राण तथा स्पर्श क्रियाओं के द्वारा ही मस्तिष्क पर अनुभूतियों की स्पष्ट छाप (Impression) पाते है। उसी प्रकार पढ़ाने-लिखाने की विधियों को भी यह सोचना चाहिए कि कुछ लड़के आँखों के सहारे पढ़ना सीखेंगे, कुछ सुनकर ही और कुछ काम करने की क्रिया के द्वारा ही पढ़ना सीखना चाहेंगे। इस तरह अनेक प्रकार के लड़के अनेक प्रकार की क्रियाओं से पढ़ने का ज्ञान प्राप्त करना चाहेगे।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि सभी लड़कों के लिए कोई एक ही विधि कभी भी पूर्ण और उचित नहीं कही जा सकती। कोई लड़के एक विधि—मान लीजिये वर्ण विधि या वाक्य विधि—के द्वारा सीखना पसन्द करेगे। जब यह पसन्द की बात है तो इससे मेल का क्या ठिकाना! लेकिन यह पसन्द की कोई व्यक्तिगत स्वच्छन्दता नहीं है। वह बालक के मानसिक गठन और प्रकृति (Temperament) के अनुसार ही निर्दिष्ट है जिसका अध्ययन मनोविज्ञान का विषय है। अतएव हम मूल विषय पर आते हैं।

इसलिए हमने ऊपर की जिन अनेक प्रणालियों का वर्णन किया है या उनके अतिरिक्त भी जिनका वर्णन नहीं किया जा सका है, उनमें से किसी एक को शिक्षक वर्ग में अपना नहीं सकता। साथ ही यह भी सम्भव नही कि प्रत्येक लडके के लिए अलग-अलग प्रणाली अपनायी जाय। किसी प्रणाली विशेष को अपनाने मे यह भी भय है कि उनका अनुसरण करने से हम उनके गुणों से लाभान्वित होने के साथ ही उनकी कमियों और दोषों से ग्रस्त भी हो जा सकते है। साथ ही यह किसी भी अंश में व्यावहारिक नही होगा—केवल प्रलाप ही कहा जा सकता है।

अतएव एक कुशल शिक्षक के लिए यही वांछनीय होगा कि वह सभी मनोवैज्ञानिक और शुद्ध वैज्ञानिक पहुँचों (Approaches) और दृष्टिकोणों को अपनाये और इस प्रकार अपनी विधि को किसी प्रणाली विशेष से सम्बद्ध न करके एक संयुक्त विधि अपनाये जिसमें सभी गुणों का सामंजस्य, समावेश, सन्निवेश और समन्वय हो सके। इसे हम Combination Method या Eclectic Method भी कहते हैं क्योंकि इसमें सभी उत्तम विधियों की विशेषताएँ पायी जाती है। यहाँ हम इसी संयुक्त (Eclectic) विधि का वर्णन कर रहे है जिनसे शिक्षक को पर्याप्त सहायता मिल सकती है।

संयुक्त विधि (Eclectic Method) :—

यदि हम मनोविज्ञान की दृष्टि से देखें तो छोटे-छोटे बालकों के भाव या आशय वाक्यों का रूप ग्रहण कर हमारे सामने आते हैं और उन वाक्यों में आपसी तारतम्य और सम्बन्ध रहता है। वाक्यों का गुम्फन कुछ इस प्रकार का होता है कि वे कहानी का भी रूप दे देते हैं चाहे वे कितनी ही छोटी, संक्षिप्त और थोड़ी देर में ही समाप्त हो जानेवाली क्यों न हों। साथ ही, जब बालक का प्रवेश पूर्व प्रारम्भिक या प्रारम्भिक कक्षाओं में होता है तब तक उसमें कहानी का अपना एक भण्डार होता है जिससे कुछ तो उसके घर के लोगो द्वारा सुनी होती है और कुछ उसके मनगढ़न्त। शिक्षकों के लिए, बालकों का यह भण्डार एक बड़ी पूँजी है जिसका उपयोग उन्हें करना चाहिए। अतएव हमारा विश्वास है कि कहानी का रूप लिये वाक्य पद्धति के द्वारा ही पढ़ना (Reading) सिखाया जाना चाहिए।

कहानी के विषय क्या और कैसे हों यह यहाँ वर्णन का विषय नही है। फिर भी इतना अवश्य समझना चाहिए कि कहानी बालकों के प्राकृतिक और सामाजिक प्रतिवेश और अनुभूतियों की हों जिनकी क्रियाओं और संज्ञाओं से

वह सर्वथा परिचित अवश्य ही हो। यदि वे उसके क्रिया-कलापों के क्षेत्र के हों तो और भी अधिक प्रभावशाली, रुचिपूर्ण और स्थायी होंगी जैसे, कताई कार्य, सफाई कार्य, बागवानी कार्य, विद्यालय की सांस्कृतिक क्रियाकलापादि। साथ ही, कहानी किस प्रकार कही जाय, इस पर यही सर्वसम्मत विचार है कि प्रारम्भ मे वह कथोपकथन (Conversation) की प्रणाली से प्रारम्भ की जाय।

यहाँ इस संयुक्त विधि का एक परिचय दिया जा रहा है। इस विधि के मुख्यतया आठ स्तर (Stages) होंगे जो इस प्रकार व्यक्त किये जा सकते है :—

१. कहानी कहना और चित्र दिखाना।
२. कहानी से सम्बद्ध वाक्यो का बनाना, प ,ना, पढ़ाना।
३. इन वाक्यो को वाक्य-कार्ड के द्वारा या श्यामपट पर लिख कर पढ़ना और पढ़वाना।
४. वाक्यों का परिचय कराना (Identification)।
५. वाक्यों के शब्दों का विश्लेषण।
६. शब्दो से नये-नये वाक्य बनाना।
७. शब्दों का अक्षरों में विश्लेषण।
८, अक्षरों से नये-नये शब्द बनाना।

इस प्रकार हम देखते है कि यह विधि प्रारम्भ में कहानी का रूप लेती है; फिर क्रमशः वाक्य, शब्द, और अक्षर विधि अपनाती है। अतएव संश्लेषण (Synthesis) से विश्लेषण (Analysis) की ओर जाती है और फिर पीछे विश्लेषण के पश्चात् संश्लेषण को अपनाती है।

(क) शिक्षक बालक के घरेलू वातावरण की कुछेक बातें पूछता है तथा कथोपकथन के द्वारा कुछेक ऐसे वाक्य बनाता है जो सम्पूर्ण भाव व्यक्त करते है या एक कहानी का ही रूप धारण कर लेते हैं। फिर शिक्षक लड़कों के मेल से एक कहानी कह सुनाता है :—

यह हमारा घर है।
यह हमारे पताजा हैं।
यह हमारी माता हैं।
यह हमारी बहन है।
यह हमारा भाई है।

यह हमारी गाय है ।
यह हमारी भस है ।
हमारी गाय दूध देती है ।
हमारी भैस दूध देती है ।
हम दूध पीते है ।
हम दही खाते है ।
गाय चारा खाती है ।
भस चारा खाती है ।

यहाँ ५५ शब्दों की वाक्यावली है जिसमे २३ शब्द प्रयोग में आये हैं। प्रत्येक शब्द कितनी बार प्रयुक्त हुआ है, यह निम्न विवरण से स्पष्ट होगा ।

१. यह—७
२. हमारा—२
३. घर—१
४. है—९
५. है—४
६. हमारे—१
७. पिता—१
८. जी—१
९. हमारी—६
१०. बहन—१
११. माता—१
१२. भाई—१
१३. गाय—३
१४. भैस—६
१५. दूध—३
१६. दही—१
१७. चारा—२
१८. पीते—१
१९. देती—२
२०. पीते—१
२१. खाते—१
२२. खाती—१
२३. हम—१

(ख) यह वाक्यावली शिक्षक बार-बार पढ़ सुनाता है और बालक भी उसका अनुकरण करता है । इस प्रकार बार बार अभ्यास और आवृत्ति से—वाक्यों के कहने और चित्र के दिखाने से—मस्तिष्क में साहचर्य उत्पन्न होता है । मस्तिष्क मे उन शब्दों और उनके द्योतक चित्रों की छाप भी पड़ती जाती है । पढ़ने के क्रम में वह वाक्य को दिखाता है जो कार्ड पर या श्यामपट पर लिखे होते है । बालक भी अपने कार्डों से वैसा ही कार्ड निकाल कर दिखाते हैं । शिक्षक यदि—यह हमारा घर है—वाक्य निकालकर दिखाता है तो बालक भी घर के चित्र और साहचर्य से अपना वाक्य कार्ड निकाल

कर दिखाता है। इस प्रकार बालक सम्पूर्ण वाक्य को पहचानने में समर्थ होंगे। इसके लिये पर्याप्त अभ्यास करना पड़ेगा।

कभी-कभी शिक्षक वाक्य के एक अंश को छिपा कर भी दिखायेगा जैसे यह हमारी—है, और छिपे हुए स्थान के बदले भस का चित्र लगा देगा। तब बालक से वैसे वाक्य निकालने को कहेगा बालक पहचान कर 'यह हमारी भस है' वाक्य निकाल कर दिखायेगा। इस प्रकार अभ्यास, शुद्धि-अशुद्धि के क्रम से लड़के सभी वाक्यों को पहचानने लगेंगे।

तब शिक्षक उन वाक्यों के शब्दों का विश्लेषण इस प्रकार करेगा। शिक्षक वाक्य कार्ड की जगह अब उन्ही का शब्द कार्ड निकालेगे। जैसे 'गाय' का कार्ड और बालको से वैसा ही कार्ड निकालने को कहेंगे। बालक गाय के चित्र वाला कार्ड निकालेंगे। यह क्रिया प्रत्येक शब्द के लिये प्रत्येक लड़का द्वारा करायी जानी चाहिये क्योंकि साहचर्य और अभ्यास ही इसका मूल आधार है।

(ग) फिर शब्दों के सहारे शिक्षक नये वाक्यो का प्रयोग बतायेंगे। यथा 'गाय' 'भैंस' और 'चारा' का शब्द कार्ड निकालने के बाद 'बकरी' का एक चित्र कार्ड निकालेगे और वाक्य बनवायेंगे।

गाय चारा खाती है।

बकरी घास खाती है आदि। शब्दों के मेल से नये-नये वाक्य शिक्षक श्यामपट पर बनायेंगे और बालक भी उनका अनुकरण करेंगे।

(च) इस प्रकार जब लड़कों को कुछ शब्द भडार हो जायगा तो शब्दों का अक्षरों मे विश्लेषण बताया जा सकता है। प्रत्येक लड़का और शिक्षक के पास अक्षरों का सेट होना चाहिये। (अक्षर के सेट ऊँचे वर्गवाले छात्र हस्तकर्म मे बनायेगे)। जिस तरह शिक्षक अक्षरों को अलग-अलग करके निकालेगे उसी तरह बालक भी अक्षरों को निकालेंगे। जैसे शिक्षक ने **'घ'** अक्षर निकाला तो लड़के भी पहचान कर 'घ' अक्षर निकालेंगे।

यह = य + ह
हमारा = ह + मा + रा
घर = घ – र
गाय = गा—य

आदि।

(छ) अक्षरों का विश्लेषण करने के पश्चात् बालकों को इन अक्षरों के मेल से बने नये शब्दो का भी ज्ञान कराया जाना चाहिये। अक्षरों का मेल ध्वन्यात्मक विधि से बनाया जाय जिसमे जहां तक हो, प्रारम्भ में, कोमल तथा सरल शब्द बन सकें। इसके लिये चित्र का सहारा लेना चाहिये।

ह — हल
मा — माला
ता — ताला, तालू, तालाब
ग — गमछा, गरदन, गाल, गागर आदि।

इस प्रकार का मेल शिक्षक ऊपर कार्ड के द्वारा या श्यामपट पर लिख कर भी कर सकते है। और बालक अनुकरण करके अपने सामने के कार्डो के अक्षरो को भी मेल बनाकर दिखा सकते है। इस प्रकार मेल के लिये स्पेशल कार्ड्स सेट बने आते है जिनका सुसम्पन्न घरो मे बहुलता से प्रयोग होता है। विद्यालय मे भी ऐसे कार्ड बनवा कर रखे जा सकते है। इस तरह अक्षरों से शब्द, शब्दों से वाक्य और तदोपरान्त कोई कहानी बनायी जा सकती है। इस प्रकार यह संयुक्त विधि सभी विधियों को अपनाती है।

ऊपर का अक्षर ज्ञान सम्बन्धी पाठ को संकेत ही समझना चाहिये। अनुभव के ढाँचों पर अन्य सामग्री और साधन उपयोग में लाया जा सकता है। वर्ग या विद्यालय के क्रियाशीलनों पर भी आधारित ऐसी वाक्यावली तैयार की जा सकती है।

यह हमारा स्कूल है।
यह हमारा वर्ग है।
हम वर्ग में पढते है।
हम स्कूल मे पढ़ते है।
हम सूत कातते है।
हम पूनी बनाते है।
हम तकली चलाते है।
हम बीज बोते हैं।
हम बीज उगाते है।
हम खेत कोड़ते है।
हम सब्जी उगाते हैं। आदि।

क्रियाशीलनों के बाद सामूहिक वर्ग में कपोथकथन की पद्धति से इस तरह के वाक्य सजाये जा सकते हैं और फिर वाक्य, शब्द और अक्षरो के क्रम से पढ़ना सिखाया जा सकता है। और विश्लेषण के बाद फिर संश्लेषण किया जा सकता है। लेकिन अक्षर बोध की किसी भी प्रणाली की सफलता एक कुशल और अनुभवी शिक्षक के हाथों ही संभव है। हमारी प्रशिक्षण संस्थाओं मे इसका विधिवत अभ्यास कराना चाहिये।

———

अध्याय १०

मौन वाचन की शिक्षा

यह कहा जा चुका है कि सस्वर वाचन की उत्तम और उन्नत अवस्था ही मौन वाचन है। अतएव मौन वाचन की यह उन्नत अवस्था ही उसके महत्व को प्रदर्शित करनी है। निम्नाकित विवेचन से मौनवाचन का महत्व और भी स्पष्टतया प्रमाणित होता है।

मौन वाचन का महत्व .—

व्यावहारिक दृष्टि से देखने से मौनवाचन हमारे जीवन के प्रत्येक वाचन सम्बन्धी क्रियाकलाप में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। वाणिज्य क्षेत्र में, कचहरियो मे, राजनीति मे चिकित्सा मे, अभियंत्रण के क्षेत्र मे, उद्योग के क्षेत्र मे, तात्पर्य यह कि मानव क्रियाकलाप के सभी पहलुओ में तथ्यों की सही जानकारी के लिये मौन वाचन का सहारा लिया जाता है। यथावत वाचन के अभाव मे आदेशो, वशीकों के मूल तथ्यो, सूचनाओं के वास्तविक उद्देश्य और अर्थ को समझने मे, यहाँ तक कि ठीकेदारों को अपने स्वीकार पत्रों (agreements)के मूल शर्त्तो को समझने मे भी अनेक प्रकार की हानि की आशंका बनी रहती है। साथ ही, इस प्रकार की घाटे की घटनायें अधिकारियों और सम्बद्ध व्यक्तियो की नजर में निरंतर आती जा रही हैं। कार्यालयों मे प्रशासनाधिकारियों और उनके सहायको को विचाराधीन पत्र, प्रस्ताव, निर्देशादि के वास्तविक उद्देश्यों को समझने के लिये मौनवाचन की पद्धति अपनानी पडती है। अतएव मौनवाचन का सर्वव्यापक क्षेत्र स्पष्टतया उसके महत्व को प्रमाणित करता है।

हमारे जीवन मे कुछ ही ऐसे स्थल है जहाँ हमें सस्वर वाचन की आवश्यकता पडती है, जैसे प्रतिवेदन पढ़ना, भाषण पढ़ना, अभिनन्दन पढ़ना आदि। अन्यथा हमारे जीवन का अधिकांश क्रियाकलाप, जिनका वाचन से सम्बन्ध है, मौनवाचन से ही सम्पन्न होते है। जहाँ एक और सस्वर वाचन

से औरों को बाधा पहुँचेगी वही अर्थग्राह्यता (comprehension) मे और वाचन गति (speed) में भी व्यवधान प ँचता है । इसके विपरात, मौनवाचन से ग्रहण सम्बन्धी परिस्थितियाँ अनुकूल मिलती है, और उद्देश्य जल्द ही पूरे होते है । हम सभी जगह समाचार पत्र, पत्रिकाये, कहानी, उपन्यास, नाटक, गल्प आदि सस्वर नही पढ सकते क्योकि इनसे हमारी अशिष्टता और असभ्यता का परिचय मिलता है, और दूसरी ओर हमारे मूल उद्देश्य-मनोरंजन और मानसिक विश्राम मे भी व्यवधान उठ खडा होता है। तथ्य ग्रहण के लिये, गुणागुणज्ञान के लिये, अवकास के क्षणो के उपयोग के लिये मौन वाचन से बढकर और कोई भी उत्तम साधन नहा है । सस्वर वाचन, वाचन की प्रथम सीढी है, एक प्रारम्भिक साधन मात्र । उसका प्रांजल रूप ता मौनवाचन ही कहा जायगा ।

मौनवाचन का महत्व इस बात से भी प्रमाणित होता है कि सस्वर वाचन की अपेक्षा मौन वाचन से वाचक मे द्रुतगति से वाचन का क्षमता आती है । सस्वर वाचन में—आँखों, मस्तिष्क, उच्चारणोपयोगी अवयव, यहाँ तक कि कानो को भी, श्रम करना पडता है । लेकिन मौन वाचन में केवल मस्तिष्क और आँखें ही क्रियाशील रहती है । स्वरीकरण (vocalization) जिह्वा, कंठ, स्वरयंत्रों की वृहद गति का आयोजन करता है और हमारे स्वर की यात्रिकता दृष्टिगतकरण (visualization) की अपेक्षा अधिक अल्पगति की प्रकिया है । फल यह होता है कि सस्वर वाचन मे, दृष्टिकरण की गति को स्वरीकरण की क्लिष्ट प्रक्रिया से ताल-मेल रखने के लिये स्वयम् को धामी गति अख्तियार करनी पड़ती है । मनोविज्ञो ने प्रयोगो से यह प्रमाणित कर दिया है कि वयस्कों का मौन वाचन, सस्वर वाचन की अपेक्षा द्रुतगति से होता है और साथ ही एक क्षण में स्मरण में भी अधिक तथ्य समविष्ट होते है । यह प्रयोग पिन्टनर और गिलीलैन्ड महोदयों ने अमेरिका में करके दिखाया और अपना मत प्रगट किया है ।

मौन वाचन मे सस्वर वाचन की अपेक्षा अधिक अर्थग्रहण भी होता है । एक सस्वर वाचक जितने समय में जितना अर्थग्रहण करता है, उसी निर्धारित समय में मौन वाचक कहीं अधिक अर्थ ग्रहण कर सकता है; क्योंकि सस्वर वाचक के लिये उसके उच्चारणोपयोगी अवयवों का प्रयोग ही विशेषरूप में बाधक का काम करता है जब कि मौन वाचक के लिये इसकी अनुपस्थिति उसके लिये सभी अनुकूल परिस्थितियाँ प्रकट कर देती है । बड़े-

बड़े अनुच्छेदों को भी पढ़ने में मौन पाठ ही लाभदायक होता है क्योंकि सस्वर वाचन से तो, बालक, अनुच्छेद को कई खण्डो मे विभक्त और वितरित करके पढता है जो अर्थग्राह्यता की विरोधी परिस्थितिया है।

सस्वर वाचन की अपेक्षा मौन वाचन में पारस्परिक कम समय का लेना भी उसकी उपादेयता और महत्व को प्रकट करता है।

साराश यह कि सस्वर वाचन की अपेक्षा मौन वाचन कही अधिक उन्नत, प्रभावशाली और अर्थपूर्ण विधि है। पिन्टनर और गिलिलैन्ड ने महाविद्यालय, माध्यमिक विद्यालय और प्रारम्भिक विद्यालय के छात्रो पर अपने प्रयोगो को करके, उनकी सस्वर वाचन और मौन वाचन सम्बन्धी उपलब्धियों की तुलनात्मक समीक्षा करते हुए यह बताया है कि—

"निस्सन्देह मौन वाचन ही अधिक अर्थपूर्ण (economical) है; साथ ही हमारे जीवन की दैनिक क्रियाशीलनो के लिये सर्वोत्तम विधि, क्योंकि हमारे वाचन का बहुलाशं मौन ही है।"*

मौन वाचन में शारीरिक और मानसिक व्यापार—सस्वर वाचन की तरह मौन वाचन में भी हमारे शरीर और मस्तिष्क के विभिन्न अवयव क्रियाशील रहते है।

शारीरिक व्यापार मे आँखो की गति का ही विशष महत्व है। नेत्रों की गति में उनकी संख्या, लम्बाई, शब्दों का समूहीकरण, प्रगति और प्रत्यागति की विशेषतायें एक सफल वाचन के लक्षण और शर्त्ते है। शरीर का यह व्यापार आँखों के प्रशिक्षण द्वारा विकसित और उन्नत किया जा सकता है। अर्थात् आँखों की गति में अभ्यास द्वारा वृद्धि लायी जा सकती है। जिससे वे एक ही छलाँग (Jump) में बहुत ज्यादा शब्द-समूहों को दृष्टिगत कर सकें। यह व्यापार बहुत ही क्लिष्ट, दुरूह और विशद है। लेकिन जिस प्रकार टंकण में या टेलीग्राफी में प्रशिक्षण से हाथो की गति का विकास संभव है उसी प्रकार वाचन मे भी नेत्र-गति में द्रुतता लायी जा सकती है।

---

* "......Silent reading is undoubtedly the more economical besides being the method best adapted to the ordinary activities of life since the vast majority of ourr eading is silent." quoted from O'Brien's Book—Silent Reading, p 30.

मानसिक व्यापार उन शब्दों के अर्थग्रहण मे निहित है जिनमें शब्द-छाप का अर्थ के साथ साहचर्य (association) होकर अर्थ ग्रहण की क्रिया होती है। और साथ ही पृथक-पृथक अर्थों का पारस्परिक साहचर्य के द्वारा संपूणभाव मस्तिष्क पर अंकित होते है। यह अर्थ ग्रहण दो बातों से प्रभावित होता है।

(क) लेखक के विचारो को वाचक की चेतना के समीप लाया जाता है और उन दोनो मे पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। यह क्रिया सामिप्य-नियम (law of contiguity) के द्वारा होती है।

(ख) वाचन की यथार्थ प्रक्रिया चेतना की पृष्ठभूमि में होनी चाहिये। ऐसा करने से वाचक का ध्यान लिपिवद्ध विचारो के साथ पूर्णरूप से मनोयोग दे सकता है।

इस प्रकार मानसिक व्यापर से अर्थ ग्रहण मे सरलता और स्पष्टता आती है। इससे शब्दो मे, इसी अर्थ ग्रहण के कारण वाचन में गति आती है और उसका क्षेत्र विस्तृत होता है। मौन वाचन मे एक ओर तो आखा द्वारा तेजी से शब्द–पहचानने की क्रिया होती है और दूसरी ओर मस्तिष्क द्वारा अर्थ ग्रहण होता है। प्रशिक्षण और अभ्यास से इन दोनों क्रियाओं में सुधार और विकास संभव है।

मौनवचन के उद्देश्यः—वाचन के प्रमुखतया तीन उद्देश्य हैं जिनकी चर्चा, पुस्तक में अब तक कई बार विवेचन के क्रम में, की गयी है। वे हैं—तथ्य ग्रहण के लिये वाचन, गुणा-गुण ज्ञान के लिये वाचन और मनोरजंन तथा मानसिक विश्राम के लिये वाचन। मौनवाचन का वास्तविक उद्देश्य इन्हीं तीनों उद्देश्यों की सफल पूर्ति में सन्निहित है। अतएव हम यह कह सकते हैं कि मौनवाचन से —

(क) वाचक में इतनी क्षमता उत्पन्न हो जाय कि उसकी आँखें कम से कम समय में अधिक से अधिक अंश को दृष्टिगत कर सकें। इस प्रकार उनकी गति में किसी प्रकार की रोक न हो और वे धाराप्रवाह रूप से देखने में पटु हों।

(ख) आँखों द्वारा देखा गया शब्दांश जल्द से जल्द मस्तिष्क पर अंकित हो जाय और वह इतना प्रवीण हो कि यथाशीघ्र उनका अर्थ ग्रहण कर सके।

यथा मौन बाचन के उद्देश्य है—वाचन मे अर्थ ग्रहण , प्रवाह तथा गति की विशेषताएँ लाना ।

क्या मौन वाचन से अपेक्षित सुधार संभव है ?

शिक्षा के क्षेत्र मे मौन वाचन का इतना महत्वपूर्ण स्थान इसीलिये है कि उसके उचित शिक्षण से वाचन की गति में उत्तरोत्तर विकास और उन्नति लायी जा सकती है । पाश्चात्य देशों में, अन्य विषयो की तरह, इस विषय पर भी दिनोदिन शोधो, गवेषणा, प्रयोगो और अध्ययन के द्वारा अद्यावधि नये नये निष्कर्ष निकाले जा रहे है जिनकी ओर हमारा ध्यान जाना चहिये । शिक्षक के लिये यह अत्यन्त ही उपयोगी और तथ्यपूर्ण अध्ययन प्रमाणित होगा ।

यह एक खेद का विषय है कि भारतीय भाषाओं मे वाचन सम्बन्धी इस तरह के शोध आदि अभी तक ठोस रूप से कुछ भी नही किये गये है और जो कुछ किये गये है शिक्षको को इसकी अल्प जानकारी है । ऐसी स्थिति में हमें अपने विषय के उचित अध्ययन के लिये पाश्चात्य देशो के योगदान को स्वीकार करना पड़ता है और उन्ही का सहारा भी लेना पडता है। इस दिशा में प्रशिक्षण संस्थाओ और मनोविज्ञों से अग्र योजना प्रारभ करने का विनम्र सुझाव है ।

विदेशों में मौन वाचन सम्बन्धी सर्वेक्षण का यहाँ कुछ हवाला दिया जा रहा है जो सामान्यता हिन्दी जैसी किसी भी विकसित भाषा के लिये सत्य ही है। अमेरीका में ग्रे (Gray), स्टार्च (Starch) एवं कोंर्टिस (Courtis) महोदयों द्वारा प्रस्तुत मौन वाचन सम्बन्धी सर्वेक्षण अध्ययन से यह विदित होता है कि किस प्रकार वाचन की कैसी गति सामान्यत: विभिन्न दर्जो के लड़को मे पायी जाती है ।

वग		२	३	४	५	६	७	८
प्रति मिनट पढे गये शब्दोकी सख्या	स्टार्च	१०८	१२६	१४४	१६८	१९२	२१६	२४०
	ग्रे	९०	१३८	१८०	२०४	२१६	२२८	२४०
	कोर्टस	८४	११३	१४५	१६८	१९१		

इस विवरण से स्पष्ट है कि पाँचवें वर्ग में सामान्यगति २०० शब्द प्रति मिनट पढने की है; सातवें वर्ग में २२८ और आठवे वर्ग मे २४० ।

प्रशिक्षण के बाद इस गति में क्या उन्नति हो सकती है इसका बड़ा ही विशद अध्ययन ब्रूक्स (F. D. Brooks) ने किया है और जिन्होने दोनो

अवस्थाओं में प्राप्त वाचन की गति का यह विवरण प्रस्तुत किया है। उन्होने साथ ही दोनो अवस्थाओं मे अर्थग्रहण के प्रभाव को भी आँका है जिसके बल पर बालक के सही उत्तर देने की योग्यता की भी जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

वर्ग	प्रशिक्षण के पहले		प्रशिक्षण के बाद	
	प्रति मिनट शब्द संख्या	शुद्ध उत्तर	प्रतिमिनट शब्द संख्या	शुद्ध उत्तर
४	११७·८	१७.१	१५२ ३	१९·८
५	१४४·६	२३·६	१८२·६	३३·८
६	१७८·८	३४·६	२१२ ६	३९·८
७	१८३·४	३३·४	२४४·०	४६·५
८	२२८·२	४४·३	२६५·८	५८·५
९	२३५·६	४१·६	३७६·१	४९·२

विवरण से यह स्पष्ट है कि प्रगति किस सीमा तक हुयी है। यदि प्रशिक्षण की अवधि और बढ़ायी जाती तो सम्भव है कि गति में और भी उन्नति आती।

मनोविज्ञ स्टोन (Stone) महोदय ने भी ८वे वर्ग के ३२४ छात्रो पर यह प्रयोग कर देखा कि—

(क) ८८ लडके ऐसे थे जो १००-२०० शब्द तक प्रति मिनट पढ़ सके,
(ख) २०४ ,, ,, ,, २०१-४०० ,, ,, ,, ,,
(ग) २६ ,, ,, ,, ४०१-६०० ,, ,, ,, ,,
(घ) ३ ,, ,, ,, ६०१-७५० ,, ,, ,, ।

इन अध्ययनों से यह विदित होता है कि ८वें वर्ग का औसत लड़का प्रशिक्षण द्वारा ४०० शब्दो को प्रति मिनट पढने की योग्यता बना हो सकता है। हिन्दी शिक्षको को इस दिशा में अपने छात्रो पर वाचन गति का प्रयोग करके देखना चाहिये।

मौन वाचन पर प्रभावकारी परिस्थितियाँ :—मौन वाचन मे गति और प्रवाह लाने के निमित्त जिस प्रशिक्षण और अभ्यास का सकेत किया गया है उसमें स्वभावतः हमारा ध्यान इन परिस्थितियों की ओर जाता है जो मौन वाचन को सफल रूप दे सकती है। ओब्रायँ (O'Brien) महाशय ने इस सम्बन्ध में जो शोध किया है वह अत्यन्त ही सूचनापूर्ण और महत्वपूर्ण है।

उनके अनुसार ११ ऐसी परिस्थितियाँ है जो मौन वाचन को प्रभावित करता है। वे इस प्रकार है :—

(१) मौन वाचन का नियमित अभ्यास होना चाहिये ।

(२) मौन वाचन मे स्वरीकरण (Vocalization) की प्रवृत्ति और प्रकृति को यथाशीघ्र क्रमश: कम किया जाना चाहिये, तथा अन्त मे उसे समाप्त ही किया जाना चाहिये । बालक किसी भी उच्चारणोपयोगी अवयव को, धीरे-धीरे होठ हिलाना आदि—काम मे न लाये ।

(३) अल्प प्रदर्शन अभ्यास (Short-exposure exercises) से बोध का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये । जैसे फ्लैशकार्ड या ऐसे ही चित्र दिखाये जाये और उनका नाम कहवाया जाय ।

(४) वाचन के विषय से बालक पूर्व परिचित हो । जैसे उसकी कहानी या उसका संक्षेप कह देना । अभ्यास काल के बाद यह क्रिया स्वतः दूर हो जायगी ।

(५) आँखो को नियमित, समान रूप से, तालयुक्त गति का अभ्यास डालना चाहिये जिससे वे एक ही छलाग में अधिक से अधिक शब्द देख सके ।

(६) मौन वाचन के पूर्व विषय के अध्ययन का उद्देश्य स्पष्ट होना चाहिये जैसे आदेश जानने के लिये, तथ्य ग्रहण करने के लिये, सूचना जानने के लिये आदि ।

(७) विषय के साथ एकाग्रचित्त होकर वाचन का अभ्यास डालना । इससे आँखों और मस्तिष्क दोनो का प्रशिक्षण होता है ।

(८) विषय के अर्थ ग्रहण की योग्यता बालक में होनी चाहिये । अर्थात् विषय बालक की आयु, रुचि और भाषागत योग्यता के अनुसार मिलना चाहिये । पाठ न अधिक क्लिष्ट हो और न अधिक हल्का । तेज छात्रों और कमजोर छात्रो तथा वर्गो के अनुसार पाठ चुने जायें ।

(९) बालक को यह ज्ञान होना चाहिये कि द्रुतिगति से मौन वाचन करना बहुत ही महत्वपूर्ण है और उसके लिये उसे अभ्यास भी करना चाहिये । ऐसा दृष्टिकोण रखने से ही वह द्रुतिगति से पढ़ने की आदत बनायेगा ।

(१०) गति की जाँच के लिए समय नियन्त्रण (time control) का दबाव देना चाहिये । इसका अर्थ यह है कि दिये हुए समय मे ही किसी

अनुच्छेद का मौन वाचन कराया जाय। समय निश्चित कर देने से बालक में ताजगी और प्रवाह आ सकता है।

(११) वर्ग में प्रत्येक बालक के लिये प्रगति पत्रक रखना चाहिये जिससे उसकी गति के विकास का ज्ञान हो। साथ ही वर्ग भर का भी एक चार्ट हो जिसके द्वारा प्रत्येक बालक वर्ग मे अपनी स्थिति का अन्दाज लगा सके। ऐसा करने से कमजोर लडको को अधिक अभ्यास करने में मदद मिलेगी और सभी लडके स्पर्धाभाव से अपने मे सुधार ला सकते है।

मौन वाचन का प्रारम्भ :—सस्वर वाचन प्रारम्भिक कक्षाओं में आवश्यक है। लेकिन जैसे-जैसे बालक की आयु और वाचन-कला में गति और प्रवाह आ जाय तो इस (सस्वर वाचन) का त्याग करना चाहिये। ऐसा नही करने से हम बालक को एक ऐसे अभ्यास से वंचित रख देगे जिसका वह जीवन भर उपभोग करनेवाला है। (Judd) ने अपने प्रयोगो के अध्ययनसे यह बताया है कि—शिक्षकों को यह बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिये कि ऊपर के वर्गो मे मौन वाचन ही वाचन की सर्वोत्तम और उपयोगी विधि है। उन्हे यह समझना चाहिये कि जिस प्रकार बच्चा अपने पैरो पर खडा होने और चलने की क्रिया सीख लेने के वाद, रेंगना स्वभावतः छोड़ देता है, ठीक उसी तरह बालक को जब मौन वाचन-कला की जानकारी हो जाय तो सस्वर वाचन की आदत को वह स्वभावतः त्याग देना चाहता है और त्याग देता है।" अतएव तीसरे वर्ग के अन्त से मौन वाचन को क्रमिक स्थान देना चाहिये। जो शिक्षक चौथे वर्ग में भी मौन वाचन की जगह सस्वर वाचन को अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान देते है वे उनके (बालको) ग्रहण करने की शक्ति पर स्थायी आघात कर देते हैं। अतएव चौथे वर्ग से, निश्चय रूप से, बालकों मे स्वतन्त्र और गतिपूर्ण मौन वाचन के लिए आदत डालनी चाहिये। मिडिल कक्षाओं और माध्यमिक वर्गो में मौन वाचन का नियमित अभ्यास कराना चाहिये। मौन वाचन की ऐसी क्रमिक योजना से बालकों में अध्ययन (Study) की ओर प्रवृत्त और एकाग्र होने मे पर्याप्त सहायता मिलेगी।

मौन वाचन की विधि :—

मौन वाचन के लिए बालकों को उनकी, आयु, रुचि और योग्यता के अनुकूल पाठ देना चाहिए। यह पाठ उनकी पाठ्य पुस्तक, सहायक पुस्तक या समाचार पत्र या बाहर से भी दिया जा सकता है। ऐसे चुने हुए पाठों

को शिक्षक एक बार सस्वर पढ़ दें। उसके बाद उन्हें मौन वाचन के लिए कहा-जाय। मौन वाचन का समय निश्चित कर देना चाहिए। जब बालक पाठ का मौन वाचन करें तो वर्ग मे किसी प्रकार का स्वर नही होना चाहिए। न शिक्षक ही बोलें और न छात्रों को ही यह आदत लगनी चाहिए। मौन वाचन में वर्ग मे पूर्ण शान्ति (Pin drop silence) रहनी चाहिए।

मौन वाचन के पश्चात् शिक्षक को दो बातों पर ध्यान देना चाहिए। गति के लिए वे स्वतन्त्र रूप से प्रत्येक बालक को मास में एक बार जाँच ले सकते है जिसमे निर्धारित समय के अन्दर बालक ने कितने शब्द पढे यह जाना जाय। यह इस प्रकार हो सकता है। घड़ी की सुई देखकर पढ़ने को आदेश दिया जाय और घडी की सुई देखकर ही उनसे पाठ ले लिया जाय। लड़कों से प्रारम्भ और अन्त के शब्द पूछ लें तो गति की गणना हो जा सकती है। ऐसे नियमित अभ्यास से गति और प्रवाह आ जाना सम्भव है।

अर्थ ग्रहण (Comprehension) के लिए शिक्षक को निम्नाकित विधि अपनानी चाहिए।

प्रारम्भिक स्तर में :—मौन वाचन के बाद शिक्षक पाठ के ऐसे प्रश्न करें जिनसे पाठ के तथ्य मालूम हो सकें। औसत या निम्न श्रेणी के वाचक को ऐसे ही तथ्यो की जानकारी के लिए प्रारम्भिक प्रश्न के उत्तर देने के लिए अभ्यस्त किया जाय। हर प्रश्न ऐसा हो जिसका उत्तर पाते ही अनुच्छेद की गति को एक प्रवाह मिले। इस प्रकार का तथ्य-सम्बद्ध प्रश्न का अभ्यास करने से बालकों में अनुच्छेदों के मौन वाचन में सूक्ष्म पर्यवेक्षण के लिए उचित योग्यता आयेगी।

उन्नत अवस्था में :—मौन वाचन का जब अभ्यास होता जाय तो शिक्षक प्रश्नों की विधि से (Technique of questioning) मौन वाचन में उत्तरोत्तर विकास ला सकते है। अर्थात् तथ्यों की जानकारी वाले प्रश्नों के स्थान पर अब ऐसे प्रश्न पूछे जायें जो पाठ से सम्बद्ध होनेपर भी उनका उत्तर पाठ के वास्तविक शब्द और वाक्यांश में न मिले। इस स्तर में प्रश्न का लक्ष्य यह होना चाहिए कि बालक अपने भाषा-भण्डार से स्वतन्त्र रूप से उन्ही तथ्यों को व्यक्त कर सके, और न कि केवल पाठ के वाक्यांश को ही पकड कर। लेकिन कोई भी प्रश्न अनुच्छेद से बाहर के न हों, क्योंकि यहाँ शिक्षक का उद्देश्य बालकों को प्रसंगेतर विषय पर ले जाना नहीं है, या कोई

नवीन विचार की सृष्टि नही करनी है, वरन् यह देखना है कि बालक पाठ के वास्तविक तात्पर्य को ठीक-ठीक समझ सका या नही और उसकी गहराई मे जा सका या नही। सक्षेप में, उद्देश्य यह है कि "प्रश्न पाठको को पाठ से, शब्दो के ऊपरा सतह् के अर्थ का अपेक्षा, कुछ अधिक ग्रहण करने में सहायता करने के लिए है। उनका शैक्षिक उद्देश्य बालको को निपुण वाचक बनाने के लिए प्रशिक्षित करना है।"*

मौन वाचन की उन्नति के लिए शिक्षक बालक को अनुच्छेद या पाठ के बाहर न ले जाये, वरन् उन्हे उसी मे एकाग्रचित्त होना सिखलावे। "जितना ही समीप से प्रकाश दिया जायगा, यदि अच्छा साहित्य पढ़ा जा रहा हो संवेगात्मक उत्तर उतना ही सच्चा होगा, प्रश्न बालक की कल्पना को तीक्ष्ण करने के लिए है न कि सामान्य और सर्वव्यापक (Over-all) प्रश्नो द्वारा उसे भोथरा (शिथिल) करने को।"

मौन वाचन सम्बन्धी जॉच के लिए मनोविज्ञों ने कुछेक प्रश्न विधियाँ तैयार की है जो हिन्दी शिक्षक के लिए उपयोगी होगी। इनमे सर्व प्रचलित जाँचों का वर्णन कर रहे है।

(क) सत्यासत्य जॉच (True and false test)
(ख) चुनाव जाँच (Multiple choice test)
(ग) रिक्त स्थान पूर्ति जॉच (Fill up the Blank test)

(क) सत्यासत्य जॉच :—पठित अंश के सम्बन्ध मे ऐसे प्रश्न किये जायें जिनमे कुछ तो सत्य उत्तर बतायें और कुछ गलत उत्तर निकाल सकने योग्य हों। बालक ने यदि मौन पाठ ठीक तरह से किया है तो वह सत्य उत्तर देगा। जैसे :—

(क) भारत वर्ष के प्रधान मन्त्री जयप्रकाशनारायण है।
(ख) ,, ,, ,, जवाहरलाल नेहरू है।

---

* "In short the questions are to help the readers to get more from the text than they would have got by keeping to the literal, surface meaning of the words. Their pedagogical purpose is to train pulpils to become efficient readers."

—Teaching the Mother Tongue in Secondary Schools P. Gurrey P. 50.

(ख) **चयन जाँच**:—पाठ के सम्बध में कुछ ऐसे प्रश्न दिये जायें साथ ही उत्तर भी जिनमे से शुद्ध उतर को ही निकालने को कहा जाय ।

भारतवर्ष का पता एक जापानी ने लगाया था
एक डच ने
वास्कोडिगामा ने

(ग) **रिक्त स्थान पूर्ति जाँच**:—पाठ से सम्बन्ध रखने वाले कुछ ऐसे वाक्य दिये जायें जिनका मुख्य शब्द स्थान रिक्त रखा जाय और बालक से ही उन्हें भरने को कहा जाय ।

(i)———के प्रधान मंत्री जवाहर लाल नेहरू हैं (भारतवर्ष)

(ii) भारतवर्ष की राजधानी———है । (दिल्ली)

(घ) पठित अंश का सारांश लिखने को कहा जाय और देखा जाय कि किस बालक ने कितना आवश्यक तथ्य प्रस्तुत किया है ।

(च) पाठ के मुख्य-मुख्य शब्द (Key words) को लिख दिया जाय और बालकों से कहा जाय कि उनके आधार पर अपने पढ़े हुए पाठ का सारांश लिखें ।

इस तरह की अनेक विधियो का सकेत N. B. Smith की One Hundred ways of teaching silent Reading नामक पुस्तक में दिया गया है जिसे सभी भाषा शिक्षकोको अध्ययन कर लेना लाभदायक ही नही, परमावश्यक भी समझना चाहिये ।

मौन वाचन की विवशता:—मौन वाचन के विषय मे प्रायः यह आशंका प्रगट की जाती है चूँकि कि बालक स्वरोच्चारण के साथ नहा पढ़ता है, इसलिये उच्चारण सम्बन्धी दोषा के आ जाने का भय है । लेकिन इसे दूर करने का एकमात्र् उपाय यही है कि मौन वाचन के पहले सस्वर वाचन का पूर्ण अभ्यास हुआ रहना चाहिये । साथ ही, मौन वाचन के अलावे, सस्वर वाचन के भी अनेक अवसर आते है जिनमें उच्चारण सम्बन्धी दोष दूर किये जा सकते है ।

स विषय को अधिक लम्बा न करके केवल गूरी महाशय के इस उद्धरण से समाप्त करते है जहाँ उन्होने विद्यालयो मे मौन वाचन की आवश्यकता पर काफी महत्त्वपूर्ण सुझाव दिया है ।

"हम उन्हे, जो कुछ एक लेखक ने कहा है, उसे पता लगाने में द्रुत और यर्थाथ होने का प्रशिक्षण दे रहे है और जो कुछ भी उसका अभीष्ट है वह इस वाक्यांश में समझा जा सकता है—अर्थ के लिये वाचन। आज शिक्षा के क्षेत्र में इस कुशलता की इतनी सख्त आवश्यकता है कि प्रत्येक विद्यार्थी को इसका कठोर प्रशिक्षण देना चाहिये जो विस्तृत और सघन प्रश्नो को उपयोग मे लाता है।"*

---

*We are training them to be quick and accurate in finding what a write has said, and what he intends shall be understood in that saying: this is 'reading for meaning'. This skill seems to be so badly needed in education to-day that every pupil should be given this srict training that makes use of detailed and intensive questioning." Teaching the Mother-Tongue in Secondary Schools :—P. Gurrey, p 51.

अध्याय ११

लेखन की शिक्षा

सुन्दर लिखावट का क्या महत्त्व है यह व्यक्त करने के लिए महात्मा गाधी के निम्नाकित स्वीकारोक्तियो का उद्धरण प्रसंगानुकूल होगा ।

"मै नही जानता कि कब मुझमें यह विचार आया कि सुलेखन शिक्षा का कोई आवश्यक अंग नही है। लेकिन यह विचार विलायत जाने तक मुझमें विद्यमान था। पीछे जब दक्षिण अफ्रिका मे, मैंने दक्षिण अफ्रिका में ही जन्मे और शिक्षित वकीलों और नवयुवको की सुन्दर लिखावट को देखा तो मुझे अपने पर लज्जा आयी और अपनी भूल पर मैं पछताया। मैंने देखा कि बुरी लिखावट को अपूर्ण शिक्षा का एक चिह्न मानना चाहिए। मैंने अपनी लिखावट को सुधारना चाहा लेकिन अब तक काफी देर हो चुकी थी। मै युवावस्था की अपनी भूल को कभी भी ठीक नही कर पाया। मेरे उदाहरण से सभी नवयुवकों और नवयुवतियों को चेतावनी मिल जाना चाहिए और उन्हें समझ लेना चाहिए कि सुलेखन व्यक्ति की शिक्षा का एक आवश्यक पहलू है।"*

---

* I do not know whence I got the notion that good handwriting was not a necessary part of education, but I retained it until I went to England. When later specially in South Africa, I saw the beautiful handwriting of lawyers and young men born and educated in South Africa, I was ashamed of myself and repented of my neglect. I saw that bad handwriting should be regarded as a sign of an imperfect education. I tried later to improve mine, but it was too late. I could never repair the neglect of my youth. Let every young man and woman be warned by my example, and understand that good handwriting is a necessary part of one's education." The story of my Experiment with truth, M. K, Gandhi.

अतएव स्पष्ट है कि विद्यालयो मे शिक्षकों को छात्रों की लिखावट पर प्रारम्भ से ही उचित ध्यान देना चाहिए। प्रायः यह देखा जाता है कि ध्यान नही देने से उनकी लिखावट में सुडौलता, एकरूपता या अनुरूपता नहीं आती। कभी-कभी तो लिखावट इतनी भद्दी होती है कि उनका पढ सकना भी आसान नही होता। गन्दी लिखावट न केवल आलस्य, वरन् असावधानी, अभ्यास–अभाव तथा कभी-कभी असन्तुलित मस्तिष्क का परिणाम माना जाना चाहिए। अतः निस्सन्देह शिक्षको को विद्यालय में लेखन को एक महत्त्वपूर्ण क्रियाशीलन समझना चाहिए और तदनुकूल उसे स्थान देना चाहिए।

लेखन के उद्देश्य :—

लेखन के निम्नलिखित उद्देश्य है :—

(क) लेखन का प्रथम उद्देश्य बालक को लिखने की उस कला से पूर्णतया परिचित कराना है जिसके द्वारा वह अपने भावो को एक मूर्त्तरूप दे सके; दूसरों के भावों को संग्रह (लिपिबद्ध) कर सके। यह उसे जीवन की एक महत्त्वपूर्ण उपयोगी कला से परिचित कराती है।

(ख) लेखन का दूसरा उद्देश्य यह है कि बालकों में यह कुशलता आ जाय कि वे हिन्दी अक्षरों का वास्तविक स्वरूप चित्रित कर सकें।

(ग) लेखन का तीसरा उद्देश्य यह है कि बालक मे लिखने का ऐसा अभ्यास आ जाय कि वह हिन्दी अक्षरों को स्पष्ट, सुन्दर और सुडौल रूप से लिख सके। उसका लेखन ऐसा हो कि पढ़ने या देखनेवालों पर उसके अक्षरों की बनावट का मनोहर और आकर्षक स्वरूप दिखाई पड़े। ऐसा लेखन वास्तव में बड़ा ही प्रभावशाली प्रमाणित होता है।

(घ) बालक में लिखने का ऐसा यन्त्रवत् अभ्यास हो जाय कि वह गति के साथ धारा-प्रवाह रूप में लिख सके, चाहे वह किसी अनुच्छेद को देख कर लिखे या स्वतन्त्र रूप से रचना कर रहा हो।

लेखन की पूर्वपीठिका :—बच्चे को लिखने का ज्ञान एकाएक नही आ जाता है वरन् उसकी भी एक क्रमिक अवस्था है। इस अवस्था के मुख्य रूप से तीन सोपान हैं :—

(क) सर्व प्रथम बालक मौखिक अभिव्यक्ति के द्वारा अपना शब्द भण्डार पर्याप्त मात्रा में बढ़ा लिया रहता हैं। यह उसके दैनिक कार्यक्रम में बढ़ता है। विद्यालय आते-आते उसके पास कम-से-कम काम चलाने के लिये

शब्दों का पर्याप्त भण्डार हो जाता है। यह उसकी अनुभूति की परिधि के अन्तर्गत होता है (मौखिक अभिव्यक्ति द्वारा)।

(ख) विद्यालय प्रवेश के बाद जब उसे वाचन सिखाया जाता है तो उसे वाक्यों, शब्दों और अक्षरों का परिचय प्राप्त होता है। इस क्रिया से वह पुस्तकों के रहस्य को उसके सर्व प्रचलित माध्यम—भाषा की जानकारी पा लेता है; जो क्रम से विकसित होता रहता है। (वाचन द्वारा)

(ग) ऊपर की दो अवस्थाओं के बाद बालक में लिखने की उत्कट इच्छा का अनुभव होता है। बोलने के अतिरिक्त वह अब अपने भावों को लिखकर व्यक्त करना चाहता है।

लेखन की यही पूर्वपीठिका शिक्षक को लेखन-कला की शिक्षा का उपयुक्त अवसर मानना चाहिए। मौखिक अभिव्यक्ति–वाचन–लेखन का क्रम उस ऐतिहासिक तथ्य को भी प्रगट करता है जिसके द्वारा मानव ने इस कला का ज्ञान प्राप्त किया है। अतएव शिक्षक को भी इस तथ्य का निस्संकोच होकर अनुसरण करना चाहिए। तदनुसार शिक्षक को विद्यालय के सभी उपलब्ध क्रियाशीलनों के द्वारा लिखने की उत्कट इच्छा को उत्पन्न करने के लिए मौखिक अभिव्यक्ति और वाचन की क्रियाएँ सम्पादित कर देनी चाहिए। इसके बाद ही लेखन की उचित पृष्ठभूमि तैयार की जा सकती है। महात्मा गांधी ने भी कहा है कि—"हाथ के पहले आँखें, कान तथा ज़ुबान आती है। लिखने के पहले पढ़ना और वर्णमाला के अक्षरों के लिखने के पहले चित्रांकन आता है। यदि उस स्वाभाविक विधि को अपनाया जाय तो, बालकों की समझ-शक्ति को वर्णमाला के प्रशिक्षण से कुण्ठित करनेवाले के लिए की अपेक्षा उनकी समझ शक्ति के विकास के लिए अत्यन्त ही उत्तम अवसर मिलेगा।" अतएव शिक्षक को इसके अनुसार लिखने की क्रिया अन्त में करनी चाहिए। *

*"The eyes, the ears, and the tongue come before the hand. Reading comes before writing and drawing before tracing the letters of the alphabet. If this natural method is followed, the understanding of the children will have much better opporturity of development than when it is under check by beginning the children's training with the alphabet." All Men are Brothers, (UNESCO), p 157.

लेखन की अवस्थाएँ :—वास्तविक लेखन की तीन अवस्थाएँ है जिनकी ओर शिक्षक का ध्यान जाना चाहिये। सर्वप्रथम उन्हे इसका ज्ञान होना चाहिए कि बालक को लिखने सम्बन्धी शारीरिक अवयवो—हाथो, आँखो और अन्य सम्बद्ध मांस पेशियो का उचित प्रशिक्षण हो गया है। उसके बाद उन्हें यह भी समझ लेना चाहिये कि लड़के अक्षरो को पर्य्यवेक्षण के द्वारा पहचानने के अभ्यस्त हो गये है। यदि लड़के अक्षरो को पहचान नही पाये तो लिखने के लिए उचित पृष्ठभूमि तैयार नही समझना चाहिए। सबसे अन्त मे बालकों को अक्षरों के पहचानने के बाद लिखने का वास्तविक कार्यक्रम प्रारम्भ करना चाहिए तथा उसका नियमित अभ्यास करना चाहिए। इन तीन अवस्थाओं का अध्ययन यह प्रमाणित करता है कि शिक्षक को लिखने सम्बन्धी क्रिया-शीलनो (Action relating to writing) को यथावत प्रारम्भ करना चाहिये। निम्नांकित अनुच्छेदों में इन्हीं क्रियाशीलनों का वर्णन किया गया है।

(१) **शारीरिक अवयवों का प्रशिक्षण :—**यह बात सत्य है कि विद्यालय आने के पहले बालक अपने हाथों, आँखों, तथा अन्य मांसपेशियों का, जिनकी लिखने में आवश्यकता आती है, बराबर खेलने या अन्य काम में अभ्यास कर लिया रहता है। विद्यालय में भी अनेक ऐसे कार्यशीलन हैं जिनके द्वारा उनका विशेष अभ्यास और पारस्परिक समायोजन (Co-ordination) भी हो जाया करता है, और हो जाना चाहिये। यह काम विद्यालय के खेल के सामान, पढ़ने के सामान आदि के इधर-उधर हटाने और यथास्थान रखने में हो जाया करता है।

इनके साथ ही, यह भी आवश्यक है कि शिक्षक को लड़कों के इन अवयवों के प्रशिक्षण और उन्हें लेखन के प्रति आकृष्ट करने के लिये शैक्षिक साधनों का उपयोग करना चाहिये। यह कार्य बालक के चित्रांकन सम्बन्धी क्रियाकलापों और अभ्यासों से ही संभव है। अतएव शिक्षक बालक को वर्ग की दीवालों के श्यामपट पर रंगीन खल्ली से अपने मन से स्वतंत्र रुप से चित्र बनाने का अवसर दें। बाल वर्ग या प्रथम वर्ग में अन्य वर्गो की तरह दीवाल में चारों ओर श्यामपट की व्यवस्था बहुत ही उपयोगी होगी। इसके अलावे, वर्ग के एक कोने मे बालू का ढेर रखा हो जहाँ बालकों को अपने मन से लकीरें खीचने के लिए छूट दी जानी चाहिये। खेल की घंटी के अतिरिक्त, वर्ग के बाहर भी बालू के ढेर या मिट्टी के ढेर में इस प्रकार

का चित्राकन का अभ्यास कराया जाना चाहिये । इस प्रकार के अभ्यासों से बालकों मे एक ओर तो अचेतन में ही लिखने की रुचि की भावना का विकास होगा; दूसरी ओर उनके लेखन वाले अवयवों में काफी दृढता आयगी। उनकी सृजनात्मक प्रवृत्ति (Creative instinct) तथा क्रियात्मक शक्ति का भी ज्ञान विस्तृत होगा।

(२) **अक्षरों का पहचानना** :—जब लड़के अक्षरों को पहचान सके तो इस अवस्था मे शिक्षको को सभी उपलब्ध अवसरों को उपयोग मे लाना चाहिये । इसके लिये मेरिया मान्तेसरी के शैक्षिक साधनों (Didactic apparatus) का उपयोग बडा ही प्रभावपूर्ण प्रमाणित हुआ है। इस विधि के अनुसार काठ के छोटे-छोटे टुकडो पर हिन्दी वर्णमाला के अक्षर कटे हुए हो या काठ के टुकडों पर जमाये हुए भी हो जो उभरे हों। ऐसे उभरे अक्षरो को छूकर छात्र पहचान सकते है। टीन के भी कटे हुए टुकडे होते हैं जिन्हे देखकर और छूकर भी अक्षरो को पहचाना जा सकता है । वह इन मॉडलो को छूकर अक्षर ज्ञान प्राप्त कर सकता है ।

किन्डरगार्टेन बक्सो मे भी मन्दिर-मस्जिद के मॉडल तथा अक्षरों के भी मॉडल का उपयोग उक्त रीति से किया जा सकता है। इन उपकरणों को छात्र छूकर भी पहचान सकता है।

इन मॉडलों के अतिरिक्त, छात्र चित्रो और रंगीन चार्ट्स तथा पुस्तकों के अक्षरों का भी क्रमशः पहचान-अभ्यास कर सकता है। इसकी उत्तम विधि यह है कि शिक्षक किसी अक्षर को लेकर लड़कों के सामने दिखाता है लड़के भी अपने सेट (Set) में से वैसा ही अक्षर निकालते है। श्यामपट पर भी शिक्षक अक्षर लिख कर बालकों द्वारा पहचान करा सकता है। पहचानने की इस क्रिया का काफी अभ्यास कराना चाहिये जिससे बालक अब बिना किसी की सहायता के भी स्वतंत्र रुप से अक्षर पहचानने लगें और यदि उनसे कहा जाय कि अमुक अक्षर निकालो तो वे उस अक्षर को निकालने में किसी प्रकार की कठिनाई अनुभव न करें।

पहचानने के बाद अब उन्हे अक्षर रचना का ज्ञान देना चाहिये। बालू पर उनसे अक्षर लिखवाया जाना चाहिये। धान, गेहूं, जौ आदि बीजों का उपयोग भी इस काम के लिए किया जा सकता है। अर्थात् इनके सहारे भी अक्षर लिखवाया जाना चाहिये। अंगुली द्वारा हवा में भी अक्षर बनाने का अभ्यास होना चाहिए। यह सब इसलिये किया जाना चाहिये कि

अंगुलियों का क्रियात्मक अभ्यास किया जाय। अक्षरो को लिखने का क्रम इस प्रकार भी किया जा सकता है।

(क) छोटे-छोटे काठ या टीन के टुकडों को, जिन पर अक्षर काटे हुए हों, श्यामपट, गत्ते, कागज, बालू, राख, और मिट्टी पर रखकर अक्षर उतारना। इन उखड़े हुए अक्षरों को रंगना।

(ख) ऐसे काठ के टुकड़े—जिनकी सतह पर अक्षर खुदे हों—पर स्याही पोत कर कागज पर उखाड़ना जिसे छपाई की संज्ञा दी जा सकती है।

(३) **अक्षर लिखना** :—उक्त विधियो से बालकों को अक्षर पहचानना और उनका चित्र उतारना आ जाय तब उन्हे वास्तविक अक्षर लिखने की कला से अवगत कराया जाना चाहिये। इसके लिये इन साधनों को उपयोगी माना जाता है।

(क) गत्तों से कैंची द्वारा अक्षर काटकर निकालना। इसके लिये पहले गत्ते पर अक्षर लिख लिया जाना चाहिये।

(ख) कागज पर पेन्सिल से अक्षर बनाकर उनको रंगीन पेन्सिल से रंगना।

(ग) चित्र रंगना और उनके नीचे उनका नाम लिखना।

(घ) ग्राफपेपर पर अनुपात से वर्गों के भीतर अक्षर लिखना।

(च) तीन लाइन वाली कापी का प्रयोग करना चाहिये, जिसकी ऊपरी लाइन में शिक्षक सुन्दर और सुडौल अक्षर लिख दें। और उनके नीचे की पंक्तियों में लड़के देख कर शुद्ध सुन्दर और सुडौल अक्षर तदनुरुप लिखें।

(छ) ऐसी कापियों का उपयोग जिनकी ऊपर की पंक्ति पर अक्षर छपे हों और लड़के उसके नीचे उन्हें देखकर लिखें।

लिखने की इस क्रिया मे यह ध्यान रखना चाहिये कि लडके को पहले पेन्सिल का ही अभ्यास कराया जाय। पर्याप्त अभ्यास के बाद, स्याही का प्रयोग बताना चाहिये।

कुछ शिक्षा शास्त्रियों ने इस विषय पर भी विचार प्रकट किया है कि अक्षरों के लिखने का क्या क्रम हो। अर्थात् कौन से अक्षर पहले सिखाये जायें और कौन पीछे। इस सम्बन्ध में सिद्धान्त का मतभेद है।

(१) कुछ लोगों के अनुसार बालक जब लिखने की क्रिया करता है तब वह गोल-गोल आकार की चीजें बनाता है। यदि आप ३-४ वर्ष के बालक के आकृति-निर्माण क्रियाकलापो को देखें तो पता चलेगा कि वह अंगुली, लकड़ी, पेन्सिल, चॉक, आदि से वृत्ताकार आकृति बनाता है। अतएव हिन्दी वर्णमाला के उन वृत्ताकार अक्षरों का ही क्रम पहले सिखाना चाहिये, जैसे क, ब, छ, ड, आदि और पीछे खड़ी पाई वाले अक्षर जैसे र, ण, ग, आदि।

(२) इसके विपरीत कुछ लोगों का विचार है कि बालक सबसे पहले खड़ी लकीर ही खीचना प्रारम्भ करता है, न कि वृत्ताकार आकृति। अतएव हमें ऊपर की विधि का ठीक उल्टा कार्यक्रम अपनाना चाहिये।

एक कुशल एवं अनुभवी शिक्षक इन विवादों मे न पड़ कर एक व्यावहारिक विधि अपनाता है और उन्हीं अक्षरों के लिखने का ज्ञान पहले देता है जो सरल, आसान और बिना किसी कठिनाई के लिखे जा सके। यहाँ हम खड़ी पाई वाले और वृत्ताकार अक्षरों का वर्गीकरण शिक्षक के सुभीते के लिए कर देते है:—

खड़ी पाई वाले अक्षर :—

ग म भ ज्ञ

प ष फ

त त्र न ल

र ण स श

अ आ अं अः ओ औ

वृत्ताकार आकृति वाले अक्षर :—

व ब ख क

य थ घ ध छ

च ज

ह ढ द ट

ड ड़ ङ इ ई ह

ढ ढ़ ए ऐ उ ऊ

क्ष त्र ज्ञ

यह क्रम इस आधार पर रखा गया है कि एक अक्षर के लिख लेने के बाद उन में कुछ हेर-फर के साथ उस वर्ग के अन्य अक्षर भी बनाये जा सकते है। जैसे 'ग', के दोनो लकीरों को मिला कर 'म', और फिर 'म' के ऊपर शीर्ष

का भेद प्रकट कर 'भ', तथा इसी प्रकार भ को भी 'झ' बनाया जा सकता है। य था 'प' ष, फ आदि।

स्वतंत्र अक्षरों की लिखावट आ जाने के बाद लड़कों को क्रमशः सयुंक्ताक्षर। की लिखावट का ज्ञान देना चाहिये। यथा

प त।
प त ता।
पत्ता गिरा।
पेड़ से पत्ता गिरा।

लेखन में ध्यान देने योग्य बातें :—

शिक्षक को बालकों के लिखने में निम्नाकित बातो पर ध्यान देना चाहिये जिससे प्रारम्भ मे ही सुलेखन की आदत पड़े और पीछे चल कर बालक किसी प्रकार के लेखन दोष का शिकार न हो जाय। वे है :—

(क) बैठने का आसन (Posture)
(ख) लेखनी पकड़ने का अभ्यास
(ग) लेखन सामग्री का उपयोग

(क) बैठने का आसन (Posture) :—

लिखने में सबसे पहला प्रश्न बालक के आसन का है कि वह किस प्रकार बैठता है। प्रायः लड़के आगे की ओर झुक कर लिखने का अभ्यास कर लेते है। इससे कई शारीरिक विकार उत्पन्न होते है। जैसे आगे की ओर झुकने से मेरूदण्ड (spinal chord) के टेढ़े होने का भय बना रहता है। साथ ही अन्य अवयवों के तनाव के कारण लिखने में भी अधिक श्रम करना प ता है। और छोटी-छोटी तन्तुओं मे भी विकार उत्पन्न हो सकता है। गर्दन भी टेढ़ी हो सकती है। इस सम्बन्ध में शिक्षक को स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों का पालन करना चाहिये। इसके अभाव मे न केवल शारीरिक दोष वरन् मान.सक विकार भी उत्पन्न होने की आशंका सदा बनी रहती है।

भारतवर्ष की पुरानी परम्परा के अनुसार प्रारम्भ से वालक को बायाँ पैर मोड़ कर और दायें पैर के ठेहुने को मोड़ कर उसके पास स्लेट या तख्ती रख कर लिखने का अभ्यास कराया जाता है। इस आसन से मेरुदण्ड टेढ़ा नहीं हो सकता है। क्योंकि ठेहुने की आकृति उसे तान कर रखती है। लेकिन शनैः शनैः लिखने के इस आसन का त्याग हो रहा है। प्राइमरी

स्कूलों में भी प्रारम्भ से ही दावात कलम का प्रयोग चल पडा है। फलतः डेस्क या ऐसी चीजो के अभाव में बालकों को झुक कर लिखने का अभ्यास पडता जा रहा है। पर इसका कोई भी निदान नही निकाला जा रहा है। अर्थाभाव और स्थानाभाव के कारण राज्य द्वारा सभी विद्यालयों मे बैंचों और डेस्को का प्रयोग अभी एक कल्पना मात्र है। अतएव लिखने के उचित आसन के लिये शिक्षकों को स्थानीय सहयोग प्राप्त कर डेस्को का भी प्रबन्ध करना चाहिये। प्राथमिक कक्षाओ मे मिट्टी के छोटे-छोटे चबूतरे डेस्क की जगह बनवाये जायें जिससे बालको के बैठने का आसन ठीक बन सके। ऊपर की कक्षाओ में बेंच और डेस्क का प्रबन्ध है लेकिन प्रबन्ध पर्याप्त मात्रा मे होना चाहिये।

जिस कागज पर लडका लिख रहा है उसकी आँखो से क्या दूरी है यह भी विचारणीय है। यदि लिखने के समय अँगुलियों और कन्धों का मेल कागज से १००° का कोण बनाना है तो उचित आसन मानना चाहिये। इसमे ९०°–११०° की छट दी जा सकती है लेकिन उससे अधिक नही। नेत्र और पढी जानेवाली पुस्तक या लिखी जानेवाली कापी की दूरी १४" से १६" तक हो तो आखो को कोई विशेष श्रम नही करना पड़ता।

छोटे-छोटे बालको को वीरासन मे बैठना चाहिये। बडे लड़को के लिये, जहां डेस्क और बेच का प्रयोग होता हो—यह उचित है कि पांव टेबुल या डेस्क के नीचे के पायदान पर रखकर सीधा बैठे। कुर्सी या बेंच पर पैर रखकर, या पैर मोडकर, पालथी मारकर या कुर्सी में अड़कर लिखना आसन सम्बन्धी दोष होने के कारण लेखन दोष पैदा करते हैं। इन दोषों से लड़कों को बचना चाहिये।

(ख) कलम पकड़ने का तरीका :—छोटे-छोटे लड़को के लिखने का काम सरकण्डा, या नरकट की कलम से प्रारम्भ करना चाहिये। इनसे लिखावट में सुडौलता, एकरूपता और अनुरूपता आती है। कलम अधिक मोटी या अधिक पतली नही होनी चाहिये। वह ऐसी हो जिसे अंगूठा, तर्जनी और मध्यागुली पकड़ सकें। उसकी खत ऐसी तिरछी कटी हो जिससे अक्षरों की बनावट साफ और सुडाल हो। खत का कटाव २२·५° कोण पर हो। लड़के दाहिने हाथ से कलम पकड़े और कापी की दाहिनी ओर स्याही की दावात रहे। शिक्षक यह ध्यान देवें कि बालक उचित मात्रा में स्याही लेता हैं और उसकी कलम की जीभ एक रूप से कागज को छूती है। कुछ लड़के बायें हाथ से

कलम पकड कर लिखते है। ऐसे लड़का को धीरे-धीरे दाये हाथ से पकड़ने की आदत लगायी जाय।

इधर १५-२० वर्षो के अन्दर छोटे-छोटे लड़कों को भी फाउण्टेनपेन का प्रयोग प्रारम्भ से ही करने की आदत पड गयी है। प्रारम्भ मे ही पेन से लिखना, मेरी समझ से, अक्षरो की सुन्दरता के लिये उचित नही। कम-से-कम पाचवें वर्ग तक पेन का प्रयोग बन्द कर देना चाहिये और उन्ही साधनों-सरकण्डे की कलम का उपयोग निर्धारित किया जाना चाहिये। पीछे कलम-पेनहोल्डर का प्रयोग होना चाहिये। माध्यमिक कक्षाओ मे पेन का प्रयोग प्रारम्भ किया जा सकता है क्योकि तब तक सुलेखन का काफी अभ्यास हुआ रहता है।

लिखावट में शिक्षक को यह भी ध्यान रखना चाहिये कि कागज की बायी ओर एक चौथाई हासिया छोड़ा जाता है। कागज के ऊपरी हिस्से में भी कुछ स्थान खाली रहना चाहिये (कम-से-कम $\frac{1}{2}$")। दो अक्षरो की दूरी कम-से-कम एक खड़ी पाई की जगह, दो शब्दों के बीच का स्थान कम-से-कम एक अक्षर और दो वाक्यों के बीच की दूरी कम-से-कम एक दो अक्षरोंवाला शब्द का स्थान अवश्य होना चाहिये। वाक्यों के अन्दर विरामों के चिह्नो के दोनों ओर उचित स्थान खाली रहना चाहिये। ऊपर नीचे की पंक्तिया इस प्रकार सीधी हो मानो दो समानान्तर रेखायें चल रही हो। इसके लिये शिक्षक प्रारम्भ से पन्नों पर पक्ति दिलाकर लिखवाने का अभ्यास कराय। पंक्ति किये गये कागज के एक पन्ने को नीचे कर लिखने का भी अभ्यास कराया जाता है। इस पुस्तक के अन्त में लिखावट का एक नमूना दिया गया है जो अवलोकनीय है।

लेखन के प्रकार :—लेखन के तीन प्रकार हैं—

(क) अनुलिपि (Caligraphy) (ख) प्रतिलिपि (Transcription or copying) (ग) श्रुतिलिपि (Dictation)।

(क) अनुलिपि :—अनुलिपि वह प्रकार है जिसमें कापी पर छपे या शिक्षक द्वारा लिखे शब्दों या वाक्यों को देख-देखकर बालक नीचे की पंक्तियों मे स्वयं लिखता है। यह लेखन की प्रारम्भिकावस्था है।

(ख) प्रतिलिपि :—यह दूसरी अवस्था है जब बालक स्वतन्त्ररूप से अपनी कापी पर किसी अनुच्छेद को देखकर नकल करता है। इसका मुख्य उद्देश्य यह होता है कि बालक साफ-साफ सुन्दर और सुडौल अक्षरों में लिख

सके। यहां छपी लिपि के रहने से वही आदर्श-सा मान लिया जाता है। इसे प्रतिलेख भी कहते हैं।

(ग) **श्रुतिलिपि** :—यह लेखन की तीसरी अवस्था है जहां न तो कोई आदर्श सामने छपा या लिखा है। यहाँ केवल वक्ता बोल रहा है और उसे सुनकर बालक को लिखना पड़ता है। इसीलिये इसे श्रुतिलिपि या श्रुतिलेख भी कहते है। यहा न केवल अक्षरों की सुन्दरता, सुडौलता या स्पष्टता का ही उद्देश्य है वरन् शुद्ध-शुद्ध और समझकर लिखने की क्रिया भी अभीष्ट है।

लेखन की जिन तीनों अवस्थाओं का ऊपर वर्णन किया गया है वास्तव मे विद्यालय में बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी है। शिक्षको को इनके सफल सम्पादन मे हर उपलब्ध साधन को प्रयोग मे लाना चाहिये।

अध्याय १२

श्रुतिलिपि और अक्षर विन्यास की शिक्षा

पिछले अध्याय मे लिपि के प्रकारों की चर्चा की गयी है। उसमें लिपि के एक भेद श्रुतिलिपि पर इस अध्याय में विचार किया जा रहा है। वास्तव में लेखन की यही उत्तम, उन्नत और पूर्ण अवस्था है।

(क) श्रुतिलिपि के उद्देश्य :—जिस प्रकार उच्चारण की शिक्षा से उच्चारणोपयोगी अवयवों का, वाचन से आँखों का प्रशिक्षण होता है, उसी प्रकार श्रुतिलिपि से कानों का प्रशिक्षण हुआ करता है। अतएव श्रुतिलिपि का पहला उद्देश्य यह है कि बालक को श्रवण प्रक्रिया में सावधानी और सतर्कता का ज्ञान हो; वह स्पष्ट और शुद्ध-शुद्ध सुन सके।

(२) बालक मे सुनने और लिखने की तन्मयता का अभ्यास हो जाये और वह इस प्रकार लोगो के वक्तव्य को साफ-साफ लिख सके।

(३) बालक मे सुने हुए वक्तव्य या भाषण को शुद्ध-शुद्ध लिखने की क्षमता और अभ्यास हो। साथ ही उसमें लिखने की उचित गति का भी अभ्यास पडे जिससे वह धाराप्रवाह वक्तव्यों को भी साफ-साफ लिख सके।

(४) बालक में प्रायः यह देखा जाता है कि तेज गति के साथ लिखने से अक्षरो मे सुडौलपन और स्पष्टता नही आती। फलतः गन्दी लिखावट आ जाती है। श्रुतिलिपि का यह स्पष्ट उद्देश्य है कि गति के साथ भी, बालक में साफ-साफ पढ़ने योग्य लिखने की आदत पड़े।

(५) श्रुतिलिपि की यान्त्रिकता (The mechanics of dictation) ऐसी है कि बालक किसी की कही हुई बात को अपने कान से सुनता है। उसका संचार मस्तिष्क तक होता है। तब मस्तिष्क ग्रहण करके हाथ तथा लेखन के अन्य अवयवों को लिखने का आदेश देता है। अन्त मे लिखे हुए अक्षरों को आँखें देखकर स्वीकार करने की छाप देती हैं। यदि अक्षर अशुद्ध और अस्पष्ट होंगे तो आँखें उन्हें स्वीकार नहीं कर सकतीं। तब उनमें सुधार किया जाता है।

श्रुतिलिपि का कार्यशीलन इन सभी क्रियाओं को एक साथ ही करता है। इसका सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि स्मरण-शक्ति (Reproductive memory) के अनुसार पुनः उपस्थापित करनेवाली क्षमता का विकास और अभ्यास हुआ करता है। यह क्षमता जितनी ही अधिक प्रशिक्षित और विकसित होती है, गलती की उतनी ही कम सम्भावना होती है। अतएव श्रुतिलिपि का यह भी एक उद्देश्य है कि स्मरण शक्ति का विकास करे।

(६) श्रुतिलिपि के अभ्यास से बालक को शब्दो के अक्षर विन्यास (Spelling) की शिक्षा मिल जाती है। कौन-सा शब्द किस प्रकार लिखा जायगा यह ज्ञान प्राप्त कर लेने से बालक अक्षर विन्यास सम्बन्धी गलती कदापि नही कर सकेगे।

"श्रुतिलिपि का मुख्य उपयोग इसलिए होता है कि उसके द्वारा बालकों को सावधानी से सुनने और ग्रहण करने तथा उचित गति से लिखने का प्रशिक्षण मिल जाता है।

श्रुतिलिपि की विधि :—

शिक्षक को श्रुतिलिपि की यह विधि अपना कर नियमित रूप से बालकों में अभ्यास कराना चाहिए।

(क) लड़के लेखन के आसन का अभ्यास नियमानुसार करें।

(ख) उनके पास लेखन सामग्री—पेन्सिल या कलम और कागज हो।

(ग) वे श्रुतिलिपि के लिए तैयार हो जायें अर्थात् शिक्षक को सुनने के लिए सतर्क हो जायें। श्रुतिलिपि के लिए जो विषय चुना जाय वह पाठ्य पुस्तक का भी हो सकता है या बालकों की आयु-समूह के अनुकूल अन्य पुस्तकों का भी।

(घ) शिक्षक अनुच्छेद में आये कठिन शब्दों को श्यामपट पर साफ-साफ लिख दें जिनमें पीछे का बैठा बालक भी उसे देख सके। तदनन्तर श्यामपट को ढाँक दिया जाना चाहिए।

(च) श्रुतिलेख के अनुच्छेद को शिक्षक एक बार वर्ग में पढ़कर सुना दे। यहाँ सस्वर वाचन सम्बन्धी सभी नियमों—लय, गति, यति, विराम-स्थलो के अनुसार ठहराव आदि—का ध्यान रखना चाहिए।

(छ) तब अनुच्छेदो को साफ-साफ स्पष्ट रूप से पढ़ा जाय; अब इसमें श्रुति की गति से लिखाया जाय। पूरे वाक्य के बदले अनुच्छेद वाक्य-खण्डों में धीरे-धीरे पढ़ा जाय। कठिन शब्दों को पुनः पढ़ा जाय। लिखाने में इस बात

का ध्यान रखना चाहिये कि कोई शब्द या वाक्य-खण्ड अधिक से अधिक तीन बार तक पढा जा सकता है। यह क्रमशः ग्रहण, स्मरण, एवं लेखन की शक्ति के प्रशिक्षण के लिए किया जाना चाहिए।

(ज) जब अनुच्छेद का वाचन समाप्त हो जाय तो फिर एक बार उसे पढ़ दिया जाय जिसमें लड़के उसे देखकर, यदि समय मिला तो, अशुद्ध स्थान को शुद्ध, या रिक्त स्थान की पूर्ति कर लें।

(झ) तब शिक्षक श्यामपट पर लिखे कठिन शब्दों को लड़कों के सामने कर दें जिससे वे उन शब्दों को अपनी कापियों में अशुद्ध रहने पर शुद्ध कर लें।

(त) उपरोक्त क्रियाओं के बाद श्रुतिलेख के शुद्धिकरण का समय आता है। शुद्धिकरण की सबसे प्रभावशाली विधि यह है कि लड़के अपने लेख को पुस्तक से देखकर स्वयं शुद्ध कर लें। इस क्रिया से उनमें आत्म-विश्वास की भावना दृढ़ होती है।

(थ) आपस में सभी साथियो के बीच कापियों का अदला-बदली करके भी शुद्धिकरण हो सकता है।

(द) यदि छात्रों की संख्या कम हो तो शिक्षक स्वयं भी शुद्धिकरण का काम कर सकते हैं।

(ध) अशुद्ध शब्दों को शुद्ध रूप से कई बार लिखने का अभ्यास कराया जाना चाहिये।

(न) यदि अनुच्छेद गलतियों से भरा है तो उसे पुनः लिखने का आदेश दिया जाना चाहिए।

श्रुतिलेख की उपयोगिता और उससे लाभ :—(१) श्रुतिलिपि का सबसे बडा लाभ यह है कि कानों का प्रशिक्षण हो जाता है जिसमें व्यक्ति सतर्क होकर सुनने और बातों को ग्रहण करने का अभ्यस्त हो जाता है।

(२) श्रुतिलिपि के अभ्यास से लिखने की गति में वृद्धि आती है।

(३) सुने हुए वाक्य, वाक्याश या वाक्यावली के आशय को समझने का क्षमता बढ़ जाती है।

(४) श्रुतिलिपि से अक्षर विन्यास के दोष दूर हो जाते है।

श्रुतिलिपि का जीवन में सामान्यतया सभी को उपयोग करना पड़ता है। ऐसे अवसर हमें बराबर आते हैं जब औरों के कहे हुए विचारों को

एकाएक लिपिबद्ध करना पड़ता है। श्रुतिलिपि के अभ्यास से ऐसा व्यक्ति पहले से ही तैयार रहता है और उसे किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती। व्यवसाय के रूप में जिन लोगों को समाचार पत्रो मे संवाददाता (Reporter) का काम सम्भालना है, उन्हे इसकी सबसे बड़ी उपयोगिता समझ मे आती है। सभा में बैठकों मे सवाददातागण अपनी इसी कला के बल पर भाषण का आशय लिख लेते है। संवाददाता गण यंत्र की तरह नही, वरन् अपने विचार और निर्णय शक्ति के अनुसार ही—सभाओं की कार्यवाहियों को, जो घण्टों हुआ करती हैं—छोटे-छोटे अनुच्छेदों मे आवश्यकता और महत्व के अनुसार लिख देते है।

जिन लोगों को आशुलिपिकों (Steno grapher) का कार्य करना है उनके लिये श्रुतिलिपि का प्रशिक्षण बड़ा ही उपयोगी और महत्वपूर्ण है। वे अपने पदाधिकारियो के पास बैठ कर प्रतिमिनट १५० शब्दों तक का भी श्रुतिलेख (Dictation) लिख सकते है। इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रुतिलेख का बालक के भावी जीवन मे कुछ न कुछ महत्वपूर्ण स्थान अवश्य रहता है। अतएव उसकी शिक्षा की समुचित व्यवस्था विद्यालयों में होना चाहिये।

अक्षर विन्यास
(Speling)

श्रुतिलिपि के ही प्रसंग में अक्षर-विन्यास का भी वर्णन करना वांछनीय होगा; क्योंकि श्रुतिलिपि की अशुद्धियों में सामान्य रुप से अक्षर-विन्यास की ही अशुद्धि पायी जाती है।

जिन भाषाओ मे वर्ण के अनुरुप उच्चारण या उच्चारण के अनुरूप वर्ण नहीं है जैसे अंग्रेजी, वहाँ विन्यास की गलतियां ज्यादा हुआ करती है। हिन्दी में ऐसी बाते नहीं है फिर भी यहाँ अक्षर-विन्यास की गलतियाँ मिलती है और यदि यह कहा जाय कि प्रारम्भिक कक्षाओं से लेकर माध्यमिक कक्षाओं में बहुतायत से, तो किसी प्रकार का आक्षेप नही मानना चाहिये। अक्षर विन्यास की अशुद्धियाँ इस प्रकार पायी जाती हैं।

(क) मात्रा सम्बन्धी दोष :—

शुद्ध	अशुद्ध
रूप	रूप

एक	अेक
उगली	ऊँगली
रूपये	रूपये

(ख) स्वर सम्बन्धी दोष :—

आसू	आसु
परन्तु	परन्तू
ईश्वर	इश्वर
शान्ति	शान्ती
दु:ख	दूख

(ग) व्यंजन सम्बन्धी दोष :—

ऋषि	रिषि
प्रकार	परकार
हृदय	हिरदय
श्रीमान्	सीरीमान
मर्यादा	मरयादा
प्रणाम	परनाम
निष्काम	निश्काम
पुरुष	पुरुश
कष्ट	कश्ट

(घ) अनुनासिक और अनुस्वार सम्बन्धी दोष :—

अक	अन्क
अहिंसा	अहिन्सा
मंगल	मन्गल
संसद	सन्सद

इनके अतिरिक्त अन्य प्रकार की अक्षर-विन्यास सम्बन्धी अशुद्धियाँ नजर आती है जैसे 'खर्चा' का 'खंचा', निर्दोष का 'निंदोष', स्वर्गीय का स्वंगीय, 'मन्त्री' का 'मन्तरी', उद्योग का उदयोग, विद्वान का विदवान, आश्रम का आशरम लिखना। इसी प्रकार अध्यापक का अद्यापक, और भाषा का बाशा लिखने का भी दोष पाया जाता है। विदेशी उच्चारण के प्रभाव से भी अक्षर विन्यास का दोष मिलता है जैसे (Britain) को ब्रतानियाँ, बरतानियाँ

हिमालय को हिमालिया आदि। इस सम्बन्ध में उच्चारण की शिक्षा के अध्याय में उच्चारण सम्बन्धी दोषों के कारण वर्ण भेद का वर्णन किया गया है।

अक्षर-विन्यास की अशुद्धियों का कारण :—

(क) हिन्दी में अक्षर-विन्यास की अशुद्धियों का मूल कारण उच्चारण दोप माना जायगा। उच्चारण के अभ्यास के अभाव मे लड़को में यह अशुद्धि पायी जाती है।

(ख) इसके अतिरिक्त लिपि के अधूरे ज्ञान से भी होता है। जैसे ि के स्थान पर ी; ु के स्थान पर ू लिखना। मात्रा सम्बन्धी शिक्षण से यह दोष दूर हो सकता है।

(ग) असावधानी और जल्दीबाजी से भी लिखने से अक्षर-विन्यास का दोष आ जाता है। असावधानी से बालकों के शरीरावयव क्रमानुसार कार्य करने में प्रशिक्षित नही होते; फलत: असफल हो जाते है, इसलिए यह दोष होता है। शिक्षक को चाहिए कि बालकों में सावधानी और शान्तिपूर्वक लिखने का अभ्यास करायें।

(घ) इसके अलावे श्रुतिलिपि मे वाचन और श्रवण के उचित प्रशिक्षण और अभ्यास के अभाव के कारण भी अक्षर-विन्यास का दोष होता है।

अक्षर विन्यास की गलती कैसे दूर करें :—अक्षर विन्यास की गलती को दूर करने के लिये दो प्रकार के उपाय काम में लाये जा सकते है—**प्रथम** निरोधात्मक (Preventive) और दूसरा सुधारात्मक (Corrective)।

निरोधात्मक उपाय :—इस विधि के अन्तर्गत वे सभी उपाय आते हैं जिनके द्वारा हम प्रारम्भ से ही बालकों में शब्दों के शुद्ध स्वरूप को प्रस्तुत करने का अभ्यास डालते है। ऐसा करने से अक्षर विन्यास के दोष की कोई सम्भावना ही नहीं रहती है। "अक्षर-विन्यास स्मरण की बात है। अतएव जितने अधिक उपायों से शब्द की छाप स्मरण पर दी जायेगी, उसी अनुपात से शुद्ध अक्षर-विन्यास की आदत पड़ेगी।" शब्दों के अक्षर-विन्यास मे मुख्यतया **तीन** प्रक्रियाएँ प्रभावपूर्ण होती है—वे हैं दृष्टि, श्रवण एवं मांशपेशियों की क्रियाएँ। प्रतिलिपि में इन तीनों प्रक्रियाओं के लिये यथेष्ट गुंजाइश है अत: अक्षर-विन्यास की यही विशिष्ट विधि है जिसकी ओर शिक्षक का ध्यान जाना चाहिये।

(क) बालक को प्रारम्भ से ही शब्दों के शुद्ध उच्चारण की उचित शिक्षा देनी चाहिये और उसका नियमित अभ्यास कराना चाहिये। उच्चारण के अध्याय मे इस पर काफी विचार किया जा चुका है।

(ख) बालकों को शान्ति के साथ किसी विषय को पढ़ने का अभ्यास कराना चाहिये। असावधानी से पढ़ने और लिखने का अभ्यास करने से ही अक्षर-विन्यास की गलतियाँ हुआ करती हैं यह हम ऊपर कह आये हैं।

(ग) लिपि के तीन भेदों—अनुलिपि, प्रतिलिपि और श्रुतिलिपि का पर्याप्त अभ्यास कराया जाना चाहिये। इनमें भी प्रथम दो से शुद्ध अक्षर-विन्यास की आदत पड़ सकती है। श्रुतिलिपि से इसकी उपलब्धि जांच की जा सकती है। श्रुतिलिपि के सम्बन्ध मे बोर्ड आफ एडुकेशन, लन्दन का यह उद्धरण अवलोकनीय है—

"श्रुतिलिपि प्रसंगवश अक्षर-विन्यास की जांच का एक साधन हो सकती है, वह स्वयं ही अक्षर-विन्यास शिक्षण का माध्यम नहीं हो सकती।" इसलिये अक्षर-विन्यास के लिये वाचन और प्रतिलिपि पर उचित ध्यान देना चाहिये।

(घ) वर्ग में अक्षर-विन्यास प्रतियोगिता की व्यवस्था की जा सकती है जिसके द्वारा शब्दों के शुद्ध अक्षर-विन्यास का अभ्यास कराया जाता है। इस विधि में लड़कों को अक्षर विन्यास के लिये शब्द दिये जाते हैं। जो लड़का या वर्ग का दल कम-से-कम गलती करता है वही विजयी होता है।

(च) श्यामपट पर शब्द लिख दिया जाय और फिर छिपा दिया जाय लड़कों को तब अक्षर-विन्यास के लिये कहा जाय। स्मरण से शब्दों के शुद्ध अक्षर-विन्यास की आदत पड़ेगी।

(छ) शब्दों के अक्षरों को उलट फेर (Jumbled) कर रख देने के पश्चात् लड़कों द्वारा उन्हें शुद्ध करने के लिए कहा जाय।

(ज) शब्दों के किसी अक्षर को हटा दिया जाय और बालकों से उस रिक्त स्थान की पूर्त्ति के लिये कहने से भी अक्षर-विन्यास का अभ्यास होता है।

(झ) एक लम्बा शब्द लिख दिया जाय और लड़कों द्वारा प्रत्येक अक्षर पर एक शब्द बनाने और लिखने को कहा जाय।

(ट) शब्द के अक्षरों के परिवर्तन से नये-नये शब्द बनाने का अभ्यास कराया जाय।

(ठ) लड़कों द्वारा अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता का अभ्यास कराया जाना चाहिये। इसमें लयात्मकता के कारण बालकों की रुचि उदीप्त होती है।

(ड) बालकों में कोष-प्रयोग की आदत प्रारम्भ से ही लगनी चाहिये। आजकल पाकेट संस्करण के शब्द कोष हिन्दी में भी मिलते हैं। उनका उपयोग करने का प्रोत्साहन शिक्षक को देना चाहिये।

शुद्धिकरण सम्बन्धी उपाय :—इस विधि के अनुसार शिक्षक को बालकों के लिखित अंश को शुद्ध करना चाहिए और उनकी अशुद्धियों को दूर करने के लिए निम्नांकित सुधारात्मक क्रियाओं का पालन करना चाहिए।

(क) लिखित अंश का शुद्धिकरण करने से अक्षर-विन्यास की गलतियां दूर हो सकती है। इस प्रकार का संशोधन नियमित रूप से किया जाना चाहिये।

(ख) अशुद्ध लिखे गये शब्द को कई बार लिखने का अभ्यास कराया जाय। ऐसा करने से इस दोष का निवारण होता है।

(ग) लड़के के पास एक अपना शब्द कोष रहना चाहिए। जिसके प्रत्येक पन्ना पर एक ही अक्षर वाले शब्दों के लिए स्थान छोड़ा जाय। जिस शब्द का बालक अशुद्ध अक्षर-विन्यास करता है और शिक्षक उसको शुद्ध कर देते हैं। ऐसे शब्दों को यथास्थान लिख देना चाहिए। और समय-समय पर उसे उलट कर देखने से भी अक्षर-विन्यास सम्बन्धी दोष दूर हो सकते है।

(घ) अशुद्ध अक्षर-विन्यास वाले शब्दों का केवल लिख कर ही नहीं, वरन् सस्वर वाचन से भी अक्षर-विन्यास करके यह दोष मिटाया जा सकता है। इस प्रकार का अभ्यास (Drills) विशेषतः उन लोगों के लिए आवश्यक है, जो अधिक अशुद्धियों के शिकार हैं। ऐसे लड़कों को शिक्षक का व्यक्तिगत ध्यान अपेक्षित है।

अध्याय १३

गद्य-शिक्षण की विधि

साहित्य का एक वर्ग गद्य है जिसमें उपन्यास, कथा-कहानी, निबन्ध आत्मचरित, यात्रावर्णन,पत्र, आलोचन आदि आते है। प्राथमिक पाठशालाओं की पाठ्य-पुस्तक में कहानी, छोटे-छोटे निबन्ध, जीवन चरित, वर्णनात्मक लेख, यात्रावर्णन आदि मिलते है। माध्यमिक कक्षाओं की पुस्तकों मे जो विषय चुने जाते है उनमें घटना प्राधान्य की अपेक्षा भाव-प्राधान्य विशेष रूप से रहता है। पाठों का उन्नत स्वरूप और स्तर का समावेश होता है। महाविद्यालयों मे इनसे उच्चतर स्तर के विषय रखे जाते है तथा उपन्यास, साहित्यालोचन, अलंकार, पिंगल शास्त्र का स्वतंत्र अध्ययन निर्दिष्ट किया जाता है।

इस अध्याय में गद्य के इन्हीं रूपों के शिक्षण की विधि की व्याख्या की जा रही है।

गद्य शिक्षण के उद्देश्य :—गद्य शिक्षण के निम्नांकित उद्देश्य माने जाते हैं :—

(१) वाक्यों के अर्थ समझने की योग्यता बढ़ाना।

(२) पाठ के भावों को समझने की क्षमता उत्पन्न करना, उनका संकलन करना और भाव-भंडार की वृद्धि करना।

(३) अध्ययन से तथ्यों की जानकारी बढ़ाना, जैसे वर्णनात्मक निबन्ध, यात्रा-वर्णन और आत्मचरित आदि।

(४) बालकों के शब्द-भंडार की वृद्धि करना।

(५) पाठ में प्रयुक्त मुहावरों, कहावतो आदि का ज्ञान और उनका अर्थ ग्रहण करना।

(६) शब्द-भंडार, भाव-भंडार के संकलन के पश्चात् आत्माभिव्यक्ति की उत्तम विधि से परिचय प्राप्त करना तथा अनेक भावों को उत्तम शैली में व्यक्त करने की क्षमता उत्पन्न करना।

(७) वार्त्तालाप की शैली की जानकारी प्राप्त करना और तदनुकूल वार्त्तालाप को प्रभावपूर्ण और आकर्षक बनाना।

(८) कल्पना शक्ति का निरंतर विकास करना।

(९) पाठ के द्वारा तर्क, निर्णय तथा रचना-शक्ति का विकास करना।

(१०) व्यावहारिक जीवन में सफलता के लिए तथ्यों, सूचनाओं तथा भाषा के आवश्यक उपकरणों को अपनाना जिससे मनुष्य अद्यावधि (Up to date) सूचना रखता हो तथा वह किसी विषय पर पूर्ण सूचित (well informed) कहा जा सके।

(११) गद्य के कुछेक पाठों के ऐसे स्थलों से परिचित होना जिनसे मानसिक विश्राम प्राप्त होता है और मनोरजन भी। हास्य सम्बन्धी पाठों से इसकी पूर्त्ति होती है।

(१२) पाठ के पढ़ने से बालक में, उसके उदात्त विचारों से, अपने विचारों को परिष्कृत और उन्नत करने की क्षमता को बढ़ाना। नैतिकता के स्तर के विकास की आवश्यक पृष्ठभूमि तैयार करना।

(१३) लेखकों का परिचय प्राप्त करना और उनके जीवन दर्शन एवं कृतियों का परिचयात्मक अध्ययन करना।

(१४) मस्तिष्क का प्रशिक्षण जिसके द्वारा वह अपने जीवन के वास्तविक आदर्श को अपनाता है।

(१५) विविध पाठों के अध्ययन से एक स्वतंत्र शैली का अपनाना जो मौखिक अभिव्यक्ति के साथ-साथ लिखित अभिव्यक्ति की शैली का आयोजन और निरूपण करता है।

सारांश यह है कि गद्य-शिक्षण के द्वारा मस्तिष्क का प्रशिक्षण, विस्तार, नियन्त्रण एवं मनोरंजन होता है तथा व्यक्ति के चरित्र का उत्तरोत्तर विकास होता है।

गद्य-शिक्षण के जितने उद्देश्यों का वर्णन किया गया है, वास्तव में वे गद्य के ही नहीं, भाषा के मूलभूत और सर्वमान्य सामान्य उद्देश्य भी हैं। इनके अतिरिक्त किसी विशेष विषय या पाठ का अपना उद्देश्य होता है जैसे कहानी पढ़ने का उद्देश्य, निबन्ध का उद्देश्य, यात्रा-वर्णन का उद्देश्य आदि।

प्रारम्भिक स्तर में	माध्यमिक स्तर में
कहानी का उद्देश्य :—	
कहानी की घटना से परिचित होना; उत्सुकता की शान्ति।	कहानी के भाव से परिचित होना; साथ ही पात्रों के चरित्र का परिचय प्राप्त करना।
यात्रा वर्णन का उद्देश्य :—	
यात्रा वर्णन से देश-विदेश की बातों की जानकारी प्राप्त करना।	देश-विदेश की भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक, औद्योगिक अवस्थाओ और समस्याओं की जानकारी प्राप्त होना।
जीवन चरित :—	
किसी महापुरुष के जीवन का परिचय प्राप्त करना जिससे बालक भा उन्हीं गुणों को अपनाने की प्रेरणा प्राप्त करें।	महापुरुषों के जीवन से अपने चरित्र का ऊच्च आदर्श स्थिर करना और अपनाना।
निबन्धों का उद्देश्य :—	
हल्के-हल्के निबन्धों के द्वारा प्रारम्भिक भावों का ज्ञान प्राप्त करना	निबन्ध के गहन और गम्भीर भावों का अध्ययन; संकलन और कल्पना, तर्क, मीमांसा शक्ति का विकास।
वैज्ञानिक पाठों का उद्देश्य :—	
साधारण विज्ञान की बातों की जानकारी प्राप्त करना	वैज्ञानिक रहस्यों और निष्कर्षो का विशद ज्ञान प्राप्त करना जो सामान्यतया मनुष्य के जीवन मे काम आते है।

इसी प्रकार गद्य के सभी प्रकारों के उद्देश्य स्थिर किये जाते है। इन उद्देश्यों के स्थिर करने में बालकों की आयु का भी ख्याल रखा जाता है जैसे कहानी का जो उद्देश्य प्रारम्भिक वर्गों में स्थिर किया जायगा, उच्च वर्गों में वही उद्देश्य न रह कर उसका उन्नत उद्देश्य निरूपित होता है। साथ ही, पाठविशेष का

अपना विशेष उद्देश्य होता है जैसे :—रामायण कथा मे रामचन्द्र के जीवन चरित्र का अध्ययन; गैगरीन की अन्तरिक्ष यात्रा मे अन्तरिक्ष की जानकारी आदि। अतः पाठ प्रारम्भ करने के पहले शिक्षक को पाठ के सामान्य और विशेष उद्देश्यों को स्थिर कर लेना चाहिये।

गद्य-शिक्षण की अवस्थायें :—गद्य के किसी पाठ को पढाने मे उन चार अवस्थाओ की व्याख्या आवश्यक है जो उसके आन्तरिक अग है। वे है पाठ का वाचन; पाठ की व्याख्या; पाठ का विश्लेषण और पाठ की जाँच के उपकरण।

पाठ का वाचन

जिस पाठ को पढ़ाना है उसका वाचन वर्ग मे निम्नरूप से होना चाहिये।

प्रारम्भिक कक्षाओं में विशेपतः तीसरे वर्ग तक के पाठ अधिक लम्बे नहीं होते। अतएव ऐसे सम्पूर्ण पाठो का शिक्षक वर्ग में सस्वर वाचन करेगे। ऊपर की कक्षाओ में जहाँ पाठ लम्बे होते है, वहां उन्हें अन्विातियो में बाँट कर शिक्षक पढ़ाने वाले विषय का सस्वर वाचन वर्ग मे करते हैं। लेकिन इसके पहले शिक्षक को वर्ग में पाठ का साराश कह सुनाना चाहिए, जिससे लड़को को पाठ का क्रम मालूम हो, पाठ के प्रति उत्सुकता हो और उनकी रूचि बनी रहे। शिक्षक द्वारा यह सस्वर वाचन आर्दश वाचन (Model Reading) कहा जाता है। आर्दश वाचन का उद्देश्य यह है कि शिक्षक बालको के सामने (पठित अंश) वाक्यों का शुद्ध उच्चारण, लय, यति, गति, विराम, स्वराघात के नियमो के अनुकूल पढ़े। ऐसे आदर्श वाचन का तत्कालिक प्रभाव यह पड़ेगा कि छात्र भी अपने वाचन को उन्ही नियमो के अनुसार नियन्त्रित रखेंगे। इस स्थल पर शिक्षक को ध्यान रखना चाहिये कि उसके आर्दश वाचन का अनुकरण करके ही लड़के अपने वाचन को अच्छा या बुरा बना सकते है। अतएव शिक्षक का आर्दश वाचन ऐसा हो कि पाठ का अत्यधिक अर्थ इसी से समझ लिया जा सके। ऊपर के वर्गों में विशेषतः माध्यमिक वर्गो मे आर्दश वाचन की उतनी आवश्यकता नही है; क्योकि तब तक वालकों को स्वयं ही वाचन की उचित पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी रहती है। १० वें और ११ वें वर्ग में इसकी कोई आवश्यकता नही समझी जाय; यदि वाचन सम्बन्धी क्रियाओं का अभ्यास पूर्व कक्षाओं मे उचित मात्रा में कराया जा चुका है।

जिन उद्देश्यों से शिक्षक द्वारा आदर्श वाचन की व्यवस्था की जाती है; उन्हीं की पूर्ति की जाँच के लिये और सुवाचन के अभ्यास के लिये बालकों

द्वारा भी सस्वर वाचन का विधान माना गया है। प्रारम्भिक कक्षाओं में तो निस्सन्देह प्रत्येक बालक से सस्वर वाचन कराया जाना चाहिए। मिडिल कक्षाओं और ऊपर की कक्षाओं मे, जहाँ बालकों की संख्या अधिक हो, वहाँ व्यक्तिगत वाचन की व्यवस्था संभव नहीं होगी, अतएव कुछ ही लड़कों द्वारा सस्वर वाचन कराया जा सकता है। इनमे शिक्षक उन सभी छात्रों को सम्मिलित कर ले जिन्हे वाचन सम्बन्धी दोष या गुण हों। इसका परिणाम यह होगा कि वाचन सम्बन्धी दोप दूर होगे और अच्छे लड़कों के सुवाचन से वर्ग को लाभ होगा। शिक्षक को ऐसे समय में अधिक सतर्क रहना पड़ेगा, क्योंकि जरा भी चूक हुयी तो वाचन दोष फैल जा सकता है। माध्यमिक कक्षाओं में विशेषत: ८ वें वर्ग से ऊपर सस्वर वाचन की व्यवस्था में निरंतर क्रमश: कमी होनी चाहिए और अन्तिम दो वर्गो मे यदि इस पर समय बरबाद न किया जाय तो अति उत्तम है।

वाचन का विधान इसलिये किया गया है कि बालकों को पाठ का शुद्ध उच्चारण करने की आदत लगे, वाचन मे यति, गति, स्वराघात, अक्षरादि का अभ्यास हो। साथ ही अर्थग्रहण की क्रिया मे पर्याप्त सहायता मिले। इन क्रियाओ से पाठ का वास्तविक परिचय बालकों को मिल जाया करता है।

जिस क्रम से ऊपर सस्वर वाचन का संकेत किया गया है उसके विपरीत क्रम से मौन वाचन का भी विधान अनुकूल माना गया है। अर्थात् प्रारम्भिक कक्षाओं मे विशेषत: तीसरे वर्ग तक मौन वाचन गद्य पाठ का कोई विशेष अंग नहीं हो, चौथी कक्षा से ऊपर इस विधि में निरंतर वृद्धि हो और माध्यमिक विद्यालय के अन्तिम वर्गो मे इसका पूरा विधान होना चाहिए। मौन वाचन में वर्ग मे पूर्ण शान्ति हो और शिक्षक भी स्वयं मौन वाचन करें।

व्याख्या

वाचन के बाद पाठ की व्याख्या का क्रम आता है। यह व्याख्या (क) शब्द तथा उनके अर्थ की होती है; (ख) मुहावरों और कहावतों की होती है तथा अन्त में (ग) पूरे वाक्य या अनुच्छेद की होती है।

(१) **शब्द की व्याख्या** :—अनुच्छेद मे जितने भी कठिन शब्द आये हों उनकी एक सूची पहले से ही शिक्षक को बना लेनी चाहिए। क्योंकि शिक्षक को यह मालूम है कि उसके वर्ग के बालकों का शब्द भंडार क्या और कितना है। शिक्षक ऐसे शब्दों को अपने पाठ में संकेत कर देता है। वाचन क्रम में

विद्यार्थी भी उन शब्दों को लिख लेते है जिनका अर्थ वे पहले से नही जानते। शब्दों का अर्थ बताने की कई विधियाँ प्रयोग में आती है। जैसे—

(क) शब्दार्थ बताने की सर्वप्रथम विधि प्रत्यक्ष विधि (Direct method या Telling method) कहते है जिसके अनुसार शब्द का अर्थ उसके पर्यायवाची शब्द, जो सरल और सुबोध होता है, देकर बताया जाता है।

जैसेः—

भानु	सूर्य
रत्नाकर	समुद्र
रत्नगर्भा	पृथ्वी
रथ्यायान	ट्राम गाड़ी आदि।

(ख) कठिन शब्दो की व्याख्या करके या उसकी परिभाषा बनाकर भी अर्थ बताया जा सकता है। जैसे :—

रत्नाकर	रत्नों का भंडार
रत्नगर्भा	पृथ्वी जिसके गर्भ में अनेक प्रकार के रत्न छिपे हों आदि।

(ग) शब्दों का स्पष्टीकरण करके भी उसका अर्थ बताया जाता है। यह स्पष्टीकरण व्युत्पत्ति नियम से, या तुलनाविधि से या ऐतिहासिक, भौगोलिक, वैज्ञानिक तथा साहित्यिक नामों और शब्दो की तदनुकूल व्याख्या से किया जा सकता है।

हिमपर्वत=हिम + पर्वत = बर्फो का पहाड़, ज्ञानगुणसागर=ज्ञान के गुणों को रखने वाले अर्थात् बुद्धिमान। देवलोक = (देव + लोक)=का अर्थ बताने के लिये इहलोक का प्रयोग और व्याख्या।

(घ) सन्धि विच्छेद करके भी अर्थ बताया जा सकता है। जैसे :—

गण + ईश=गणेश=एक हिन्दु देवता जिनका सिर हाथी का और शरीर मनुष्य का मानते है।

प्रति + उपकार=प्रत्युपकार=उपकार के बदले में किया गया उपकार।

तन् + रूप = तद्रूप = किसी के रूप के समान।

उत् + चारण = उच्चारण = शब्दों अथवा वर्णो के बोलने का ढंग।

निः + फल = निष्फल = बिना फल के, व्यर्थ।

भाः + कर = भास्कर = सूर्य।

(घ) समास (पदों का संयोग) विश्लेषण करके भी अर्थ बताया जा सकता है:—

माखनचोर=माखन का चोर।

तुलसीकृत = तुलसी द्वारा रचित।

हवन-सामग्री=हवन का सामान।

चक्रपाणि=जिसके हाथ मे चक्र हो, विष्णु भगवान।

दशानन = जिसके दस मुख हों, याने रावण।

अनन्त = जिसका अन्त नही है।

लेकिन शब्दार्थ बताने की सर्वोत्तम विधि यह है कि लड़का द्वारा ही वाक्य मे शब्द प्रयुक्त कराके अर्थ बताया जाय। इसे उद्बोधन विधि कहते है। जहां ऊपर की विधियों में शिक्षक ही अर्थ को स्पष्ट कर देते है वहाँ उद्बोधन विधि मे बालकों द्वारा ही अर्थ निकालने की क्रिया की जाती है। यह निम्न विधियो से संभव है :—

(i) स्थूल पदार्थों को दिखा कर बालकों द्वारा अर्थ बतलाना, जैसे—
लौह का अर्थ बताने के लिए लोहा दिखाना।

(ii) चित्र द्वारा अर्थ ग्रहण करना जैसे—
लोचन=आँखों का चित्र।
मृदंग=एक प्रकार का वाद्य यंत्र जो ढोलक से कुछ लम्बा होता है।

(iii) क्रियाजनक व्यापार, विशेषणादि का अर्थ प्रयोग विधि द्वारा बताया जा सकता है।

(iv) अभिनय द्वारा भी शब्दार्थ बताया जा सकता है।

(२) **मुहावरों और कहावतों की व्याख्या** :—तदनन्तर वाक्य में आये हुए कहावतों और मुहावरों का अर्थ बताना चाहिये। इसके लिये वाक्य में प्रयोग करके प्रसंगवश व्याख्या उत्तम विधि है जैसे, नौ दो ग्यारह होना—हल्ला होने पर चोर नौ दो ग्यारह हो गये। उसी प्रकार लोकोक्तियों को भी वाक्य में प्रयोग करके और उसकी सप्रसग व्याख्या करना वांछनीय होगा।

(३) इस प्रकार शब्दों, मुहावरो और कहावतों का शाब्दिक या वाक्यों में प्रयोग करके अर्थ बताना चाहिये। इसके पश्चात् अनुच्छेद का वाक्य विच्छेद करके उनका अर्थ बताना चाहिये। इस क्रम मे आये सभी ऐतिहासिक, राजनैतिक, आर्थिक, पौराणिक या अन्य प्रसगों की भी पूर्ण व्याख्या कर देनी

चाहिये। अनुच्छेद की शैली का भी वर्णन आवश्यक है, साथ ही अलकार व्यवस्था का भी अर्थ बताना चाहिये।

विश्लेषण

गद्य शिक्षण की तीसरी अवस्था वह है जिसमें अनुच्छेद या पाठ का विश्लेपण किया जाता है। वास्तव में पूरे पाठ की यही महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जिसकी ओर शिक्षक को पूर्ण रूप से सतर्क, सचेष्ट और कर्मशील रहना चाहिये। अन्य अवस्थायें जैसे वाचन और व्याख्या तो इसी अवस्था की पूर्त्ति के निमित्त साधन मात्र है। सम्पूर्ण पाठ का या पढ़ाने के लिये जो अनुच्छेद चुना गया हो उसका सामान्य विश्लेषण ही इस अवस्था का उद्देश्य है। इसमें शिक्षक निम्नाकित विधियों और प्रक्रियाओं को अपनाता है और इस प्रकार पाठ को सफल बनाता है :—

(i) पाठ का संक्षिप्त वर्णन (कहानी का साराश, जीवन चरित के मुख्य विचार विन्दु, निबन्धों में भावों का संकलनादि) प्रस्तुत किया जाना चाहिये।

(ii) पाठ के उन स्थलों का सम्यक विश्लेषण और व्याख्या की जाय जो भावात्मक, संवेगात्मक और मनोवैज्ञानिक प्रेरणा के है। पाठ में प्राय: ऐसे स्थल मिलते है जो लेखक के पूरे विचार या जो कुछ वह वहां कहना चाहता है—एकाध ही वाक्य मे पूर्णतया मुखरित हो उठते है।

(iii) पाठ का सम्बन्ध बालक के जीवन से जोड़कर उसे ग्राह्य और सुबोध बनाना चाहिये। जीवन चरित के गुणों से बालक के जीवन का एकीकरण बहुत कुछ पाठ के उद्देश्य को पूरा कर सकता है।

(iv) पाठ के ऐसे स्थलों का भी विश्लेषण किया जाय जो मनोरंजनात्मक और विनोदपूर्ण है क्योंकि ये गम्भीर अध्ययन के क्रम में एक प्रकार से अल्प विश्राम देकर छलांग का कार्य करते है।

(v) पूरे पाठ का क्या सन्देश है इसकी समीक्षा होनी चाहिये। यह व्याख्या ऊपर के वर्गों के अध्यापन क्रम में हो सकती है। प्रारम्भिक कक्षाओं में इस सन्देश (Morals) का कोई प्रत्यक्ष वर्णन या विश्लेषण करना उचित नहीं है।

(vi) लेखक का संक्षिप्त जीवन चरित बताना चाहिये और उसकी कृतियो का उल्लेख करना चाहिये।

(vii) साहित्यालोचन की दृष्टि से पाठों की आलोचना करनी चाहिये। जिसमे उसके भावपक्ष और कला पक्ष का सविस्तर वर्णन हो। इस प्रकार की आलोचना माध्यमिक कक्षाओं में होनी चाहिये (विशेषतः वर्ग ९ से ऊपर)।

इसके अतिरिक्त एक अनुभवी शिक्षक अपने तरीके से भी भावपूर्ण विश्लेषण कर सकता है और इसके लिये उसे पूर्ण स्वतन्त्रता दी जानी चाहिये।

जाँच की विधि

पाठ की चौथी अवस्था वह है जब शिक्षक उन विधियों को अपनाता है जिनके द्वारा वह पता लगा सकता है कि पाठ सम्पादन सफल हुआ या नहीं। इस जाँच के लिये शिक्षक के लिये दो सहायक उपकरण है—एक तत्कालिक प्रश्न और दूसरा गृह कार्य के प्रश्न।

सत्य ही, प्रश्न विधि ही शिक्षक का सबसे बड़ा मित्र है जो शिक्षक के पाठ सम्बन्धी उद्दश्यो को पूर्ण करने मे अत्यन्त ही प्रभावशाली और महत्वपूर्ण है। प्रश्न का उपयोग पाठ के प्रारम्भ में विषय-प्रवेश के पहले करना चाहिए। बीच-बीच मे भी लड़को की रुचि और प्रगति की जांच के लिए प्रश्न पूछे जा सकते हैं फिर अन्त मे उनकी सामान्य प्रगति आंकने के लिए प्रश्न दिये जा सकते है। प्रश्न के सम्बन्ध मे शिक्षक को यह ध्यान में रखना चाहिये कि वे प्रारम्भिक कक्षाओ में विशेषतः तथ्यों की जानकारी के लिये किये जायें, वे बुद्धि प्रेरक हो और ऊँची श्रेणियाँ मे इनका सम्बन्ध भाव, भाषा और शैली से हो। वर्ग में अध्यापन क्रम मे जो प्रश्न पूछे जायें वे बहुत ही अल्पावधि में उत्तर की अपेक्षा रखें और तदनुकूल ही उनकी बनावट होनी चाहिये। ये प्रश्न या तो मौखिक रुप से पूछे जायें या श्यामपट पर लिखे जायें। नीची श्रेणियों मे प्रश्न पहले से ही चार्ट पर लिख कर लाये जायें।

गृहकार्य भी दिया जाना इसी अवस्था का एक अंग है। गृहकार्य के लिये निम्न कक्षाओं मे सारांश लिखना, वर्णन लिखना आदि से प्रश्नों का सम्बन्ध हो। ऊँचीश्रेणियों में उनका सम्बन्ध भाव, सप्रसंग व्याख्या और समीक्षात्मक विश्लेषण से हो।

द्रुतवाचन की शिक्षा

गद्य शिक्षण में पाठ्य-पुस्तक के अतिरिक्त द्रुतवाचन (Rapid Reading) की भी व्यवस्था की जाती है। प्रारम्भिक कक्षाओं में ऐसी

पूरक पुस्तकों (Supplementary Readers) की कोई आवश्यकता नही होती लेकिन माध्यमिक विद्यालयो के ८ वे वर्ग से इसकी व्यवस्था की गयी है।

द्रुतवाचन के उद्देश्य :— द्रुत वाचन का उद्देश्य (क) बालक में पूर्व अर्जित ज्ञान को अधिक विस्तृत करना है।

(ख) उसकी साहित्य सम्बन्धी रूचि को बनाये रखना है तथा उसमें निरंतर विकास करना है।

(ग) पाठ्य-पुस्तक के सूक्ष्म अध्ययन को सहायता देने के लिये बालकों को द्रुतवाचन के अध्ययन की व्यवस्था निर्धारित की गयी है।

(घ) पाठ्यपुस्तक के अध्ययन का एक विशेष उद्देश्य है जिसका सम्बन्ध पुस्तक के सूक्ष्म अध्ययन, विश्लेषण, व्याख्या, समीक्षा, आलोचना आदि से है। इसके विपरीत द्रुत वाचन का मुख्य उद्देश्य है बालक के भाव-कोष और शब्दकोष की वृद्धि करना। यहाँ अध्ययन, विश्लेषण, व्याख्या, समीक्षा, आलोचना आदि का उद्देश्य मुख्य नही है, गौण भले ही मान लिया जाय।

(ङ) द्रुतवाचन से लडके को शब्द, व्याकरणादि के अनावश्यक जाल में विशेषरूप से न पड़ कर केवल अपने भावकोष को बढाना चाहिये; इस प्रकार जिसमें उसकी अभिव्यक्ति शैली का विकास हो।

(च) द्रतवाचन द्वारा बालकों को ऐसे विषयो का ज्ञान दिया जाता है जो उसकी आयु, रूचि, तथा योग्यता के अनुकूल है।

(६) द्रुतवाचन का वास्तविक उद्देश्य यह है कि बालकों को मानसिक विश्राम (Mental relaxation) के लिये एवं साहित्य के आनन्द की प्राप्ति के लिए पढने की रुचि और अभ्यास कराया जाय।

द्रुतवाचन पाठ की विधि :— शिक्षक को सर्वप्रथम सम्पूर्ण पाठ का साराश लड़कों के सामने सुनाना चाहिए। तदनन्तर उसका सस्वर वाचन कराया जा सकता है। माध्यमिक विद्यालयों की ऊपरी दो कक्षाओं मे सस्वर वाचन की अपेक्षा मौन पाठ पर अधिक बल दिया जाय। ऐसे पाठ को पहले से ही निश्चित कर दिया जाना चाहिए जिन्हें लड़का घर से ही पढ़ कर आये और शब्द सम्बन्धी कठिनाइयों को शब्दकोष के सहारे दूर कर ले। शेष

शंकाओं के लिए कुछक प्रश्न पूछे जाने चाहिये। शिक्षक भी पाठ के मुख्य अंशों की व्याख्या कर दें। बालकों की उपलब्धि की जाँच के लिए शिक्षक वर्ग में ही प्रश्न दें, बालक वैसे प्रश्नों का उत्तर तैयार करें और उनका वर्ग में ही संशोधन किया जाना चाहिए। द्रुतवाचन का शिक्षण लड़कों के विस्तृत वाचन (extensive reading) के मार्ग में सहायता, उत्साह तथा प्रोत्साहन देता है। विषय के गहन पाठ के लिए तो पाठयपुस्तकें निर्धारित की जाती हैं। प्रश्नों की बनावट ऐसी हो जिनसे बालकों की भावाभिव्यक्ति की शक्ति और शैली का विकास हो।

द्रुतवाचन के लिए यह भी एक उत्तम विधि है कि वर्ग में ही बालकों के लिये द्रुतवाचन का विषय निर्धारित कर दिया जाय और वे शान्तिपूर्वक वर्ग में उसका अध्ययन करे। तदनन्तर उससे सम्बद्ध प्रश्न दिये जायें और उनकी जाँच की जानी चाहिये।

अध्याय १४

कविता-शिक्षण की विधि

साहित्य के दो मुख्य भेद माने गये हैं गद्य और पद्य । इन दोनों में किसी प्रकार का तात्विक भेद नहीं है क्योंकि गद्यात्मक पद्य और पद्यात्मक गद्य के प्रचुर उदाहरण विश्व के सभी साहित्य में मिलते है। फिर भी व्यवहार की दृष्टि से लोगों ने इन दोनों वर्गों की कल्पना की है ।

पद्य मनुष्य के भावो की अभिव्यक्ति की एक विशेष शैली है। पद्य में संगीतकला की छाया विशेष रूप से और प्रभावशाली ढग से पायी जाती है। पद्य में अनिवार्य रूप से कल्पना का अधिक उत्कृष्ट स्वरूप दिखाई पड़ता है। पद्य के अन्तर्गत ही, अभिव्यक्ति की विशेष रीति को कविता कहते हैं। पद्य में रस का सन्निवेश रहता है और वस्तुतः वही उसका प्राण भी है । इसलिये आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण मे कहा है कि "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्"। आचार्य जगन्नाथ के अनुसार काव्य में रमणीय अर्थ का प्रतिपादन होता है। इस सम्बन्ध में आचार्य मम्मट की भी व्याख्या देखिये—

"तद्दोषौ शब्दार्थो सगुणावनलंकृतीक्वापि"(काव्य प्रकाश)। इनके अनुसार ऐसे शब्द और अर्थ को कविता कहते हैं जिसमें दोष न हों, गुण हों, अलंकार हों और कभी-कभी अलंकार न भी रहें । अतएव कविता का वास्तविक आनंद उत्पन्न करने के लिये कवि को वाचक, लक्षक और व्यंजक शब्द तथा वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य तीनो प्रकार के अर्थ और अभिधा, लक्षणा और व्यंजना तीनों प्रकार की शब्द शक्तियों का ज्ञान परमावश्यक हो जाता है, और इसी प्रकार कविता का आनन्द उठाने वाले के लिये भी ।

पाश्चात्य साहित्यिकों के अनुसार भी कविता-'पद्यमय निबन्ध' है या 'संगीतमय विचार' है या 'मनोवेगमय और संगीतमय भाषा में मानव अन्तःकरण की मूर्त्त और कलात्मक व्यंजना' है। यहाँ कविता की विशद व्याख्या के लिए उपयुक्त स्थल नहीं है लेकिन विषय-प्रवेश के निमित्त कविता के स्वरूप का आभासमात्र देने की चेष्टा की गयी है। अतः हम प्रस्तुत

अध्याय की दूसरी कड़ी कविता शिक्षण के उद्देश्य की ओर बढ़ते हैं क्योकि साहित्य के प्रमुख भेद पद्य के अन्तर्गत कविता का ही अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। अतएव हम सभी प्रकार के पद्यो को कविता की ही श्रेणी मे वर्गीकृत मान कर शिक्षण-विधि का विवेचन करेगे।

कविता-शिक्षण के उद्देश्य :—कविता मानव की कल्पनामयी भावना का मूर्त्तरूप है जो अधिकतर उसके उच्च आदर्शो को व्यक्त करती है। यह उच्च-आदर्शो की अभिव्यक्ति उसे सामान्य स्तर से ऊपर उठा कर एक अलौकिक आनन्द की प्राप्ति कराती है। अतएव हम कह सकते हैं कि कविता-शिक्षण का एकमात्र् उद्देश्य यही है कि वह विद्यार्थी को उस आलौकिक आनन्द की अनुभूति करा दे। इस आनन्द को साहित्यिको ने 'ब्रह्मानन्द सहोदर' की संज्ञा दी है। लेकिन इसी मूल उद्देश्य के साथ ही विद्वानो ने अन्य उद्देश्यो की भी चर्चा की है जो उसकी प्राप्ति मे सहायक का कार्य करते है और निस्सन्देह रूप से उसकी प्राप्ति मे सोपान है।

(क) कविता से मनुष्य में उच्चादर्श और उच्च भावनाओं का उद्रेक होता है।

(ख) कविता से हमारीं कल्पना शक्ति का विकास और विस्तार होता है।

(ग) कविता से हमारे हृदय में संगीत की भावना जागृत होती है। वह विश्व की सभी चीजों–प्राकृतिक और मानवीय—के साथ हमारा रागात्मक सम्बन्ध जोड़ने में सहायक है। इससे हमारे हृदय में स्वर, ताल और लययुक्त प्रवृत्तियों का विकास होता है।

(घ) कविता से हम शब्दार्थ में न बँधकर, उसके भावार्थ से भी बहुत ऊपर उसके आन्तरिक अर्थ को समझने की क्षमता रखते है जिसे व्यंजना की संज्ञा दी गयी है। वास्तव में वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ के अतिरिक्त जिससे विशेष अर्थ निकलता है उसे ही व्यंजना कहते हैं।

(च) कविता से हमारे हृदय में वह प्रवृत्ति जगती है जो, विद्यालय के बाद भी, हमे उसके प्रति प्रेम बनाये रखनेवाली प्रेरणा देती है।

(छ) कविता मनुष्य को भावाभिव्यक्ति की उस शैली विशेष से परिचय कराती है जिसके द्वारा वह अपने भावों को सामान्य भाषा से बहुत ऊपर प्रांजल, चुस्त और व्यंजक भाषा में व्यक्त कर सकने की कला सीखता और अभ्यास करता है।

लेकिन इनके अतिरिक्त, कविता शिक्षण के चरम उद्देश्यो की व्याख्या भी अवलोकनीय है जिसमे यह विदित होगा कि वास्तव मे कविता-शिक्षण का क्या महत्व है ।

शिक्षा का वास्तविक लक्ष्य और उद्देश्य यह है कि वह हमारे विचार को उन्नत कर दे, हमारी अभिव्यजना शैली को उत्तम बना दे और हमे इसके लिये एक ऐसी भाषा का मम्यक् ज्ञान करा दे जिसमे उपयुक्तता, लयात्मकता और शुद्धता (precision) हो । इस उद्देश्य की पूर्त्ति में कविता ही एकमात्र प्रभावशाली साधन है । कविता हमारे मस्तिष्क को कवि के उत्तम विचारों, प्रतिमाओं, लयस्वर आदि से परिचय कराती है, और इस प्रकार वह मानसिक क्रियाओं के ऐसे प्राजल स्वरूप को सामने प्रस्तुत करती है जो कविता के बिना असंभव है ।

कविता का विषय ऐसा मनोहर, आकर्षक, सौन्दर्य्यपूर्ण और हृदयग्राही होता है कि वह बालक, युवा या वयस्क सभी को समान रूप से ऐसे भावों से अवगत कराता है और प्रभावित भी करता है । कविता मनुष्य की बुद्धि, कल्पना, संवेग, और स्मरण शक्ति की क्रियाओ से उस परिस्थिति को प्रगट करती है जिससे हम कवि के साथ ही उसी तरह की अनुभति प्राप्त करते हैं जिसका स्वयं कवि ने अनुभव किया है । हम कवि के साथ ही उस अलौकिक आनन्द को प्राप्त करने लगते है जिसकी, उसके साथ ही, हमे कोई सुध-बुध नहीं रहती । कविता के द्वारा हमारा मस्तिष्क नयी समझ और नयी अनुभूतियों के ग्रहण करने तथा उन्हें अभिव्यक्त करने के योग्य बन जाता है ।

कविता के अध्ययन में हमें जीवन की सबसे बड़ी प्रेरणा यह मिलती है कि इस जीवन में हम केवल निराशा का ही दर्शन नहीं करते, यह जीवन केवल संघर्षमय और द्वन्द्वपूर्ण ही नही है, वह हमारे लिये एक आनन्द, उमंग और उत्साह का स्रोत भी प्रस्तुत करता है । कविता से हमें जीवन के तत्वों (elements) और मूल्यों (values) के समझने में सबसे बड़ी प्रेरणा मिलती है ।

कविता से हमारा मस्तिष्क एक विशेष तरह से अनुशासित होता है । अपने भावों को हम किस प्रकार संक्षिप्त, दृढ़ और स्वच्छ रूप में व्यक्त करें यह कविता के अध्ययन से ही संभव है । कविता हमारे मर्मस्थल
करती है और तदनुकूल हमारी यथार्थ भावनाओं को व्यक्त करने क

विधि से परिचित करानी है। इनके द्वारा हम विश्व की उन विभूतियों के मस्तिष्क का दर्शन करते है जिन्होने अपने उच्चादर्श, कल्पना, व्यंजन के बल पर मानव के बीच मानवता की पुट भर दी है। कविता हमारे हृदय के तार को झङ्कृत कर देती है। सक्षेप मे, हम यह निस्संकोच कह सकते हैं कि शिक्षा के उच्चतम आदर्शो की पूर्त्ति के लिए कविता ही सर्व प्रथम, सर्व उपयोगी और सम्पूर्ण माध्यम और साधन है। विश्व की सभी जातियों के साहित्य में पद्य का अभ्युदय पहले पाया जाता है और गद्य का पीछे। अतएव यह उसकी सबसे बड़ी विशेषता है कि विद्यालय में उसे एक महत्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिये।

यदि हम बालको की मानसिक आयु के अनुसार भी कविता शिक्षण के उद्देश्यो की व्याख्या करे तो स्पष्ट होता है कि प्रारम्भिक कक्षाओ में इसका उद्देश्य यह है कि बालको की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता—लय, सुर, तथा ताल की खोज की पूर्त्ति पद्य-शिक्षण से होती है। वे न केवल पढ़ने मे वरन् अपनी अनेक क्रियाओ मे भी इसकी आवश्यकता अनुभव करते है। माध्यमिक कक्षाओं के विद्यार्थियो के लिये भी कविता उनके भावों, भावनाओं, संवेगों और रागो को उचित ताल मेल देने के लिए आवश्यक है। कविता यौवन का प्रतीक है। अतएव पाठ्य-क्रम मे इसका सर्वव्यापक महत्व स्पष्ट है। प्रारम्भिक कक्षाओ और माध्यमिक कक्षाओ के बीच मिडिल कक्षाओ के बालकों के लिये कविता अर्थ प्रकट करने का एक बड़ा साधन है। उनके अर्थ ग्रहण की योग्यता को कल्पना लोक मे पहुँचने के लिये अपेक्षित क्षमता को परिपुष्ट करती है। अतएव हम देखते है कि शैक्षिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टियों से भी कविता उनकी आयु के अनुकूल अनेक महत्वपूर्ण उद्देश्यों की पूर्त्ति में सहायक साधन है।

कविता शिक्षण की विधियाँ :—इसके पूर्व कि हम कविता शिक्षण-विधि के सम्बन्ध मे अपना कोई विशेष मत प्रगट करें, यह आवश्यक है कि हम उन कुछेक विधियो का सकेत कर दे जो सामान्यतया शिक्षकों द्वारा कविता शिक्षण मे अपनायी जाती है। वे विधियाँ निम्नाकित हैं :—

(क) गीत तथा अभिनय विधि।
(ख) शब्दार्थ कथन विधि।
(ग) प्रश्नोत्तर या खण्डान्वय विधि।
(घ) व्याख्या विधि।

(च) कथा वाचक विधि या व्यास विधि ।
(छ) तुलनात्मक विधि ।
(ज) समीक्षा विधि ।

(क) गीत तथा अभिनय विधि :—इस विधि का (जैसा कि इसके नाम से ही विदित होता है) प्रयोग छोटे-छोटे बालकों को गीत और अभिनय द्वारा कविता पढ़ाने मे किया जाता है। स्वभाव से बालक अपने सभी क्रियाकलापो मे लय और ताल का प्रेमी होता है। अतएव इस उम्र के बालकों के लिये छोटी-छोटी तुकबन्दियाँ चुन ली जाती है जिनमे लय और ताल पाया जाता है। इस प्रकार की तुकबन्दियाँ प्रायः अन्त्यानुप्रास कोटि की होती है। शिक्षक बालको के सामने इनका सस्वर गान करते है और बालक उनका अनुकरण करके गाते है। जैसे :—

(क) चन्दा मामा दूर के,
पूये पकावे गुड़ के,
आप खाये थाली में,
मुन्ने को दो प्याली में,
प्याली गयी टूट,
मुन्ना गया रूठ,

(ख) आओ मिल कर खेलें खेल,
आपस में हम कर ले मेल।
आओ बनाएँ हम एक रेल,
उसे चलादें हम तुम ठेल।

(ग) रुपये में सेर भर लोहे का तार
रुपये में सेर भर सोने का हार

इस विधि में अर्थ की अपेक्षा मनोरंजन पर विशेष ध्यान दिया जाता है। अतः कभी-कभी अर्थहीन तुकबन्दियाँ भी कर ली जाती है। लयात्मक होने के कारण बालकों को इन्हे स्मरण करने मे बड़ी आसानी होती है और वे इन तुकबन्दियो को रट लिया करते हैं। इसी आधार पर प्रारम्भिक श्रेणियों मे इसी विधि के अनुसार अक्षर ज्ञान देने की भी प्रणाली प्रचलित है। इसके अनुसार व्यक्तिगत रूप से तथा सामूहिक रूप से भी गान कराया जाता है।

कुछ ऐसी भी गीत या तुकबन्दियाँ होती है जिनमें अभिनय का संकेत रहता है। इनमे अंग संचालन, मुखाकृति परिवर्त्तन, क्रोध या आनन्द को व्यक्त करने के लिये अभिनय की कुछ विधियां भी अपनायी जाती है। कर्म संगीत में इस विधि का पूर्ण रूप से उपयोग देखा जाता है। कुछ गीतो में व्यक्तिगत अभिनय और कुछ मे सामूहिक अभिनय करने की आवश्यकता पड़ती है। शिक्षक पद्य की भिन्न-भिन्न पक्तियो को छात्रों मे बाँट देते हैं, जब एक

लड़का एक पंक्ति गाता है तो उसके बाद दूसरा लड़का भी उसी अभिनय के साथ दूसरी पंक्ति गाता है। समवेत गान में पूरा वर्ग अभिनय के साथ गान करता है।

यह प्रणाली छोटी कक्षाओं में विशेष रूप से अपनायी जाती है। रटने का उद्देश्य विशेष रूप से होने के कारण इसे "सिद्धान्त कौमुदी की विधि" भी कहते है। यह पद्य पढाने की सबसे आदि प्रणाली है और बालकों के मनोविज्ञान के अनुकूल है। लेकिन शिक्षक को यह ख्याल रखना पड़ता है कि बालक ऊँचे स्वर से या एकदम धीमी आवाज मे गीत गाने का अभ्यास न कर लें। साथ ही अभिनय में किसी प्रकार की अधिकता न हो और अनावश्यक अंग संचालन न हो। और इस प्रकार कविता उपहास का विषय न हो जाय।

(ख) शब्दार्थ पठन-विधि :—इस विधि के अनुसार कविता का सस्वर पाठ वर्ग मे शिक्षक करते है, तदनन्तर शब्द को लेते हुए अर्थ भी करते है। कविता की भाषा बहुत ही सरल होती है अतएव कुछ का अर्थ स्वयं बालक भी कर लेता है। शब्द, वाक्याश आदि का अर्थ किया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक पंक्ति का अर्थ होता है। यह सबसे सरल प्रणाली है और गद्य-शिक्षण विधि को ही पद्य-शिक्षण के लिए अपनाया जाता है।

(क) रहिमन अँसुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेहते, कस न भेद कहि देइ॥

(ख) झूठ-मूठ मत करो बहाना, झट-पट कर लो अभी खाना।
देती हूँ मैं मीठा खाना, कुछ खाना, कुछ लेते जाना॥

प्रारम्भिक कक्षाओं के ५वें वर्ग तक इस विधि से पद्य शिक्षण सफल कहा जा सकता है जहाँ अर्थ ग्रहण का उद्देश्य प्रमुख रहता है।

(ग) प्रश्नोत्तर या खण्डान्वय विधि :—इस विधि के अनुसार बड़ी कविताओं को शिक्षक कई खण्डों में बांट देता है। उनका क्रम ऐसा रहता है कि सरलार्थ करने में किसी प्रकार की कठिनाई नही होती है। उद्देश्य यह रहता है कि पद्य का अर्थ स्वयं बालक द्वारा ही कराया जाय। तब शिक्षक प्रश्न करता है और पद्य पढ़कर ही बालक उसका जवाब देता है। यही उत्तर पद्य का अर्थ बोध कराता है। इस प्रकार प्रश्नोत्तर विधि से पूरा पाठ पढ़ाया जाता है।

(क) मैने वसंत के तरुओं से, पूछा—'तुम कितने हो शीतल ?'
वे बोले—'हाँ, हम में आये—है नूतन ये पल्लव कोमल।
रस मिट्टी का लेकर, देते—हम फूल और फल मधुर पके।
यह सघन हमारी छाया है, रुक जाते राही जहाँ थके।'

(ख) बार-बार आती है मुझको, मधुर याद बचपन तेरी।
गया, ले गया, तू जीवन की, सबसे मस्त खुशी मेरी।

ऊपर की तरह यह भी गद्य पढाने की एक विधि है जो आज भी बहुत से शिक्षकों द्वारा पद्य पढ़ाने मे अपनायी जाती है। यदि बालक किसी प्रश्न का उत्तर देने मे असमर्थ रहता है तो उसका उत्तर स्वयं शिक्षक ही देकर बताते है। इस विधि के अनुसार घटना प्रधान, वर्णनात्मक पद्य, खण्डकाव्य तथा ऐतिहासिक या पौराणिक कविताएँ पढायी जा सकती है, क्योंकि इनकी भाषा सरल, वर्णनात्मक, गूढ अलकार मुक्त तथा शैली साधारण होती हैं।

(घ) **व्याख्या विधि :—**इस विधि के अनुसार कविता का सस्वर पाठ कर दिया जाता है। उसके पश्चात् उसकी व्याख्या की जाती है। यहाँ उद्देश्य यह नही होता कि बालक को कविता का शाब्दिक अर्थ बता दिया जाय, वरन् यह कि उसके भाव से भी अवगत कराया जाय। इस प्रकार कविता के उच्च भाव, कल्पना की उड़ान, विचार शक्ति तथा कवि की अनुभूतियों की व्याख्या करके उसका भावार्थ किया जाता है। यहाँ कविता की भाषा और शैली का प्रयोग भी बताया जाता है। कविता के पात्रों, वर्णन किये गये सभी कार्य तथा वस्तुओं का भी परिचय दिया जाता है। प्रधानतः यह विधि कविता के मर्म स्थलों को विद्यार्थी के समक्ष प्रस्तुत करने के लिये अपनायी जाती है। कविता की घटनाओ का वर्णन किया जाता है और प्रसंगवश इतिहास, भूगोल, पुराण, आदि के प्रसंगों की व्याख्या अभीष्ट रहती है। इस प्रकार यह विधि कविता के भाव-पक्ष के साथ-साथ कला-पक्ष की व्याख्या करती है। प्रयुक्त शैली, गुण, अलंकार और छन्द विधान का भी परिचयात्मक अध्ययन कराया जाता है। यह विधि माध्यमिक कक्षाओ मे अपनायी जाती है।

(क) कौन बड़ाई उस नद की,
जिसमें न उठी उत्ताल लहर ?
आँधी क्या उनचास हवाएँ,
उठी नहीं जो साथ हहर ?

सिन्धु नहीं सर कहो उसे
चंचल जो नहीं तरंगों से
मुर्दा कहो उसे जिसका दिल
व्याकुल नहीं उमंगो से।
(शक्ति और सौन्दर्य, 'दिनकर')

(ख) वीरों का कैसा हो वसंत !

भर रही कोकिला इधर तान, मारु बाजे पर उधर गान,
है रंग और रण का विधान, मिलने आये है आदि अंत,
वीरों का कैसा हो वसंत !
गलबांही हो या हो कृपाण, चल चितवन हो या धनुष-बाण,
हो रस विलास या दलित त्राण, हो रही समस्या है दुरन्त,
वीरों का कैसा हो वसंत !
(वीरों का कैसा हो वसंत, 'सुभद्रा कुमारी चौहान,')

(च) **व्यास-विधि या कथा-वाचक विधि** :—यह विधि व्याख्या विधि का ही उन्नत और उत्तम स्वरूप है। इस विधि के अनुसार कविता का पाठ करके उसके प्रत्येक खण्ड, शब्द यहाँ तक कि प्रत्येक अक्षर का भी विश्लेषण किया जाता है। एक ही भाव को समझाने के लिये उद्धरणो, अन्य स्थान के विश्लेषण और प्रसंग का हवाला दिया जाता है। अर्थ की व्याख्या ऐसी की जाती है मानों शिक्षक विद्यार्थी को किसी चलचित्र के दृश्यो का दर्शन करा रहा है। अर्थ को प्रभावपूर्ण करने के लिये शिक्षक कई साधनो का उपयोग करता है। इस विधि को कथावाचक विधि कहते है, क्योकि कथावाचको द्वारा यही विधि प्रारम्भ से अपनायी गयी है। कथावाचक कथा के प्रसग मे एक-एक चरण का पाठ करके उसका विश्लेषण और उसकी भरपूर व्याख्या करता है। वह अपनी व्याख्या को इतना रूचिपूर्ण, मनोमुग्धकारी, तथा प्रभावशालिनी बना लेता है कि कथा-श्रोता उसके साथ भावमग्न होकर मानो आनन्द के लहर में गोता लगा रहा हो। वास्तव मे ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है जब श्रोता को एक प्रकार से विशिष्ट आनन्द का अनुभव होने लगता है। इसे व्यास प्रणाली भी कहते है।

शिक्षक केवल कवि के भावों की व्याख्या करता है, वरन् वह उसकी कल्पना शक्ति और अभिव्यक्ति शैली की भी व्याख्या करता है। इस प्रकार वह

यह प्रयत्न करता है कि विद्यार्थी को कविता की वास्तविक पृष्ठभूमि, उसका आन्तरिक व्यंजनार्थ आदि समझ मे आये।

किस अतीत गौरव की गाथा, कवि, तू गाने आया है?
किस युग की तू करुण कहानी, हमें सुनाने आया है?
क्यों विस्मृत घटनाओं की, फिर याद दिलाने आया है?
क्यों सदियों की सुप्त वेदना, पुनः जगाने आया है?
रहने दे वे मूक व्यथाएँ, सारी अपने ही मन में।
मत कह, क्या-क्या हुआ यहाँ, इस वैशाली के आँगन में॥

(इस वैशाली के आँगन मे—मनोरंजन प्रसाद सिह)

इस विधि मे शिक्षक मुख्यतया इस उद्देश्य से प्रेरित रहता है कि विद्यार्थियो को उस वातावरण मे ले चले जिसमे कवि ने उन भावनाओं को ग्रहण किया है तथा उसने उन्हें व्यक्त भी किया। वास्तव मे काव्य का यही आनन्द है कि हम कवि के साथ उसकी अनुभूतियो में हाथ बँटायें।

लेकिन शिक्षक को यह ध्यान रखना चाहिये कि कही उसकी व्याख्या विषयान्तर का मार्ग न पकड़ ले और वह मुख्य विषय को त्याग कर जंगलों में न भटकता चले। साथ ही उसे यह भी देखना चाहिये कि विद्यार्थियो का मानसिक स्तर क्या है और उसकी व्याख्या उसके अनुकूल उपयोगी होगी या नही। बीच-बीच मे उसे कुछ प्रश्न भी पूछना चाहिये जिनमे यह पता चले कि विद्यार्थियों की विषय सम्बन्धी रुचि बनी हुई है। इस विधि का उपयोग माध्यमिक विद्यालय में न करके महाविद्यालयों के वर्गों मे करना चाहिये। माध्यमिक विद्यालय के अन्तिम दो वर्गों मे भी इसको अपनाया जा सकता है।

तुलनात्मक विधि:—वास्तव में यह विधि व्याख्या-प्रणाली की ही एक प्रक्रियात्मक अवस्था है जहाँ शिक्षक अपने अभीष्ट भावो को सुदृढ़ करने के लिये अन्य स्थलो से अनेक अनुकूल प्रसगो का उल्लेख या व्याख्या किया करता है। लेकिन अपनी विशेषताओं के बल पर अब तुलनात्मक विधि एक स्वतत्र विधि ही हो गई है जिसका उपयोग विश्वविद्यालय की कक्षाओं में हुआ करता है।

इस विधि मे शिक्षक कविता के मूलभावो का अध्ययन करता है और उन मूलभावों की व्याख्या करने के क्रम मे अन्य कवियो की वैसी भावनाओं

का या स्वयं उसी कवि की अन्य कविताओ की वैसी भावनाओं को एक जगह लाकर उनका तुलनात्मक अध्ययन करता है। बाल सुलभ क्रियाओं और मनोवेगो के अध्ययन के लिये शिक्षक तुलसी की निर्दिष्ट व्याख्या के लिये सूरदास या अन्य कवियो की पक्तियो का उदाहरण के साथ व्याख्या करता है। भाव यह है कि किसी विशेष विषय पर कई कवियो की कविताओ को प्रसंगवश लाकर अपनी व्याख्या को पुष्ट किया जाता है।

यह शास्त्रीय विधि है क्योंकि इसमें शिक्षक के अगाध पाण्डित्य और विस्तृत अध्ययन से ही सफलता की आशा की जा सकती है। यह तुलना न केवल हिन्दी साहित्य की कविताओं को लेकर वरन् अन्य भाषाओं के साहित्य से भी की जाती है—अंग्रेजी के कवि वर्डसवर्थ का प्रकृति वर्णन, और कीट्स का रहस्यवाद (mysticism) की तुलना हिन्दी कवियो से करके अध्ययन क्षेत्र और साहित्य प्रेम विस्तृत हो सकता है। यह तुलना केवल कल्पना की उडान, भावों के प्रकटीकरण, आदर्शों के प्रतिष्ठापन तक सीमित न रहकर सूक्तियो के प्रयोग, छन्दविधान, अलकार-व्यवस्था को भी लेकर चलती है। इस प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन से, जब एक ही भाव को पुष्ट करने के लिये कई स्थलों और कई कवियों का सहारा लिया जाता है तो निस्सन्देह काव्यानन्द की प्राप्ति में यह विधि एक महत्वपूर्ण योगदान देती है। इस विधि में शिक्षक को छात्रों के मानसिक स्तर, काव्योचित गुण और रुचि, और साहित्यगत उपलब्धियों पर विचार कर लेना चाहिये।

मैं ढूँढ़ता तुझे था, जब कुंज और वन में।
तू खोजता मुझे था, तब दीन के वतन में॥

—रामनरेश त्रिपाठी

He prayeth well, who loveth well
Both man and bird and beast.
He prayeth best, who loveth best,
All things both great and small,
For the dear God who loveth us,
He made and loveth all.

—S. T. Coleridge.

समीक्षात्मक विधि :—कविता के अध्ययन की सर्वोच्च प्रणाली समीक्षात्मक विधि है। यहाँ कविता का अध्ययन केवल रसास्वादन के लिये नहीं किया जाता वरन् यहाँ कवि के भाव, भाषा, कल्पना, काव्योचित अलकार, छन्द विधान आदि की दृष्टि से ही किया जाता है। इसकी व्याख्या इस प्रकार होती है कि शिक्षक यह मान लेता है कि छात्रों को समालोचना के सामान्य सिद्धान्तो की जानकारी है। अतएव वह प्रत्येक विचार-विन्दु को लेकर कविता के अर्थ के उपरान्त उसकी समीक्षा करता है। छात्र को काव्य की परिभाषा, काव्य के स्वरूप और वास्तविक क्षेत्र, उसकी विशेषताओ के मापदड की जानकारी आवश्यक है। काव्य का भाव-पक्ष क्या है, कला-पक्ष क्या है—इनका सम्यक् अध्ययन उसकी समीक्षा में सहायता करना है। इस विधि को महाविद्यालयो की कक्षाओ मे अपनाया जाता है। महाकाव्यों के अध्ययन में इस प्रणाली से विशेष लाभ होता है।

ऊपर कविता शिक्षण की जिन सात विधियो का उल्लेख किया गया है वास्तव मे वे विभिन्न आयुवाले बालको के कविता-शिक्षण के क्रम में उपयोग मे आती है। इन विधियो का क्रम भी इस प्रकार दिया गया है जो यह संकेत करता है कि कविता के स्व प के अनुकूल ही विधि चुनी गयी है। यथा सरल तुकबन्दियो के लिये गान और अभिनय विधि अपनायी जा सकती है। लेकिन 'कामायनी' और 'साकेत' आदि महाकाव्यो का इस विधि से शिक्षण सम्भव नही। खण्डकाव्यों के लिये व्याख्या-प्रणाली उत्तम मानी गयी है लेकिन यहाँ भी तुलनात्मक, समीक्षात्मक प्रणाली का स्वतन्त्ररूप से उपयोग किया जाता है। समीक्षाप्रणाली मे भी सरल अर्थ-शब्दार्थ की आवश्यकता पडती है। कहने का तात्पर्य यह है कि इनमे से स्वतंत्र रूप मे किसी विधि को अपनाकर हम कविता शिक्षण नही दे सकते जब तक कि अन्य विधियों का, अल्प ही क्यों न हो, सहारा न ले लें। साथ ही सभी कविताओ को हम सभी विधियों को मिलाकर एक सयुक्त विधि के द्वारा नही पढा सकते। यह इस लिये है कि हमारे पाठ्यक्रम मे यही एक ऐसा विषय है जो अत्यन्त ही महत्वपूर्ण होने पर भी विवाद का पूर्ण विषय बन गया है। इस विवाद मे न पड़कर इतना ही पर्याप्त मानना चाहिये कि इसकी एकमात्र विधि यही हो सकती है जिसमे एक ओर तो शिक्षक को विश्वास हो और दूसरी ओर कविता का स्वरूप, उसका विषय, उसकी भाषा, उसकी शैली तथा उसका वास्तविक लक्ष्य उसी विधि को माँगता हो। इसलिये किसी विधि का पहले से निश्चय न करके हमें इन दोनों बातों पर जरा ध्यान देकर विचार कर लेना चाहिये।

(क) अन्य विषयो की तरह कविता के सम्बन्ध में भी इतना सत्य अवश्य है कि उसका सफल शिक्षण शिक्षक के व्यक्तित्व पर निर्भर करेगा। क्योकि उसे कविता के सम्बन्ध मे विशेष आनन्द, रुचि और ईमानदारी प्रदर्शित करने का स्वच्छन्द वातावरण मिलेगा। व्यक्तियो की विचार-धाराओ मे विभेद के कारण शिक्षक कविता का शिक्षण कई विधियों से करेगा और यह उसकी योग्यता, रुचि और अनुभव पर ही निर्भर है कि कहाँ तक वह अपने शिक्षण को प्रभावशाली बना सकता है। लेकिन इतना तो निश्चित है कि कार्य मे उसकी ईमानदारी (Sincerity) ही उसकी सफलता का एकमात्र सोपान है।

(ख किसी विधि को अपनाने के पूर्व कविता के स्वरूप, बालको की मानसिक योग्यता, रुचियों उनकी भाषा सम्बन्धी उपलब्धियो आदि पर विचार करना आवश्यक हो जाता है। लेकिन इन सबसे ऊपर यह मुख्य बात माननी चाहिये कि कविता शिक्षण की विधि का विशेष सकेत केवल उसका निर्दिष्ट उद्देश्य ही कर सकता है और हम देख चुके है कि कविता का वास्तविक लक्ष्य यह है कि विद्यार्थी को एक विशेष आनन्द का अनुभव कराया जाना चाहिये। और उसे काव्य को रसास्वादन कराना भी अपेक्षित है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षक अपने मन मे, अनुभव से, रुचि से किसी भी विधि को अपनाने के लिये स्वतत्र है जो कविता के वास्तविक लक्ष्य की पूर्त्ति मे अनिवार्य रूप से सहायक प्रमाणित होती है। इसलिये हम किसी विधि विशेष का निर्धारण नहीं कर सकते। यह स्वतन्त्रता हमारे अनुभवी हिन्दी शिक्षको को ही होनी चाहिये कि वे सर्वोपयोगी विधि को ही अपनाये। फिर भी उन महत्वपूर्ण बातो का उल्लेख परमावश्यक है जिसके आधार पर शिक्षक को मार्गप्रदर्शन मिलने की आशा की जाती है।

(क) इसमे किसी प्रकार का मतभेद नही है कि प्रथम दो श्रेणियो मे कविता का प्रारम्भिक परिचय कराने के लिये लयात्मक गीतो का, जिनमे कर्म सगीत, समवेत गान सम्मिलित है, उपयोग किया जा सकता है। बालक के रागात्मक संवेगो को जागृत करने के लिये लय और ताल की अत्यन्त ही आवश्यकता है। इसलिये यदि शिक्षक इन वर्ग के लड़को के लिये ऐसे पद्यों का संकलन करें तो उनका लक्ष्य वास्तव मे पूरा हो सकता है। पाठ्य-पुस्तकों मे इस प्रकार के गान उचित मात्रा में नही मिलते। अतएव शिक्षक स्वतंत्र रूप से बाहर से स्थानीय गीतो का या स्वय छन्द रचना करके या

लड़कों द्वारा ही लयात्मक तुकबन्दियाँ कराके एक संकलन तैयार कर सकते हैं। इस प्रकार के गीत बालकों के प्रतिवेश से सम्बन्ध रखते हो और उनके जीवन को पूर्ण रूप से व्यक्त करते हो।

आओ मिल कर गाये गीत,
बालू की हम बनाये भीत,
फिर उसमें एक कलम बनाये,
नाम अपना कमल लिखाये।।

आदि।

(ख) ऊपर की तीन कक्षाओं मे अर्थात् ५वी श्रेणी तक, सरल भाव और भाषा वाली कविताएँ ली जाये और उन्हे बालकों द्वारा गवाया जाय। गवाने का अभ्यास कराया जाना एक उपयोगी विधि है क्योकि इससे कविता की ओर बालकों की रुचि बढती है। साथ ही उनसे अर्थ करायें। कई बार सस्वर पाठ करने से बहुत अंशो तक बालक अर्थ से अवगत हो जाते है। गीत अभिनय विधि का उपयोग किया जाय। साथ ही अर्थ-विधि का भी उपयोग करना चाहिये।

नर हो, न निराश करो मन को।
कुछ काम करो कुछ काम करो।
जग में रहकर कुछ नाम करो।
यह जन्म हुआ किस अर्थ अहो।
समझो जिसमें यह व्यर्थ न हो।
कुछ तो उपयुक्त करो तन को।
नर हो, न निराश करो मन को।

पद्यों का प्रतिलेख लिखवाया जाय और साथ ही बालकों से छोटी-छोटी तुकबन्दियाँ करवायी जाये। पद्यपाठ व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से कई बार कराया जाय। इन क्रियाओं से बच्चों को पद्य से आनन्द मिलेगा और वे स्वेच्छा से तुकबन्दियाँ करने को भी उत्प्रेरित होगे।

(ग) ऊपर की कक्षाओ मे कविता-शिक्षण का एक आवश्यक सोपान यह है कि वर्ग में कविता-पाठ किया जाय। यह आदर्श पाठ शिक्षक द्वारा किया जाय। यदि शिक्षक उचित लय, स्वर, यति, बिराम, स्वराघातादि के नियमों से कविता-पाठ करेंगे तो उसका सबसे बड़ा और व्यापक प्रभाव यह पड़ेगा

कि बालकों के सामने कविता पाठ का एक आदर्श उपस्थित होगा जिसका अनुसरण करके वे भी अच्छी तरह से कविता-पाठ कर सकेंगे। शब्दों की ध्वनि से ही अर्थ का ज्ञान विशेष रूप से प्राप्त हुआ करता है। अतएव कविता का सस्वर वाचन अपेक्षित है। वाचन से बालक की अनुभूतियो मे एक नया अध्याय जुडता है, एक अभूतपूर्व सौन्दर्य का दर्शन होता है और साथ ही उसकी ग्रहण शक्ति और सहानुभूति की भावनाओं का क्षेत्र भी विस्तृत होता है। वह इस योग्य हो सकता है कि कविता के आन्तरिक सौन्दर्य को समझने की शक्ति का विकास करे और उसका रसास्वादन भा कर सके।

शिक्षक के आदर्श कविता-पाठ मे एक प्रकार की तन्मयता आनी चाहिये। यह तन्मयता उसके मस्तिष्क और उसकी कल्पना शक्ति को शब्दों और उनके अर्थो के बीच लगाये रखती है। यह तन्मयता वास्तव में कविता के आनन्द को प्राप्त करने का प्रथम सोपान है। यह सत्य है कि बहुत शिक्षकों को यह ईश्वर प्रदत्त गुण की तरह मिलता है जो स्वाभाविक रूप से उसके लय, विराम, यति आदि के गुण का प्रदर्शन करते है। लेकिन बहुत से ऐसे भी शिक्षक है जिन्हें कविता पाठ का अभ्यास करना चाहिये। प्रशिक्षण सस्थाओं मे इसके लिये उचित क्रियाशीलन अपनाये जायें और नियमित प्रशिक्षण दिया जाय। पद्य का वाचन गद्यात्मक नही होना चाहिये। कविता-पाठ भावानुकूल होना चाहिये। आवश्यक अंगों का संचालन हो जैसे क्रोध या आनन्द या आश्चर्य का प्रदर्शन। संगीतात्मक पाठ हो, लेकिन वर्ग में संगीतमय पाठ हो या नही इस पर अभी मतभेद है। वास्तव में कविता को गाना का रूप देकर वर्ग में गाना वर्जित है। शिक्षक द्वारा कविता का दो-तीन बार पाठ करना वाछनीय होगा।

(घ) **बालकों द्वारा कविता-पाठ**—शिक्षक के सस्वर वाचन के पश्चात लड़कों द्वारा भी कविता पाठ कराना चाहिये। गद्य का जो आनन्द मौन पाठ मे मिलता है, पद्य का वही आनन्द उसके सस्वर वाचन मे है। शिक्षक को लड़कों से कविता-पाठ नियमित रूप से कराना चाहिये। वाचन व्यक्तिगत रूप मे भी हो सकता है और समवेत गान द्वारा भी। प्रारम्भिक कक्षाओं में समवेत गान, उच्च कक्षाओं में व्यक्तिगत वाचन वांछनीय होगा। पाठ से शब्दों का चित्र मस्तिष्क पर न केवल आँखो के द्वारा वरन् कान और ध्वनि के द्वारा भी अंकित होता है। इस प्रकार इसकी व्यापकता स्वतः सिद्ध है। कविता पाठ का पर्याप्त अभ्यास होना चाहिये।

साथ ही, बालकों को कविता कंठस्थ करने के लिये भी प्रोत्साहित करना चाहिये। हाँ, इसके लिए किसी प्रकार का दबाव नही देना चाहिये। रुचि के कारण वे स्वयं अच्छी पंक्तियो को कंठस्थ करना चाहेंगे।

(च) कविता की व्याख्याः—यदि बालकों की भाषागत योग्यता का ध्यान रखकर गद्य और पद्य पाठों का निर्धारण किया गया है तो यह निश्चित है कि उन्हे शब्दार्थ समझने में किसी प्रकार की कठिनाई न होगी। फिर ऐसे ही शब्द भी आयेगे जिनका अर्थ वह सरलता से कर सकता है। लेकिन शिक्षक को कविता की व्याख्या उसके मूलभावों में कर देनी चाहिये। स्पष्टीकरण के स्थनो को प्रसग देकर समझा देना चाहिये। कविता के वाक्य और उसके व्याकरण के जाल मे शिक्षक को न पड़ना चाहिये क्योंकि उससे कविता का वास्तविक आनन्द तो दूर हो जायगा। इसके लिये गद्य शिक्षण मे पर्याप्त समय और स्थल मिलते हैं। व्याख्या में शिक्षक को मुख्यतः कविता के विषय तथा उसमे कवि का विचार कितना है बताना चाहिये। कवि की कल्पना शक्ति की भी व्याख्या होनी चाहिये। इनकी व्याख्या ऐसी हो कि लड़कों की कल्पना शक्ति का भी विकास हो।

(छ) माध्यमिक कक्षाओं मे इसका विशद रूप प्रस्तुत किया जाना चाहिये। साथ ही, शिक्षक बालकों को कविता की शैली से भी परिचित करा दें। कविता के तीन गुणो माधुर्य, ओज और प्रसाद की भी व्याख्या कर देनी चाहिये। साथ ही अलंकार और छन्द रचना का भी परिचय करा देना चाहिये। लेकिन काव्य का वास्तविक आनन्द तभी मिल सकता है जब शिक्षक विद्यार्थियों के सामने कविता के प्रधानभाव तथा उसकी पूर्णता के लिये अधीनस्थ विभाव, अनुभाव तथा सचारी भाव का पूर्ण परिचय प्रस्तुत कर दे।

(ज) कला पक्ष की दृष्टि से भी को कविता के उन स्थलों की व्याख्या कर देनी चाहिये जो काव्य की भाषा में मर्मस्थल कहे जाते है। ऐसे मर्मस्थल वास्तव में मानव के अन्तःकरण का उद्वेलित कर देते है और वस्तुतः समूचे काव्य का निचोड़ भी इन्ही स्थलों में रहता है। अतएव कविता-शिक्षण को प्रभाव शाली बनाये रखने के लिए यह विधान माना जाना चाहिये। स्व० जगन्नाथ दास "रत्नाकर" के उद्धव-शतक का यह अंश अवलोकनीय है—

भेजे मन भावन के ऊधव के आवन की,
सुधि ब्रज-गाँवनि में पावन जबै लगीं ।
कहै रत्नाकर ग्वालिनि की झौरि-झौरि,
दौरि-दौरि नन्द पौरि आवन सबै लगीं ॥
उझकि-उझकि पद-कंजनि के पंजनि पै,
पेखि-पेखि पाती छाती छोहनि छबै लगीं ।
हमकौ लिख्यौ है कहा, हमकौ लिख्यौ है कहा,
हमकौ लिख्यौ है कहा, कहन सबै लगीं ॥

यहाँ सभा गोपियो द्वारा कृष्ण ने हमको क्या लिखा, का तीन बार कहना वस्तुतः समूचे पद्य का निचोड़ हा है । जो किसी भी काव्य के प्रेमी के लिये अनेक मानव-भावनाओं को व्यक्त करता है । उसी प्रकार सूरदास के पद्य मे मर्मस्थल को देखिये ।

काहे कौ रोकत मारग सूधौ ।
सुनहु मधुप निरगुन कंटक तै राजपंथ क्यों रूँधौ ॥
कै तुम लिखि पठए हौ कुबिजा कह्यौ स्यामघन हूँधौ ।
वेद पुरान सुमृति सब ढूंढ़ौ, जुवतिनि जोग कहूँ धौ ॥
ताको कहा परेखौ कीजै, जानै छाँछ न दूधौ ।
सूर सूर अक्रूर गयौ लै, ब्याज निबेरत ऊधौ ॥

(अ) कवि परिचय :—अन्त में कवि का संक्षिप्त परिचय देना अभीष्ट है । साथ ही शिक्षक को चाहिये कि कवि की मुख्य-मुख्य कृतियो का उल्लेख कर दे और यह भी बता दे कि कवि किन-किन प्रकार के भावो को व्यक्त करने मे प्रवीण है । कवि के दर्शन (philosophy) की व्याख्या भी करनी चाहिये ।

(आ) कविता में प्रश्न का स्थान :—कविता-शिक्षण में प्राय: प्रश्न को लाकर काव्य के आनन्द मे रोक लगा देने का आक्षेप साधारणतः किया जाता है । कुछ लाग इस पक्ष मे हैं कि कविता-शिक्षण में प्रश्न बिलकुल न किये जाये क्योंकि रसास्वादन मे व्यवधान होने लगता है । इसके विपरीत कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनका विचार है कि अन्य विषयो के शिक्षण मे जिस प्रकार हम प्रश्न पूछकर बालक की वर्गगत प्रगति का पता लगाते हैं, उसी प्रकार कविता के शिक्षण मे भी प्रश्न किये जायें । इस पचड़े मे विशेष न पडकर

हिन्दी-शिक्षक को केवल इतना ही समझना चाहिये कि प्रश्न अवश्य पूछे जायें। लेकिन यह मान लेना चाहिये कि प्रश्न कैसे हों। इस सम्बन्ध में निम्नांकित विचार ग्रहण योग्य है–"उनका उद्देश्य छात्रों को किसी कविता में, सुनने, धीरे-धीरे वाचन करने या स्वयं मौन वाचन करने की अपेक्षा कुछ अधिक देखने मे सहायता करना है। वे बोधगम्यता को तीक्ष्ण करने, कल्पनाशील आँखों को जाग्रत करने और मस्तिष्क के कानों को शब्दो के सगीत और अभिव्यंजनात्मक ध्वनियो से अवगत कराने के लिये हैं और प्रत्येक पाठक को पूर्णतः कवि या किसी अभिनयात्मक कविता के पात्रो के एक साथ एकाकार करने मे सहायता करना है।"*

कविता-शिक्षण के साधन :— यहाँ कविता-शिक्षण के कुछ क्रियाशीलनों का भी उल्लेख कर दिया जाता है जो शिक्षक अपने शिक्षण कार्य मे उपयोग मे ला सकते है।

(क) प्रारम्भिक कक्षाओ मे लयात्मक गीत तैयार कराये जायें और उनकी प्रतिलिपि तैयार करानी चाहिये।

(ख) विद्यालय के क्रियाशीलनो-उद्योग, सामाजिक सेवा, बागबानी आदि में सामूहिक गान की व्यवस्था यथास्थान करनी चाहिए।

(ग) सास्कृतिक बैठकों मे कविता पाठ का प्रबन्ध करना चाहिये जिसमें बालक या तो अपनी स्वतत्र रचना का वाचन करे या किसी अन्य कवि की ही कविता पाठ करे। अन्त्याक्षरी तथा सुभाषित प्रतियोगिताओं की व्यवस्था की जाय।

---

* "Then purpose is to help the pupils to see more in a poem than they would perceive by listening, reading silently or through their own silent reading. They are intended to sharpen the perception, to awaken the imaginative eye and to help the mind's ear to be aware of the music and expressive sounds of the words and to help each reader to identify himself more fully with the poet or with the characters in a dramatic poem."

—Teaching the Mother Tongue in Secondary Schools, P. Gurrey, p/137.

(घ) ऊपर के वर्गो मे अभिनय की व्यवस्था की जाय जिसमे कविता पाठ के स्थलों का उपयोग किया जाना चाहिये ।

(च) मुशायरा का प्रबन्ध करना चाहिए जहाँ लड़कों की स्वरचित कविताओं के पाठ करने का कार्यक्रम रखा जाय ।

(छ) समस्यापूर्त्ति के लिये समय दिया जाय जहाँ एक दल या एक बालक कोई समस्या प्रस्तुत करे जिसकी पूर्त्ति दूसरा दल या बालक करे ।

(ज) कवि सम्मेलनो मे भाग लेने के लिये लडको को प्रोत्साहित किया जाय ।

इस अध्याय के सम्पूर्ण विवेचन का यही साराश है कि शिक्षक को उन सभी विधियो और साधनो का उपयोग करना चाहिए जिनसे कविता का वास्तविक उद्देश्य पूरा हो सके । और "कविता-शिक्षण का उद्देश्य है वर्ग में प्रत्येक बालक को नवीन अनुभूति और उसकी सहानुभूतिपूर्ण कल्पना शक्ति को विस्तृत होने मे उत्कट और सच्चा आनन्द उपलब्ध करना, और कविता को सवेग और कल्पना को उत्तेजित करने योग्य बनाना है जिसके लिये कविता स्वय पूर्ण पर्याप्त अभिव्यजना है ।"*

---

* "The aim (of teaching poetry) is to afford each individual in the class a keen and sincere pleasure in a new experience and an enlargement of his powers of sympathetic imagination, to enable the poem to stimulate emotions and imagination for which the poem is itself the adequate expression."

—Teaching Poetry, Oxford Univers'ty Press, p6.

है, जिसकी उत्तम व्याख्या इससे और कहाँ मिलेगी। "भरत स्वयं नाटक का हितकारी, बुद्धि बढ़ाने वाला और लोक के लिये उपदेश को जन्म देने वाला कहते हैं। इसमें उत्तम, मध्यम और नीच सभी प्रकार के मनुष्यों के काम दिखलाये जाते हैं। उनके द्वारा सभी भावों एवं कार्यों की शिक्षा दी जा सकती है। नाटक में प्रिय-अप्रिय सभी कार्य कलापों का अनुकरण होता है। कल्पना द्वारा कलाकार जिन रूपो की उद्‌भावना करता है उनकी यह विशेषता होती है कि सुख-दुख स्वरूप वास्तविक जगत् का कल्पनात्मक आह्लादमय रूप प्रस्तुत करते हैं। नाटक वेद, विद्याओं और इतिहासों की कथाओं का परिकल्पन करने वाला तो है ही, संसार में विनोद करने वाला भी है। ऐसा कोई अध्ययन, शिल्प, विद्या, कला, योग या काम नहीं है जो इस नाटक में न देखा जाता हो। सभी शास्त्र, सब शिल्प, विविध प्रकार के कर्म इस नाट्य में एकत्रित होते है और सन्निविष्ट रहते हैं और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि सामान्य लोग भी इन विषयों का उपदेश नाटक से ग्रहण कर सकते है।"*

जब नाटक का इतना सर्वव्यापी और महत्वपूर्ण स्थान निर्दिष्ट है तो शिक्षण क्षेत्र में नाटक का सम्मिलित किया जाना विवादरहित माना जाना चाहिये। शिक्षाशास्त्रियों ने तो यहाँ तक स्पष्ट किया कि सभी विषया का शिक्षण इसी माध्यम से दिया जाना चाहिये। पाश्चात्य देशों विशेषतः इंगलैड, फ्रांस और अमेरिका में तो इसका सफल प्रयोग प्रदर्शित किया जा चुका है। संयुक्त राष्ट्र संघ की शिक्षा विज्ञान संस्कृति परिषद् ने सभी राष्ट्रों से नाटक प्रणाली को शिक्षण व्यवस्था में महत्व देने की आशा प्रकट का है। इसे विशेषतः पिछड़े देशों के लिये शिक्षा प्रसार का एक उपयोगी, प्रभावपूर्ण साधन माना गया है।

नाटक शिक्षण का महत्व :—नाटक शिक्षण का सर्वप्रथम महत्व इस बात में है कि वह बालकों में अनुकरण करने की प्रवृत्ति विकसित करता है और उसका उत्तरोत्तर विकास करता है। अनुकरण की प्रवृत्ति के कारण बालक नाटककार द्वारा प्रस्तुत पात्रों का रूप ग्रहण करता या स्वॉग ले लेता है (Impersonation)। इस क्रिया से वह पात्र विशेष की शारीरिक, मानसिक और नैतिक विशेषताओं को अपने में, अस्थायी रूप से ही, ग्रहण

* वही, पृ० ५१

कर आत्मसात कर लेता है। रावण का पॉर्ट लेने वाला व्यक्ति रंगमंच पर न केवल विशाल शरीर तथा दश मुख ही बना लेता है वरन् उतनी देर के लिए उसका मानसिक स्तर और नैतिक स्तर भी रावण का ही हो जाता है। उसी तरह राम का स्वांग ग्रहण करनेवाला व्यक्ति भी न केवल तीर धनुष धारण करता है वरन् अपने मुख पर ओज, प्रतिभा और पुरुषोत्तम राम की अनेक व्यक्त और अव्यक्त भावनाओं को भी मुखरित कर लेता है। यह स्वांग ग्रहण उसे पात्र विशेष के शब्दों, विचारों और कार्यो को भी अपनाने के लिये बाध्य-सा कर देता है और वह उसी पात्र की नाईं अन्य पात्रों से मिलता है, उनके सम्पर्क में आता है और सामाजिक क्रियाशीलनों में भाग लेता है। पात्रत्व वह इस प्रकार स्वीकार कर लेता है कि रंगमंच पर उसकी अपनी पृथक स्थिति नही रहती। अनुकरण की कला से वह अपने में उन सभी गुणों को भी अस्थायी रूप से धारण कर लेता है और हम रंगमंच पर यह नही समझते कि रावण का चरित्र करने वाला एक साधारण विद्यार्थी है, वरन् हम उसे रावण ही समझ लेते है। और वास्तव में नाटक का आनन्द इसी अनुभूति मे है।

इस प्रकार का स्वांग ग्रहण (impersonation) उसे पात्र के साथ काल्पनिक तादात्म्य (imaginative identification) स्थापित करने की प्रेरणा और शक्ति देता है। यह तादात्म्य विचारों, सहानुभूतियों, ग्रहणशक्ति और मूल्यांकनादि में व्याप्त रहता है और यह उसके लिये एक विशेष मूल्य रखता है। क्योंकि इसमें इसके विचारों, कल्पनादि का स्तर पात्र के मानसिक स्तर के अनुकूल ही उन्नत या उच्चतर हो जाता है। विशेषतः अच्छे नाटकों के अभिनय में यह अवस्था घटित होती है। यह तादात्म्य इतना सघन और मार्मिक होता है कि पात्र का सम्पूर्ण चरित्र ही अभिनेता में व्याप्त होकर उसपर मानो जादू-सा डाल देता है।

अभिनय में कथोपकथन ही महत्वपूर्ण स्थान का अधिकारी है; क्योंकि इस के उचित संचालन पर ही नाटक की सफलता निर्भर करती है। वस्तुतः कथोपकथन नाटक का प्राण है और उसकी शक्ति है। कथोपकथन का सुनकर, देखकर, या पढ़कर ही हमें पात्रों और उनके विचार, समय, स्थान, उद्देश्य, तथा अन्य कार्यशीलन आदि का पूर्ण परिचय मिलता है। कथावस्तु का सम्पूर्ण उतार-चढ़ाव, प्रगति-प्रत्यागति, क्रोध और शान्ति प्रेम और घृणा इसी कथोपकथन के द्वारा अनुभूत होता है। कथोपकथन में अभिनेता जिस भाषा का उपयोग करता है वह उसकी अपनी सामान्य भाषा

अध्याय १५

नाटक-शिक्षण की विधि

काव्य के दृश्य और श्रव्य दो भेद माने गये हैं। दृश्य काव्य में किसी रूप का आरोप किया जाता है और उसका अनुकरण किया जाता है। इसलिये इसे रूपक की संज्ञा दी जाती है। रूपक काव्य की वह विशेष दिशा है जिसमें लोक-परलोक की घटित-अघटित घटनाओं का दृश्य दिखाने का आयोजन किया जाता है और इस कला के लिये अभिनय की सहायता ली जाती है। रूपक के १० भेद माने गये हैं—नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अंक, वीथी और प्रहसन। भारतीय नाट्याचार्यों ने नाट्यकला का बड़ा ही सूक्ष्म और व्यापक विवेचन किया है। उप रूपक के भी १८ भेद माने गये हैं।

"नाट्य-शास्त्र" के अनुसार नाटक की उत्पत्ति इस प्रकार मानी गयी है—"एक बार बैबस्वत मनु के दूसरे युग में लोग बहुत दुःखित हुए। इस पर इन्द्र तथा दूसरे देवताओं ने जाकर ब्रह्मा से प्रार्थना की कि आप मनोविनोद का कोई ऐसा साधन उत्पन्न कीजिये जिसमें सबका चित्त प्रसन्न हो सके। इस पर ब्रह्मा ने चारों वेदों को बुलाया और उन चारों की सहायता से नाट्य के पंचम वेद की रचना की। इस नये वेद के लिये ऋग्वेद से संवाद, सामवेद से गान, यजुर्वेद से नाट्य और अथर्ववेद से रस लिया गया था।" भारतीय नाट्याचार्यों में प्रथम आचार्य भरतमुनि माने जाते है जिनका नाट्यशास्त्र नाटक सिद्धान्तों की प्रथम और सबसे प्रमुख रचना है। यह ३६ अध्यायों का विशाल ग्रन्थ है जिसमें ६००० श्लोकों में इस पंचम वेद की वृहद व्याख्या की गयी है।

संस्कृत साहित्य की तरह हिन्दी साहित्य में भी अनेक रूपक-ग्रन्थों की रचना की गयी है जिनमें नाटक की प्रचुरता और बहुलता है। प्रस्तुत अध्याय में रुपक के इसी प्रमुख भेद नाटक के शिक्षण की विधि का विवेचन किया जा रहा है जो सभी रूपक रचनाओं के लिए सामान्यतः सत्य है।

नाटक का महत्व :—नाटक का सर्वप्रथम महत्व इस बात में है कि यह कवित्व की चरमसामा (नाटकान्त कवित्वं) माना जाता है। जहाँ मनुष्य श्रव्य काव्य को जिसमें उसे नाना शारीरिक और मानसिक क्रियाएँ करनी पड़ती है पढ़ कर या सुनकर समझ सकता है वहाँ वह दृश्य काव्य में केवल रंगमंच पर अभिनय देख कर ही आनन्द ग्रहण कर सकता है। यह आनन्द इतना महत्वपूर्ण है कि साहित्यिकों ने इसे ही "ब्रह्मानन्द सहोदर" माना है और संभवतः इसीलिए इसे उत्तमोत्तम काव्य की संज्ञा भी दी गयी है।

नाटक का दूसरा महत्व इस बात में है कि यह अकेला होते हुए भा अलग-अलग रुचि रखने वालों का एक साथ समाराधन करता है अर्थात् सभा की रुचि की पूर्त्ति करता है। इसीलिए तो कालिदास ने कहा था—

नाट्यं भिन्नरूचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्।

नाटक बहुत प्रकार के भावों, घटनाओं तथा कथोपकथन का प्रवन्ध किस प्रकार करता है यह स्वयं आचार्य भरत के शब्दों में अवलोकनीय है—"इस नाटक में न केवल आप लोगों का (दैत्यों का) ही कल्पना द्वारा अनुकरण होता है, न देवताओं का ही। प्रत्युत इसमें समग्र त्रैलोक्य के भावों या अवस्थाओं का ही अनुकीर्तन अथवा अनुकरण है। इसमें कही धर्म है, कहीं क्रीड़ा, कहीं अर्थ (राजनाति), कहीं श्रम, कहीं हँसी है, कहीं युद्ध, कहीं काम है, कहीं वध। धर्म में प्रवृत्त होने वालों के लिए इसमे धर्म है तथा काम और अर्थ का सेवन करने वालों के लिए काम भी इसमें है, उद्दन्डों का निग्रह और मत्तों का दमन करने की क्रिया भी इसमें है। नपुंसकों में भी धाष्टर्य उत्पन्न करने वाला है, वीरों को उत्साह देने वाला, अबोधों को बोध कराने वाला, विद्वानों में विदग्धता उत्पन्न करने वाला है।

"नाटक ऐश्वर्यवान लोगों का विलास है तथा जो दुःख पीड़ित हैं उनको स्थिरता देने वाला है, जो अर्थ पर आश्रित है उनका यह अर्थ है एवं उद्विग्न चित्त वालों को धैर्य बनाने वाला है। यह नाटक नाना भावों से समन्वित है। इसमें विविध प्रकार के अवस्थान्तर हैं तथा लोकवृत्त का अनुकरण करने वाला है।"*

नाटक की उपयोगिता और महत्व केवल इस बात मे नहीं है कि वह विविध रुचियों का समाराधन करता है वरन् उसका शैक्षिक महत्व भी स्पष्ट

* नाट्य पद्धति द्वारा शिक्षण, (चन्द्रशेखर भट्ट) पुस्तक से उधृत, पृ० ५०

नाटक शिक्षण से मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों का उदात्तीकरण होता है। अभिनय में हम अनेक ऐसे पात्रों का स्वांग करते हैं जो हमारे मूल उद्देश्य—चरित्र विकास—को पूरे करते हैं। बुरे आदमियों का चरित्र करना भी हमें ऐसे फलाफल से भेंट कराता है जहां हम समझ पाते है कि सत्य और असत्य पहचानने और उससे अलग करने में प्रकृति स्वयम् निपुण है अतएव हमें असत्य और बुराई से दूर भागना चाहिये।

अभिनय देखने से हमारे बहुत से मानसिक रोगों का निदान भी संभव है क्योंकि इसमें मनोरंजन का प्राधान्य है और कहा भी गया है कि नाटक सभा विषयों का कान्ता के समान साग्रह सुरूचिपूर्ण उपदेश देता है।

नाटक का प्राण कथोपकथन होने से, तर्क का क्रमिक विकास पाया जाता है और तब मस्तिष्क को तर्क करने का प्रशिक्षण मिल जाता है।

इससे स्पष्ट है कि नाटक-शिक्षण से अपेक्षित मानसिक विकास होता है।

(ग) आध्यात्मिक विकास का उद्देश्य :—नाटक में उत्तम चरित्रों का नैतिक विकास देखकर स्वत: उत्तम कार्य करने की प्रेरणा मिलती है और इस प्रकार व्यक्ति का नैतिक विकास होता है।

नाटक-शिक्षण का सबसे बडा उद्देश्य यह है कि यह दर्शक को एक रसविशेष की अनुभूति कराता है जिसे अलौकिक आनन्द का जनक बताया गया है। नाटक के स्थलों को देखकर हृदयालु सहृदय उस स्थिति मे पहुँच जाता है जब व्यक्तिविशेष तक न रहकर सम्पूर्ण मानव का भाव छा जाता है। तब पात्र विशेष का सुख-दुख, केवल उसी तक सीमित न रहकर सम्पूर्ण विश्व तक व्याप्त हो जाता है। ऐसी स्थिति में नाटककार की तरह उसकी भी वृत्तियां एकतान, एकलय हो जाती है और उसे भी वही संगीत सुनायी पड़ता है जो नाटककार को कवि के समान अनुभूत होता है। काव्य में इसे साधारणीकरण की संज्ञा दी जाती है और 'ब्रह्मानन्द सहोदर' उससे उत्पन्न आनन्द को कहते हैं। नाटक की यह आकृति हमारे आन्तरिक भावों और हमारी आत्मा को इस प्रकार के साधारणीकरण से सदा उद्वेलित करती है जो हमारी आध्यात्मिक वृत्तियों को उदात्त बनाती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि नाटक-शिक्षण से हमारा आध्यात्मिक विकास भी होता है और भारतीय नाट्य परम्परा का यही एकमात्र उद्देश्य है।

(घ) सामाजिक विकास का उद्‌देश्य :—नाटक शिक्षण से बालकों को यह प्रशिक्षण मिलता है कि हम सामाजिक पृष्ठभूमि में किस प्रकार के व्यक्ति से

कैसा व्यवहार करें और किस प्रकार की भाषा को प्रभावपूर्ण तरीका से व्यक्त करें। सामाजिक व्यवहार-कुशलता का इससे बढ़कर व्यावहारिक ज्ञान अन्यत्र कहां मिलेगा।

नाटक के नायक—hero—को देखकर यह भाव उत्पन्न होता है कि यह नायकत्व हमें प्राप्त होता। और जो व्यक्ति इस प्रकार के कार्यक्रम में भाग लेता है, निस्सन्देह रूप से अपने में नायकत्व (Leadership) की भावना का विकास करता है।

नाटक-शिक्षण से हमारे हृदय के रागात्मक संवेगों को मुखरित होने का पर्याप्त अवसर मिलता है और हम मनोरंजन के एक बड़े ही उपयोगी साधन से परिचित हो जाते है। अपने कठिन से कठिन श्रम के बाद या दुःख-विषाद के क्षणों में भी नाटक हमारा मनोरंजन करके हमारा बडा ही उपकार करता है।

नाटक-शिक्षण से बहुतों के लिये सृजनात्मक प्रवृत्ति के विकास का एक माध्यम खुल जाता है और नाटक देखने या पढने से व्यक्ति में नाटक लिखने की प्रेरणा भी मिलने लगती है।

इस प्रकार हम देखते है कि नाटक-शिक्षण से स्वयं शिक्षा के ही आधारभूत उद्देश्य पूरे होते हैं और इस जीवन की सबसे बड़ी शिक्षा मिलती है। अतएव हमारे हिन्दी शिक्षकों को इसके शिक्षण में अधिक से अधिक क्रियाशीलता दिखाकर इसे काव्य की उच्चकोटि में प्रतिष्ठापित करना चाहिये।

नाटक-शिक्षण की विधि :—नाटक के शिक्षण में अब तक मुख्यतया निम्नलिखित विधियों को अपनाया गया है :—

(क) प्रयोग प्रणाली।

(ख) आदर्श नाट्य प्रणाली (आदर्श पाठ)।

(ग) कक्षाभिनय प्रणाली (कथोपकथन)।

(घ) व्याख्या प्रणाली (समीक्षा या विवेचना)।

(क) प्रयोग प्रणाली :—प्रयोग प्रणाली के अनुसार नाटक का विधिवत और नियमित अभिनय किया जाता है। विद्यालय में एक रंगमंच बना होता है, पर्दे तथा साज सामान आदि का प्रबन्ध रहता है। इसके लिये नियमित अभ्यास कराया जाता है। कुछ विद्वानों ने इसे कक्षा-शिक्षण की दृष्टि से अनुपयोगी बताया है क्योंकि इसमें बहुत समय लगता है और इस क्रियाशीलन के आगे

नहीं है वरन् उस पात्र विशेष की भाषा है जिसका वह अभिनय कर रहा है। यह भाषा अनोखे ढंग से उसके भावों को अर्थपूर्ण विधि से अभिव्यंजित करती है। वह उसके मस्तिष्क को रंगमंच पर ही नियंत्रित और अनुशासित रखती है और वह एक प्रकार से अभिनय की परिस्थिति, क्रिया-कलाप, चरित्रीकरण आदि में उन्ही शब्दों के आदेशों का पालन करता जा रहा है। वह नियंत्रण और अनुशासन इतना प्रभावपूर्ण है कि वह अभिनेता को एक व्यवहार विशेष के लिये विशेष तौर से तैयार रखता है। भाषा सम्बन्धी यह क्रियाकलाप उसे उचित लय, स्वर, यति, स्वराघात, अक्षर-व्यक्ति भावानुकूल और परिस्थिति अनुकूल बोलने का प्रशिक्षण देता है। किस पात्रसे किस प्रकार का और किस समय कैसा व्यवहार करना चाहिये—यह सब कुछ-नाटककार द्वारा पूर्व निर्णित और पूर्व सज्जित रहने पर भी रंगमंच पर सहज, नैसर्गिक और प्राकृतिक रूप से चलता रहता है, और दर्शकों को असाधारण आनन्द और मनोरंजन की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार हम देखते है कि अभिनय में बालक विचार, अनुभव, क्रियाओं एवं भाषा-प्रयोग के नवीन वातावरण मे ही अपने को पाता है और उसी की नयी अनुभूति होती है। वह सामान्य जीवन से हटकर एक अलौकिक जीवन में प्रवेश करता है। वह यह अनुभव करता है कि उसने जिस भाषा का व्यवहार किया है वह उसके तत्कालीन भाव, विचार, अनुभव तथा क्रियाओं का सार रूप है। यदि अभिनय उचित निर्देशन मे किया गया तो इस प्रकार, निस्सन्देह, एक ओर मस्तिष्क का प्रशिक्षण और दूसरी ओर भाषा की उपलब्धियों और विचार अभिव्यक्ति पर स्थायी प्रभाव पड़ेगा।

इसीलिये तो कहा गया कि—"जो कुछ भी हम प्रस्तुत कर सकते है, उनमें यह (नाटक-शिक्षण) सर्वोत्तम भाषा सम्बन्धी शिक्षा है। इसमे हमारे विद्यार्थियो की भाषागत् योग्यताओं का प्रशिक्षण और अनुशासन हो रहा है और वे एक विशेष सूक्ष्म विशिष्टतापूर्ण भाषा का उपयोग करने के लिये अभ्यस्त किये जा रहे हैं।"*

---

* This is the finest linguistic education, we can provide, in this our pupils, language abilities are being trained and disciplined and they are being practised in using language of a particular excellence." Teaching Mother Tongue in Secondary Schools,

P. Gurrey p 155-56.

यह सत्य है कि दूसरों के उत्तम और उदात्त विचारों को सदा माचते रहने से हमारा अपना विचार और भाषा सम्बन्धी नियंत्रण भी निगृत और दृढ़ होता हे।

नाटक-शिक्षण के उद्देश्य:—नाटक शिक्षण के महत्व की व्याख्या अब हमें उसकी दूसरी कडी नाटक-शिक्षण के उद्देश्य—की ओर ले जाती है। नाटक शिक्षण के निम्नांकित उद्देश्य माने गये हैं। इन उद्देश्यों की चर्चा हम चार स्तम्भों—शारीरिक उद्देश्य, मानसिक उद्देश्य, आध्यात्मिक उद्देश्य और सामाजिक उद्देश्य में करेंगे और यह प्रमाणित करने की चेष्टा करेंगे कि नाटक शिक्षण से सम्पूर्ण शिक्षा के उद्देश्यों के पूर्ण होने की पूरी संभावना है।

(क) शारीरिक उद्देश्य:—नाटक का मूल उद्देश्य यह है कि बालक में अनुकरण की प्रवृत्ति का उत्तरोत्तर विकास हो और उसे अभिनय कला का ज्ञान हो। अभिनय की यह कुशलता उसके चार भेदों के निरूपण में निहित हैं। यथा—कायिक, वाचिक, आहार्य्य तथा सात्विक। कायिक अभिनय का तात्पर्य यह है कि अभिनेता अपने अंगों का संचालन करके अभिनय दिखायें। अंगों के संचालन की क्रिया घूमने, दौड़ने, टहलने, मारपीट करने, नृत्य और कर्मसंगीतादि में होती है; इसके अतिरिक्त अनेक अवसर भी है जहां अभिनेता को अग संचालन का श्रम करना पड़ता है। नृत्य से उसके शरीर के विभिन्न अवयवों-मांसपेशियों, हाथ, पैर आदि का विकास होता है और शारीरिक श्रम से उसके अंगों में लोच और स्फूर्ति आती है। इसके लिये शिक्षणक्रम में शारीरिक प्रशिक्षण का पृथक कार्यक्रम रखा भी गया है।

अभिनय का एक साधन वाणी का प्रयोग है जो 'वाचिक' कहा गया है। यहां सामान्य संभाषण, संगीतादि में भी हमारे उन अवयवों का पर्याप्त संचालन होता है जो उच्चारण में उपयोगी हैं। शब्दों और ध्वनि के शुद्ध स्वरूप, स्वराघात, लय, ताल, यति, गति आदि ऐसी विशेषताएँ हैं जिनका मूलाधार हमारे उच्चारणोपयोगी अवयवों का प्रशिक्षण है। अतएव नाटक शिक्षण से शारीरिक विकास का उद्देश्य भी स्पष्ट है।

(ख) मानसिक विकास का उद्देश्य:—नाटक-शिक्षण और अभिनय से हमारे मानसिक संवेगों का विकास होता है। इन्हीं संवेगों के उठने पर नाटक के फल की प्राप्ति निर्भर करती है। ये ही वेग संचारी भाव, अनुभाव, विभाव आदि की प्रक्रियाओं से स्थायीभाव को व्यक्त करते हैं जो रस का जनक कहा गया है।

माध्यमिक कक्षाओं में अभिनय और शिक्षण का उचित समावेश वांछनीय होगा। तात्पर्य यह है कि शिक्षक अभिनय के लिये उन्हें प्रोत्साहित करें और वर्गेतर क्रियाओं में उसे स्थान दें। वर्ग में नाटक की व्याख्या करने का ध्येय रखना चाहिये जिसमे बालकों को नाटक के विषय का ज्ञान हो जाय और उन्हें उसका भाव समझने में कठिनाई न हो। उसके मुख्य भावों, कथोपकथन, और प्रसंगों की व्याख्या की जाय। माध्यमिक स्तर का अन्तिम दो कक्षाओं में व्याख्या प्रणाली को विशेष तौर से अपनाना चाहिये। जिसमें बालकों को नाटक का विवेचन करने का प्रारम्भिक ज्ञान हो जा सके। महाविद्यालयों में तो इसी (समीक्षात्मक प्रणाली) का खुलकर उपयोग करना चाहिये।

लेकिन नाटक-शिक्षण के सम्बन्ध मे सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उसका वास्तविक उद्देश्य इसी बात में निहित है कि नाटक बालक को उस आनन्द की प्राप्ति करने में सफल हो जिसकी अनुभूति नाटककार ने स्वयं की है आर जिसका रसास्वादन उसने किया है। और इस रसास्वादन के लिये नाटक का पठन किसी भी तरह, विशेषत: अपरिपक्व मस्तिष्क के बालकों के लिये उतना प्रभावोत्पादक न होगा जितना कि उसका अभिनय ही। नाटक का माध्यम मानव व्यक्तित्व है न कि मुद्रित शब्द। इसलिये विद्यालयों में नाटक-शिक्षण के लिये अभिनय की व्यवस्था होनी चाहिये और··· "वर्ग में, विद्यालय सभा-भवन में, और यथासंभव मुक्त वातावरण मे रूपक का अभि-नय विद्यालय में एक नैसर्गिक और आवश्यक प्रकार मानना चाहिये। क्योंकि एक अभिनीत रूपक का विद्यार्थियों के लिये एक महत्वपूर्ण मूल्य है विशेषत: उनके लिये जो द्रुतगति से विकसित और पहले ही परिपक्व हो रहे हैं। जब वे रूपक के पात्रों के साथ अपना तादात्म्य स्थापित करते हैं, जब इन पात्रों के शब्द, विचार और भावनाएँ उनके अपने शब्द, विचार और भावनाएँ हो जाती हैं, और जब वे इन्हें गतियों में व्यक्त करते हैं; अर्थात् जब बालक अभिनय कर रहे हैं, चाहे वह कितना ही अस्पष्ट और अप्रौढ़ क्यों न हो—वे नाटक के अलौकिक लाभ को प्राप्त कर रहे हैं।"*

---

*"......the acting of plays in class room, school hall, and when possible in the open air, should be recognised as the natural and necessary form of drama in school- For an acted play has an exceptional value for school children, especially those who are developing rapidly and maturing early.

और अभिनय के लिये शिक्षक को बालकों की आयु के अनुसार, नाटक का विषय, विधि, और शैली का चुनाव करना चाहिये। नाटक के लिये वर्ग मे, साप्ताहिक सास्कृतिक बैठको, सामयिक त्योहारों और विद्यालय दिवस के अवसर पर समय निकालना चाहिये।

'When they identify themselves with the characters in a play, when the words and thoughts and feelings of these characters be come their words, and thoughts & feelings, when they express them in movement—that is, when the children are acting, however feebly and crudely they are receiving the exceptional benefit that drama has for them.'

Teaching the Mother Tongue in secondary schools, P, Gurrey, p 152.

अन्य कार्यक्रम फीके पड़ जाते है। इसके अतिरिक्त यदि पाठ्पुस्तक मे एक ही रूपक रहे तो किसी प्रकार किया जा सकता है लेकिन प्रायः पुस्तकों में कई रूपक सम्मिलित किये जाते है।

(ख) आदर्श नाट्य-प्रणाली :—इस विधि के अनुसार शिक्षक पाठ्य-पुस्तक के निर्धारित नाटक का वर्ग मे पाठ कर देता है। एक ही व्यक्ति रूपक के प्रत्येक पात्र के क्रोध, ईर्ष्या, हर्ष, विस्मय, प्रेम, करुणा आदि का स्वाग करता-सा मालूम पड़ता है। इंगित, भाव-भंगिमा तथा अन्य शारीरिक अग संचालन भी शिक्षक आवश्यकतानुसार करता है। यह सब कुछ उसके अभ्यास, प्रशिक्षण, उसकी विद्वता एवं भाषा सम्बन्धी नियन्त्रण के फलस्वरूप होता है—इसी पर उसका सफल वाचन सम्भव है। वर्ग में विद्यार्थी बैठे बैठ मानो अभिनय 'सुन' रहा हो। अतएव इस प्रणाली की सफलता शिक्षक पर ही पूर्ण रूप से निभर करती है। इसका उपयोग ऊँचे वर्गो मे ठीक तरह से माना जाना है। छोटे-छोटे एकांकी नाटको के लिये जिनमें समय कम और पात्र कुछ ही होते है—यह विधि उत्तम है।

लेकिन इसमे बालकों का कोई सक्रिय भाग नही होने से उनमें रुचि का अभाव पाया जाता है। बड़े वर्गो मे भले ही प्रभावोत्पादक हो, लेकिन छोटी श्रेणियो मे इस विधि से मनोवांछित फल की प्राप्ति की आशा नहीं दीख पड़ती।

(ग) कथोपकथन प्रणाली :—यह विधि आदर्शनाटक प्रणाली का ही उन्नत स्वरूप है। इसके अनुसार रूपक का कथोपकथन वर्ग में, बालकों के बीच, बाँट दिया जाता है। जिन्हें पार्ट मिलता है वे उसे याद कर लेते हैं और फिर वर्ग में अभिनय करते है। इसका उचित निर्देशन शिक्षक करते हैं और स्थान-स्थान पर अशुद्धियों को दूर करते हैं। बच्चों द्वारा सक्रिय भाग लेने से इस प्रणाली में काफी रोचकता, सजीवता और उत्सुकता रहती है। बालकों को भाव और अवसर के अनुसार संभाषण करने का प्रशिक्षण और अभ्यास हो जाता है। यह मनोवैज्ञानिक प्रणाली है और बडा ही प्रभावोत्पादक प्रमाणित होती है। शिक्षक को केवल संभाषण के नियमों का उचित ख्याल रखना पड़ता है जिसमें बालकों मे स्वर सम्बन्धी लालित्य आदि का विशेषताएँ आ सकें। इसके लिये शिक्षक को पूर्व-अभ्यास (rehearsals) पर अधिक ध्यान देना चाहिये।

(घ) व्याख्या प्रणाली :—इस प्रणाली का मुख्य उद्देश्य यह है कि विद्यार्थी को अभिनय की अपेक्षा, नाटक के शास्त्रीय विवेचन का अभ्यास कराया जाय। मस्तिष्क जब काफी प्रशिक्षित और अभ्यस्त हो जाता है तब उसका ध्यान स्वभावतः नाटक में प्रयुक्त शास्त्रीय नियमों के समावेश की ओर जाता है। और वह इसी दृष्टिकोण से अध्ययन करना चाहता है। मनोरंजन का पहलू इससे पृथक होता है। अतएव विद्यार्थियों को नाटक का शास्त्रीय स्वरूप समझा दिया जाता है जैसे—कथावस्तु, अर्थ-प्रकृतियाँ, व्यापार श्रृंखला, संधियाँ और संकलनत्रय आदि। इस प्रणाली के अनुसार रूपक के सभी भेदों का अध्ययन भी कराया जाता है। मापदंड निश्चित करने से विद्यार्थी प्रत्येक दृश्य या पूरे रूपक का उन सिद्धान्तों के अनुसार विवेचन करता है। वह रूपक की भाषा, उसका भाव और प्रयुक्त शैली का भी अध्ययन करता है। यह प्रणाली वास्तव में महाविद्यालयों में अपनायी जा सकती है। माध्यमिक विद्यालयों के भी अन्तिम दो वर्गों में इसे अपनाना चाहिये।

ऊपर जिन चार प्रणालियों का वर्णन किया गया है उससे स्पष्ट है कि नाटक-शिक्षण का आधार बालक की आयु, योग्यता और रुचि है। अतः हमें प्रारम्भिक कक्षाओं में केवल अभिनय विधि अपनानी चाहिये। इन वर्गों के लिये घटना प्रधान नाटकों का संकलन हो जिनमें कथोपकथन की अधिकता हो, भाषा सरल हो और कथानक उनके जीवन से सम्बन्ध रखता हो। उस आयु की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को पूरा करता हो और आयुगत विशेषताओं को सम्मिलित करता हो। ऐतिहासिक और पौराणिक दृश्य दिखलाये जायें। जो कहानियाँ वर्ग में पढ़ायी जाती हैं उनका कथोपकथन भी तैयार कराया जाय जो अभिनेय हो।

मिडिल कक्षाओं तक भी इस प्रणाली को अपनाना चाहिये। लेकिन साथ ही यहाँ ध्यान रहे कि नाटक के विषय कुछ ऊँचे स्तर के हों जिनमें क्रमशः घटना प्रधान से अर्थप्रधान और भावप्रधान नाटकों की ओर बालक को उत्प्रेरित किया जा सके। यहाँ शिक्षक द्वारा आदर्श नाट्य प्रणाली प्रारंभ करना चाहिये जिससे बालकों को अभिनय, संभाषण आदि के नियमों का ज्ञान हो सके। साथ ही कथोपकथन प्रणाली को भी उचित प्रश्रय और प्रोत्साहन दिया जाना अभीष्ट है।

हिन्दी में भी इस प्रणाली की यथास्थान अपनाया गया है। विद्वानों ने अनेक सूत्र निर्माण किये है। जैसे,

संज्ञा तीन प्रकार की जाति, व्यक्ति अरु भाव।
वाचक शब्द लगायकर तीनों भेद बनाव॥
क्रिया, व्यक्ति, संकेत, गुण, संख्या अरु परिमान।
वाचक शब्द लगायकर छओं विशेषण जान॥ आदि।

लेकिन यह प्रणाली सर्वथा अमनोवैज्ञानिक है। इस पद्धति में नीरसता और शुष्कता है अतएव विद्यार्थी की रुचि नहीं लगती। यह उनके मस्तिष्क पर व्यर्थ का दबाव डालता है। इसका सर्वत्र परित्याग किया जा रहा है।

(ख) पाठ्य-पुस्तक प्रणाली :—सिद्धांत प्रणाली का यह एक उन्नत स्वरुप है। व्याकरण की पाठ्य पुस्तकें बालकों के सामने प्रस्तुत की जाती हैं, जहाँ-ध्वनि-विचार (Phonology), शब्द-विचार (Morphology), अर्थ-विचार (Semantics) तथा वाक्य-विचार (Syntax) पर बिवेचन किया जाता है। इस विधि से शिक्षण का क्रम यह है कि पहले परिभाषा दी जाती है; तब उसका विभेद तथा उसकी व्याख्या बतायी जाती है, और अन्त में उदाहरण दिये जाते हैं। इनमें शिक्षक को किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती। अन्य विषयों की पुस्तकों की तरह इसे भी स्वतंत्र रूप से पढ़ाया जाता है। यह प्रणाली भी परम्परा स्वरूप अपनायी गयी हैं और आज भी विद्यालय में यही प्रणाली प्रचलित है।

लेकिन विद्यार्थी को इस प्रणाली में भी किसी प्रकार की रूचि नहीं मिलती। उसे केवल नियमों के रटने से लाभ नही होता। भाषा और व्याकरण अलग-अलग दो विषय की तरह पढ़ाये जाते हैं। नियम के बाद बालक प्रयोग सीखता है। इस प्रकार अभ्यास से उसे व्याकरण की शिक्षा मिल जाती है।

यह विधि भी पुरानी पड़ गयी है। यह अमनोवैज्ञानिक है और बालक के लिये व्यर्थ ही बोझिल है। यह भी अब अपना अन्तिम दिन गिन रही है।

(ग) विश्लेषणात्मक प्रणाली :—इस प्रणाली का उद्देश्य यह है कि व्याकरण की शिक्षा स्वतंत्र रूप से न देकर, केवल वास्तविक प्रयोग, परिणाम और विश्लेषण द्वारा दी जाय। इसके अनुसार बालक के सामने अभीष्ट विषय के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं और उन्हीं से नियम निकलवाये जाते हैं। अभ्यास द्वारा नियमों का ज्ञान स्थायी किया जाता है। जैसे—

(क) संज्ञा के लिये :—यह मेरी पुस्तक है।
यह मेरी कापी है।
यह पेन्सिल है।
यह चित्र है।
इस पुस्तक में तेरह चित्र हैं।

शिक्षक वस्तु और उसके नाम का साहचर्य स्थापित कराके यह नियम प्रतिपादित करते है कि किसी वस्तु के नाम को संज्ञा कहते है।

(ख) विशेषण के लिये :—यह अच्छी पुस्तक है।
यह लाल कलम है।
यह पीली पेन्सिल है।
यह मोटी पुस्तक है।
यह नीली कापी है।
यह उजला कागज है। आदि।

इस प्रकार संज्ञा के विषय में जो कुछ कहा जाता है उसका अभ्यास द्वारा ज्ञान दिलाकर शिक्षक यह नियम स्पष्ट करता है कि संज्ञा के विषय में जो कुछ कहा जाय वह विशेषण कहा जायगा। शिक्षक संज्ञा और विशेषण का सम्बन्ध स्थापित करवाता है और उपर का नियम स्पष्ट होता है। इसी प्रकार अन्य पाठ पढ़ाये जाते हैं।

यह प्रणाली किसी पुस्तक का सहारा नहीं लेती और न यहाँ रटने की ही कोई आवश्यकता होती है। केवल प्रयोग और अभ्यास से बालक को व्याकरण का ज्ञान दिया जाता है। इसलिये इसे विश्लेषण विधि कहते हैं। यहाँ प्रयोग के अनुसार उदाहरण. और पीछे सिद्धांत बताये-जाते हैं इसे निगमात्मक विधि भी कहते हैं।

(घ) प्रासंगिक प्रणाली :—इस प्रणाली में व्याकरण की शिक्षा न तो पुस्तकों के माध्यम से, और न तो सूत्र प्रणाली से वरन् मौखिक कार्य में, रचना कार्य में, पाठ्य पुस्तक के अध्ययन में प्रसंगानुसार दी जाती है। चीजों के नाम से संज्ञा, गुणों से विशेषण आदि का ज्ञान प्रसंग से दिया जाता है। यदि पाठ में यह वाक्य आया है—"भारतवर्ष की राजधानी दिल्ली है।" "इसके उत्तर में हिमालय पहाड़ है" तो शिक्षक बालकों द्वारा ही कहवायेंगे कि भारतवर्ष क्या है, हिमालय क्या है, दिल्ली क्या है आदि और इस प्रकार चीजों का नाम होने से संज्ञा है यह ज्ञान बालकों को दिया जाता है।

अध्याय १६

व्याकरण की शिक्षा

व्याकरण का शिक्षा के प्रश्न पर शिक्षा शास्त्रियों, मनोवैज्ञानिकों और वैयाकरणों में गहरा मतभेद है। एक वर्ग (जो प्रमुखतया वैयाकरणों का दल है) यह कहता है कि व्याकरण की शिक्षा भाषा ज्ञान की पहली शर्त है; क्योंकि व्याकरण के बिना भाषा विषयक ज्ञान अधूरा ही रहता है। व्याकरण के ज्ञान के अभाव मे बालक भाषा के अशुद्ध प्रयोग का शिकार हो जाता है और वह सभ्य समाज में उपहास का पात्र बन जाता है। वह भाषा के समुचित ज्ञान के अभाव में भावों को ठीक तरह से व्यक्त भी नही कर सकता। अतएव व्याकरण की शिक्षा को भाषा की पहली सोपान मानना चाहिए। व्याकरण के अध्ययन से भाषा पर मनुष्य का नियंत्रण और अधिकार स्थापित होता है।

विद्वानों का दूसरा दल वह है जा व्याकरण की शिक्षा की कोई आवश्यकता ही नही समझता है। इस दल के अनुसार व्यक्ति भाषा का प्रयोग—अभ्यास, मौखिक और लिखिक अभिव्यक्तियों के द्वारा—सीख लेता है और इसी क्रम में वह व्याकरण की शिक्षा प्राप्त कर लेता है। इसे स्वतंत्र रूप में इतनी प्राथमिकता देने का कोई कारण ही नहीं है। व्याकरण भाषा का अनुचर है न कि उसका संचालक। इसलिय इसका स्थान गौण है। व्याकरण भाषा का एक साधन है न कि उसका साध्य। साध्य तो भाषा ज्ञान की प्राप्ति ही है।

ये दोनों विचार परस्पर विरोधी हैं जब कि एक उसे प्राथमिक स्थान देता है और दूसरा उसकी आवश्यकता ही नही समझता। लेकिन विद्वानों का एक बड़ा समुदाय ऐसा भी है जो यह अनुभव करता है कि व्याकरण की शिक्षा का महत्व किसी भी अवस्था में कम नही किया जा सकता। इनके अनुसार व्याकरण भाषा का मेरुदण्ड है। मनुष्य के पास यही एक अंकुश है जो भाषा को उसके अधीन रखने में सक्षम है। भाषा की तुलना उस मतवाले हाथी से की जा सकती है जो अपनी मस्त गति से आगे चलता जाता है; उसका

महावत भी निश्चिन्त हो कर उस पर बैठा रहता है। लेकिन रास्ते में ऐसे स्थल भी आते है जहाँ हाथी भड़क उठता है और यदि महावत अंकुश का प्रयोग तत्क्षण नहीं करे तो हाथी बेकाबू हो जाता है और कभी-कभी तो उसकी जान भी ले ले सकता है। उसी प्रकार भाषा ज्ञान के साथ व्याकरण का ज्ञान भी रखना अत्यावश्यक है; नही तो भाषा नियंत्रण से बाहर भी चली जा सकती है। कुल वधू को कुल के नियन्त्रण में रखना गुरुजनों का काम है उसी प्रकार भाषा को व्याकरण के संयम मे रखना भाषाविदों के लिये अत्यावश्यक है। साथ ही यह भी समझना चाहिये कि व्याकरण हमारा अनुचर है न कि हम ही उसके अनुचर है। अतएव इस मत के पोषकों का कहना है कि जब भाषा का कुछ ज्ञान हो जाता है तब उसमें उपस्थित प्रवृत्तियों का एकीकरण ही व्याकरण है इसलिए भाषा के ज्ञान के बाद ही व्याकरण की जानकारी देना वांछनीय होगा। इस मत में ऊपर के दोनों विरोधी मतों का समन्वय मिलता है। केवल यही प्रश्न हल करना शेष रह जाता है कि व्याकरण की शिक्षा कब हो जाय और वह किस प्रकार आरम्भ का जाय।

व्याकरण शिक्षा की कुछेक प्रणालियो का यहाँ पहले हम विवेचन करते हैं।

(क) सूत्र या सिद्धांत प्रणाली।
(ख) पाठ्य पुस्तक प्रणाली।
(ग) विश्लेषण या निगमात्मक प्रणाली।
(घ) प्रासंगिक प्रणाली।
(च) भाषा-संसर्ग प्रणाली।

(क) सूत्र या सिद्धांत प्रणाली:—यह प्रणाली व्याकरण शिक्षा की सबसे प्राचीन एवं परम्परागत प्रणाली है जिसका स्वच्छन्द पालन अभी भी पुरानी भाषाओं के अध्ययन मे किया जाता है। लैटिन, ग्रीक और संस्कृत आदि भाषाओं में व्याकरण की शिक्षा सूत्रों द्वारा दी जाती है और उन सूत्रों को विद्यार्थी कंठस्थ कर लेता है। फिर सिद्धांत रटा दिये जाते हैं। 'लघु सिद्धांत कौमुदी' की यह पद्धति आज भी संस्कृत विद्यालयों में स्वच्छन्द रूप से पायी जाती है। इसके अनुसार व्याकरण के भिन्न-भिन्न नियम अनेक सूत्रों के रूप में रटा दिये जाते हैं। उदाहरण देकर उनकी उपयोगिता भी बतायी जाती है।

यह एक प्रभावपूर्ण विधि है जहां बालक व्याकरण के नियमों को प्रसंगानुसार प्रयोग के द्वारा जान पाता है। इसके लिये उसे कोई श्रम नही करना पड़ता। हॉ, शिक्षक को अधिक प्रयत्नशील होकर ऐसे स्थलो को पकड़ना होता है जहाँ व्याकरण की शिक्षा का अवसर मिल सके। लेकिन इस विधि में बहुत समय लगता है और व्याकरण के क्लिष्ट नियमों, अपवादो आदि के जानने में अनेक व्यावहारिक कठिनाइयाँ होती हैं। फिर भी यह एक अच्छी विधि है और यदि इसका सम्बन्ध विश्लेषण विधि के साथ जोड़ दिया जाय और शिक्षक इनका प्रयोग करें तो व्याकरण की शिक्षा सुलभ, सुगम और स्थायी रूप से दी जा सकती है। अतएव ये दोनो विधिया एक दूसरे की अनुपूरक कही जायें ता उत्तम होगा।

(च) भाषा संसर्ग प्रणाली :—इस प्रणाली का उद्देश्य यह है कि व्याकरण की प्रत्यक्ष (direct) शिक्षा न दी जानी चाहिये, वरन् बालक को अच्छे लेखकों की लिखी पुस्तकों के संसर्ग मे लाया जाय जिन्हें पढ़ कर वे व्याकरण का ज्ञान अचेतन रूप में ही विकसित कर सकें। ऐसी पुस्तकों के उपलब्ध करने का प्रभाव यह पड़ेगा कि बालक शुद्ध, और शैलीयुक्त भाषा का प्रयोग सीख सकेगा। व्याकरण की शिक्षा का भी यही उद्देश्य है कि बालक शुद्ध भाषा का प्रयोग सीखे। अतः प्रारम्भ में उसे इन जटिल नियमों के जाल मे व्यर्थ का न फँसा कर शुद्ध वाक्य लिखने और बोलने के लिये अभ्यस्त किया जाय। इस प्रणाली से बालक संभाषण में, प्रश्नों के उत्तर देने में, रचना करने में अर्थात् लिखने और बोलने की हर क्रिया में शुद्ध भाषा का प्रयोग कर सकता है। वास्तव में यह एक मनोवैज्ञानिक और युक्तिपूर्ण विधि है जिसका प्रयोग शिक्षकों को करना चाहिये। लेकिन इसका प्रयोग उच्च कक्षाओं में ही होना चाहिये जहाँ वाचन सम्बन्धी भंडार मिलता है और बालक को वाचन में पर्याप्त रुचि भी रहती है।

ऊपर हमने जिन पाँच प्रणालियों का वर्णन किया है उसके बाद हम पुनः अपने पूर्व प्रश्न पर आते हैं कि व्याकरण की शिक्षा कब प्रारम्भ की जाय और किस प्रकार दी जाय।

व्याकरण की शिक्षा कब प्रारम्भ हो?—

व्याकरण की विधिवत शिक्षा का प्रारम्भ प्राथमिक कक्षाओं के प्रथम तीन वर्षो के बाद होनी चाहिये। अर्थात् तीसरे दर्जे तक बालकों को इससे

एकदम मुक्त रखा जाय। लेकिन भाषा के शुद्ध प्रयोग पर बल देना चाहिये। और जब भी बालक हिन्दी बोलें या लिखें उन्हें शुद्ध वाक्यों के प्रयोग के लिये मार्ग प्रदर्शन करना चाहिये।

चौथी और पाँचवी श्रेणियों में प्रयोग और संयोग प्रणाली से व्याकरण की शिक्षा देना लाभदायक प्रमाणित होगा। उदाहरण के द्वारा वाक्य बनवायें जायें और व्याकरण के नियम जतायें जायें। भाषा संसर्ग का भी प्रयोग करके बालकों को भाषा के शुद्ध प्रयोग की आदत लगानी चाहिये। यही विधि छठी और ७वी श्रेणी तक भी प्रयुक्त हो, लेकिन शिक्षक को अधिक परिश्रम करके प्रयोग और संयोग प्रणालियों का उच्च स्तर का प्रयोग वांछनीय मानना चाहिये।

माध्यमिक कक्षाओं में इन प्रणालियों के अतिरिक्त, सूत्र या सिद्धान्त प्रणाली और पाठ्यपुस्तक प्रणाली का प्रयोग करके। व्याकरण का सम्यक् ज्ञान देना चाहिये। इस स्तर पर अच्छा होगा कि एक ओर व्याकरण का सद्धान्तिक ज्ञान दिलाया जाय जिसमें उसे व्याकरणों की परिभाषा, नियम, अपवाद आदि विदित हो जाय और दूसरी ओर उनका प्रयोग करके बताया जाय। प्रयोग के लिये बालकों की रचना सम्बन्धी क्रियाएँ, मौखिक या अन्य लैखिक अभिव्यक्ति को मानना चाहिये। इसके लिये शिक्षक को प्रयोगात्मक व्याकरण (Applied Grammar) का सहारा लेना चाहिये।

प्रयोगात्मक व्याकरण का मुख्य उद्देश्य यह है कि शिक्षक छात्र को व्याकरण की शिक्षा (परिभाषा, नियम, अपवाद आदि) देकर ही अपना कार्य समाप्त नहीं समझें बल्कि उन्हें यह करना चाहिये जिसमें छात्र व्याकरण के निर्देशन के अनुसार शुद्ध भाषा लिखने या बोलने की आदत और क्षमता रखे। छात्र प्रायः विशेषण, प्रत्यय, संधि, समास, लिंग, वचन, सर्वनाम, क्रिया, क्रियाविशेषण आदि का अशुद्ध प्रयोग करते हैं। साथ ही मुहावरों, लोकोक्तियों, सूक्तियों की अशुद्धि पायी जाती है। शिक्षक का प्रधान कर्तव्य है कि विद्यार्थियों की इन अशुद्धियों को दूर करें। सारांश यह है कि शिक्षक को यह भलीभाँति समझना चाहिये कि व्याकरण का ऐसा व्यापक क्षेत्र है जिसमें शब्दों, विचारों आदि का अर्थ निहित है, हमारा मनोवांछित विचार प्रयुक्त होता है और इसके अनुसार अर्थग्राह्यता (Comprehension) एवं अभिव्यंजना (expression) ही भाषा शिक्षण का मूल उद्देश्य है।

उन्हें समझना चाहिये कि व्याकरण के नियम केवल पढ़ने और रटने के लिये नहीं है जितना समझने और प्रयोग के लिये । इन्हीं दृष्टियों से व्याकरण की शिक्षा का हर उपलब्ध साधन प्रयुक्त करना चाहिये ।

अतएव शिक्षक को उन क्रियाशीलनों को प्रोत्साहन देना चाहिये जिनमें छात्र बोलने और लिखने के क्रम में व्याकरण के नियमों का पालन करें और वे अच्छे लेखकों की पुस्तकों को पढ़कर अपनी भाषा को भी शुद्ध और प्रांजल बना सकें । साथ ही, शिक्षक को व्याकरण की अशुद्धियों को ध्यान से देखकर उनका सुधार करना चाहिये ।

———

अध्याय १७

रचना-शिक्षण

पिछले अध्यायों में सामान्यत: और विशेषत: मौखिक अभिव्यक्ति के अध्याय मे इस बात पर व्यापक रूप से विवेचन किया जा चुका है कि अभिव्यंजना मानवमात्र की नैसर्गिक प्रकृति है और यह सबसे आदि प्रणाली है। जब से लिपि का आविष्कार हुआ है, तब से मनुष्य अपने विचारों, भावों, भावनाओ, अनुभूतियों तथा सवेंगो आदि को लिपिबद्ध करके स्थायी रूप देने का अभ्यस्त हो गया है। इस साधन के द्वारा हम अपने विचारो को न केवल उन्हीं लोगों तक पहुँचा पाते है जो हमारे पास नही है, आँखों से ओझल है, वरन् ये विचार सभी काल के लिये स्थायी रूप से सुरक्षित है। साथ ही इस साधन द्वारा हमारा लिपिबद्ध विचार और भाव क्रमबद्ध और सुव्यवस्थित रूप में हमारे सामने आता है। यदि विस्तृत अर्थ मे देखा जाय तो हमारे सभी मौखिक और लिखित क्रियाशीलन रचना के अन्तर्गत आते हैं। शैली के आधार पर वर्गीकरण करने से भी गद्यात्मक रचना और पद्यात्मक रचना की बात सामने आ जाती है जहाँ पहले में कहानी, उपन्यास, पत्र, लेख, निबन्ध, यात्रावर्णन, आदि तथा दूसरे मे तुकबन्दियाँ, पद, गीत, कविता, खण्डकाव्य और महाकाव्य को स्थान मिलता है।

लेकिन जहाँ तक प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों के कार्यक्षेत्र का प्रश्न आता है उससे स्पष्ट है कि रचना से तात्पर्य उन्ही लिखित क्रियाशीलनों से है जहाँ बालक लेख, निबन्ध, पत्र, साधारण आलोचना और साधारण तुकबन्दियों की कला से अवगत होता है। क्योकि विद्यालय में न तो कविता रचना या नाटक रचना का मूल उद्देश्य सामने रहता है और न तो कक्षाध्यापन मे यह सम्भव ही है। अतएव प्रस्तुत अध्याय में बालक की लिखित अभिव्यंजना शैली के इन्हीं रूपों का विवेचन अभीष्ट है। हाँ, रचना के उद्देश्यो मे यह भी समझना चाहिये कि बालकों को विभिन्न शैलियों से परिचित करा के उन क्रियाशीलनों के लिये उत्साहित, उत्प्रेरित और जागरूक बनाना चाहिये जिससे वे आगे चलकर कहानी या कविता लिखने की कला में भी रुचि दिखायें।

रचना-शिक्षण के उद्देश्य :—रचना-शिक्षण के उद्देश्यों को एक जगह एकत्रित करना आसान नही है क्योंकि इसका सम्बन्ध हमारे जीवन की प्रत्येक अभिव्यंजना-शैली (Style of expression) से है। फिर भी शिक्षा-शास्त्रियों ने उनका जो वर्णन किया है वह इस प्रकार है :—

(क) रचना-शिक्षण से बालकों में विचारों, अनुभवों, भावों आदि को लिखकर व्यक्त करने की क्षमता प्राप्त होनी चाहिये।

(ख) रचना-शिक्षण से बालकों में तर्क, कल्पना, विवेकादि उद्दीप्त और विकसित होते है और इस प्रकार उनका मानसिक विकास होता है।

(ग) रचना-शिक्षण से बालकों मे विचारों को क्रमबद्ध रूप से सोचने, बोलने और लिखने की क्षमता उत्पन्न और विकसित होती है।

(घ) रचना-शिक्षण से बालक अभिव्यक्ति की एक विशेष शैली से परिचित होता है जिससे वह अपने दैनिक क्रियाकलाप और व्यवहार में कुशलतापूर्वक काम कर सकता है।

(ङ) रचना-शिक्षण से बालक अध्ययन और अभ्यास के द्वारा स्वयं एक स्वतन्त्र शैली का निर्माण और सूत्रपात करता है।

(च) इस प्रकार वह साहित्य के सृजन में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो रचना-शिक्षण का चरम लक्ष्य यह है कि "बालक में, उसकी कल्पना को प्रशिक्षित कर के और उसकी अनुभूतियों को विस्तृत करके और उसकी विचार शक्ति और तर्क शक्ति की वृद्धि करके, भाषा के लिये भावना उत्पन्न करना, सत्साहित्य के प्रति अनुराग और उसका वास्तविक मूल्यांकन करना, उसे शुद्ध और यथार्थ रूप से अपने को व्यक्त करने के योग्य बनाना और वस्तुओं को स्वयं देखने और उनके वर्णन करने के योग्य बनाना है।"[1]

---

* '......is to develop in the pupil a feeling for language, and a love of and appreciation for good literature by enabling him to express himself correctly and accurately, and to see things for himself and describe them by training his imagination, and broadening his sympathies, and by increasing his powers of thinking and reasoning," The teaching of English in India, S. Sahay, p 119-120.

रचना-शिक्षण की विधियाँ :—रचना-शिक्षण के लिये लोगों ने कई प्रणालियों का प्रयोग किया है। वे इस प्रकार है :—

(१) प्रश्नोत्तर विधि
(२) उद्बोधन विधि
(३) चित्र वर्णन विधि
(४) रूपरेखा वर्णन विधि
(५) प्रवचन वि।ध
(६) विषय प्रबोधन विधि
(७) मंत्रणा विधि
(८) तर्क विधि

प्रश्नोत्तर विधि :—इस विधि के अनुसार शिक्षक बालकों से किसी विषय पर प्रश्न करते हैं और बालकों द्वारा उनका उत्तर पाते है। इसके लिये वैसे ही विषय चुने जाते हैं जिनका सम्बन्ध बालक के प्रत्यक्ष दैनिक जीवन से है। प्राकृतिक प्रतिवेश में स्थानीय प्राकृतिक चीजों का वर्णन जैसे खेत, नदी, नाला, पहाड़, जंगल, पेड़ पौध आदि, तथा सामाजिक प्रतिवेश में गाँव, मुहल्ला, बाजार, लड़के का घर, लड़कों का खेल आदि विषय चुने जाते है। बालक की दैनिक क्रियाएँ और व्यवहार का सम्बन्ध रहने से उन्हें परिचित वातावरण के प्रश्नों का उत्तर देने में रुचि, उत्साह और प्रेरणा मिलती है।

यह विधि प्रारम्भिक प्रणाली है और छोटे-छोटे बालकों के लिये अत्यन्त ही उपयोगी, प्रभावशाली और महत्वपूर्ण विधि है। पडोस के दृश्य, पाठशाला का वर्णन, जीवजन्तुओं तथा सहपाठियों के सम्बन्ध में बालको को अधिक रुचि रहने के कारण प्राथमिक विद्यालयों की पहली दो श्रेणियो में इसका प्रयोग लाभप्रद होता है।

उद्बोधन विधि :—यह विधि उपरोक्त प्रश्नोत्तर प्रणाली का ही उन्नत स्वरूप है। इसके अनुसार शिक्षक किसी निर्दिष्ट विषय से सम्बन्ध रखने वाले कई प्रश्न पूछता है जिनका उत्तर बालकों द्वारा दिया जाता है। जहाँ प्रश्नोत्तर विधि में शिक्षक सामान्य कथोपकथन की प्रणाली से बालकों की अ।भव्यंजना शक्ति का विकास करता है, वहाँ इस विधि के अनुसार शिक्षक किसी विशेप पाठ से सम्बद्ध प्रश्न करने के कारण एक क्रमबद्ध और सुव्यवस्थित विचार उत्पन्न करने का उद्देश्य रखता है। इससे बालकों का कल्पना शक्ति का विकास होता है। और उनमें किसी निर्दिष्ट विषय के सम्बन्ध में समस्त

ज्ञातव्य बातों की जानकारी हो जाती है। जब विषयों का चुनाव, बालक के अनुभव क्षेत्र के अन्तर्गत किया जाता है तब बालक स्वयं ही अधिक क्रियाशील रहते है और उनका पूरा मनोयोग शिक्षक को प्राप्त होता है। इसका उपयोग दृश्य वर्णन, ऐतिहासिक, पौराणिक, और भौगोलिक वर्णन के लिये किया जाता है।

क्रमबद्ध ज्ञान प्राप्त कराने के लिये यह उपयुक्त प्रणाली है। यहाँ प्रश्न केवल स्कूल वातावरण से सम्बन्ध नही रखते, उनमे भाव-प्राधान्य भी रहता है। अतएव इस वि.ध का उपयोग उस अवस्था में करना चाहिये जब बालकों को प्रश्नों के समुचित उत्तर देने का अभ्यास हो जाय और उनकी अनुभव-परिधि क्रमिकरूप से विस्तृत होती जाय। साराश यह कि इस विधि को शिक्षक उसी अवस्था में काम में लायें जब प्रश्नोत्तर-विधि का पर्याप्त अभ्यास हो जाय।

चित्र-वर्णन-विधि :—रचना शिक्षण मे चित्र-वर्णन-विधि का एक उपयोगी स्थान है। यह स्वतन्त्र रचना के प्रारम्भ के पहले का सोपान है और प्रारम्भिक कक्षाओं में इसका उपयोग पूर्ण रूप से होना चाहिये। इस विधि के अनुसार शिक्षक किसी दिये हुए चित्र को टांग कर उसके सम्बन्ध के प्रश्न पूछता है। बालक चित्र की सभी चीजों को पहचानते (recognise) हैं और तदनन्तर उनका उत्तर देते हैं। पहचान के लिये सूक्ष्म-पर्यवेक्षण (Observation) आवश्यक है। ऐसे वर्णनात्मक चित्रों (descriptive pictures) को आकर्षक, रंगीन और अधिक से अधिक घटनाओं या भावों को द्योतक बनाया जाता है। पूरी कहानी व्यक्त करने के लिये चित्रों का सहारा लिया जाता है।

यह एक रूचिपूर्ण विधि है। जब चित्रों का विषय बालकों के प्रतिवेश से सम्बन्ध रखता है तब तो और मनोयोग मिलता है। ऐसे चित्रों का सेट होना चाहिये जो विद्यालयों में सुरक्षित रखा रहे और रचना-शिक्षण के लिये शिक्षक उनका स्वच्छन्दतापूर्वक उपयोग कर सकें। प्रश्नोत्तर-प्रणाली से शिक्षक यह जान सकते है कि बालकों ने चित्र को ठीक से समझा है या नहीं, उसके दृश्यों को ग्रहण किया है या नहीं। इसका पर्याप्त अभ्यास करा लेने के बाद शिक्षक प्रश्न न करें और केवल चित्र को टाँग दें और लड़कों से उनका वर्णन करा दें तो अच्छा है। लिपि की जानकारी के बाद बालक इन वर्णनों को लिपिबद्ध भी करें और उन्हें वर्ग में पढ़कर सुनायें। इस क्रिया से एक लिपिबद्ध

वर्णनात्मक रचना तैयार हो सकती है। इसे हम 'देखो और कहो विधि' (Look and say method) भी कह सकते हैं।

रूपरेखा वर्णन विधि :—इस विधि का अभिप्राय यह है कि बालक के सामने शिक्षक किसी परिचित विषय का सारांश या उसकी रूपरेखा प्रस्तुत कर दें। तब छात्र उसका विस्तृत वर्णन तैयार करेंगे। इस विधि में बालकों को स्वतन्त्र वाक्य रचना की छूट दी जाती है। इसमें उन्हें सहारा के लिये रूपरेखा सामने रहती है, लेकिन बालक अपनी स्मरण-शक्ति, कल्पना-शक्ति और तर्क-शक्ति से पाठ का सविस्तार वर्णन करते हैं। इसके लिए बालकों में पहले से पर्याप्त शब्द भंडार और भावग्रहण-शक्ति का होना आवश्यक है। उन्हें भाषा पर अधिकार भी हो और शैली विशेष का उपयोग करने की क्षमता भी प्राप्त हो।

यह एक प्रभावशाली विधि है और शिक्षक इसके पर्याप्त अभ्यास के बाद बालकों को बिना किसी रूपरेखा के भी स्वतन्त्र रचना करने के लिये उत्प्रेरित और उत्साहित कर सकते है। इस विधि के अनुसार वर्णनात्मक रचनाओं का उन्नत स्वरूप, जिसमें भाव और भाषा की श्रेष्ठता मिलेगी, तैयार हो सकता है। प्रारम्भिक विद्यालय के अन्तिम दो वर्गों में यथा चौथी और पाँचवी श्रेणियों मे इसका अभ्यास कराना लाभप्रद है।

ऊपर जिन चार विधियों का विवेचन किया गया है उनका वास्तविक सम्बन्ध प्रारम्भिक कक्षाओ के साथ है। इस स्तर के बालकों में रचना सम्बन्धी इन विशेषताओं का आना लक्ष्य रहता है—सूक्ष्म पर्यवेक्षण, सूक्ष्म-ग्रहण, तथा सरल वाक्य में सुगम्य वर्णन तथा किसी विषय का सम्यक परिचयात्मक ज्ञान। अर्थात् प्रारम्भिक कक्षाओ के छात्रों को किसी भी वस्तु, दृश्य या चित्र के सूक्ष्म पर्यवेक्षण (minute observation) का प्रशिक्षण हो। उन्हें वस्तु, दृश्य या चित्र के विभिन्न अंशों या अंगों को पहचानने (recognition) की शक्ति और प्रशिक्षण हो तथा वे उसका पूरा परिचयात्मक ज्ञान रखते हों। रचना का वास्तविक लक्ष्य यह है कि वे इनका वर्णन सरल, सुबोध और सुगम्य भाषा में कर सकें। अतएव रचना-शिक्षण में शिक्षक को ५वी श्रेणी तक इन विधियों को विशेष रूप से अपनाना चाहिये।

प्रवचन विधि :—इस विधि के अनुसार शिक्षक किसी विषय का पूरा ज्ञान बालकों के समक्ष प्रस्तुत कर देता है, और साथ ही प्रश्नों के द्वारा

इसकी भी परीक्षा कर लेता है कि बालकों ने उस विषय को ग्रहण किया या नहीं। इसके बाद बालकों को अपनी भाषा में स्वतन्त्र रूप से रचना करने की छट दे दी जाती है।

इसका उपयोग माध्यमिक विद्यालय की पहली दो कक्षाओं (६-७) में होना चाहिये जहा बालकों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने स्मरण से, कल्पना से, तर्क से, विचार से, और अपनी सामान्य बुद्धि से किसी विषय के प्राप्त ज्ञान को सरल से सरल भापा में व्यक्त कर सकते है। जैसे एक कहानी कह दी गयी और बालक उसे अपनी भाषा मे व्यक्त करता है। इस विधि के द्वारा इतिहास और भूगोल के पाठों को अपनी भाषा में लिख कर विद्यार्थी रचना का अभ्यास कर सकता है।

विषय प्रबोधन विधि :—इस विधि के अनुसार शिक्षक निर्दिष्ट पाठ से सम्बन्ध रखने वाली सभी बातों को बालकों के सामने प्रस्तुत करता है और उन्हें समझाता है। उसके बाद वे अपनी स्मरण, कल्पना, भावुकता और तर्क के सहारे स्वतन्त्र रचना करते है। इसका उपयोग उच्च कक्षाओं में नाटक और कविता की रचना में किया जाता है। वास्तव मे यह विधि प्रवचन विधि का ही एक रूप है। और इसका उपयोग उसी अवस्था में वांछनीय है जब बालक का पूर्वज्ञान इतना विस्तृत नही है कि किसी विषय का सम्यक विवरण प्रस्तुत कर सके।

मंत्रणा विधि :—मंत्रण विधि के अनुसार, जैसा कि इसके नाम से ही विदित होता है, शिक्षक बालक के रचना सम्बन्धी सभी क्रियाशीलनों में मंत्री का काम करता है। वह बताता है कि अमुक विषय की रचना के लिये किन पुस्तकों, लेखों, पत्रिकाओं तथा अन्य सन्दर्भो का अध्ययन कर लेना चाहिये। शिक्षक के सुझावों पर बालक उन सभी श्रोतो का अध्ययन करता है। और वह जो कुछ भी प्राप्त कर सकता है उसके प्रभावगत कारण उसकी अपनी रुची, मानसिक विकास स्तर, भाषा की उपलब्धि और योग्यता, तथा पुस्तकों का आयु अनुकूल होना हा है। अतएव शिक्षक को बालकों की योग्यता, आयु, तथा रुचि के अनुसार ही पुस्तकों तथा अन्य श्रोतों (sources) का संकेत करना चाहिये। माध्यमिक वर्गों मे विशेषत: ऊँची कक्षाओं में इसका उपयोग वांछनीय होगा। "जिस प्रकार सभी मधुमक्खियाँ अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार फूलों से रस-संचय करती हैं, उनमें एक भी नितान्त

असफल नहीं होती, उसी प्रकार इस प्रयत्न में सभा विद्यार्थी कुछ न कुछ सफलता अवश्य प्राप्त करते है ।''

इस विधि की उपयोगिता इस बात से भी प्रगट होती है कि बालक अपने निर्दिष्ट विषय के पक्ष आर विपक्ष की परी बातों की जानकारी प्राप्त कर लेता है और तब अपना स्वतंत्र मत स्थिर कर सकता है । कई प्रकार की शलियों मे भिज्ञ होने के कारण वह स्वयं भी एक सुन्दर शैली अपना सकता है । इसे अध्ययन प्रणाली भी कहते हैं क्योंकि रचना कार्य का मूल बालक की अध्ययन सम्बन्ध क्रियाशीलन ही है ।

तर्क विधि :—इस विधि के अनुसार विद्यार्थी अध्ययन के सहारे किसी सिद्धान्त, नीति या अन्य विषय के सम्बन्ध में अपना एक विशेष मत स्थापित कर लेता है । यदि वह किसी विषय के पक्ष का मत स्थिर करता है तो वह अपने मत को पुष्ट करने के लिये सभी प्रकार के तथ्यों को एकत्रित करता है । साथ ही अपने विपक्षी को परास्त करने के लिये अनेक अकाट्य तर्क उपस्थित करता है । वह अपने तर्क के सहारे यह प्रयत्न करता है कि उसका विपक्षी उसके मत को मान लेने के लिये बाध्य हो जाय । यही बात उस विद्यार्थी के लिये भी सत्य है जो उसके विपक्ष के तर्क उपस्थित करता है । सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं समस्यामूलक विषयों पर इस विधि से रचना करने का शिक्षण दिया जा सकता है । जैसे :—

(i) क्या सामाजिक उत्थान में स्त्रियों की पर्दा प्रथा व्यवधान नहीं है ?

(ii) क्या भारत के लिये अभी जनतंत्र उपयुक्त प्रणाली मानी जा सकती है ?

(iii) क्या यंत्रीकरण से देश की बेकारी दिन प्रति दिन बढती नहीं जा रही है ? आदि ।

इस विधि से लाभ यह है कि विद्यार्थी को अपने मत के प्रतिपादन के लिये अनेक अकाट्य तर्क एकत्रित और उपस्थित करना पड़ता है । अपने तर्क को युक्तिपूर्वक उपस्थित करने का अवसर मिलता है । मानसिक विकास मे इस विधि का उपयोग बड़ा ही श्रेयस्कर है । अतएव माध्यमिक विद्यालयों की ऊपरी कक्षाओं मे रचना के लिये तर्क विधि एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण प्रभावशाली प्रणाली है ।

रचना शिक्षण के सिद्धान्त :—ऊपर जितनी भी विधियों का वर्णन किया गया है शिक्षक अपनी कार्यकुशलता, अनुभव, और विद्वता के आधार पर विभिन्न आयु, रुचि और योग्यता के बालकों के लिये उनमे किसी को भी अपना सकने के लिये स्वतंत्र है जिनसे रचना का वास्तविक लक्ष्य पूरा हो सके। अतएव किसी प्रणाली विशेष के लिये पूर्व निर्धारण संभव नहीं है। फिर भी शिक्षक को निम्नाकिन बातों पर पूरा ध्यान देना चाहिये :—

(क) बालक में रचना के लिये कल्पना, भावना, तर्क, भावुकता आदि का विकास किया जाना चाहिये। रचना में सोचने-विचारने (Thinking) का विशेष स्थान है और जो जितना ही अधिक सोच सकता है वह अपनी अभिव्यंजना को उतना ही उत्तम, सफल, अलंकारमय बना सकता है और उसे उतना ही उन्नत स्वरूप दे सकता है। बर्नर्ड शॉ (Bernard Shaw) ने भी कहा है कि मैंने अपने लिये अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति सप्ताह मे एक या दो बार सोचने से ही अर्जित किया है।" (I have made international reputation for myself by thinking once or twice a week-Bernard Shaw)

(ख) सोचने के पश्चात् बालक जो कुछ भी कहना चाहता है उसे यथासंभव सीधा तथा यथार्थ रीति से कहना चाहिये और उसमें किसी प्रकार का व्यतिरेक न हो। (Say what you have to say, what you have a will to say in the simplest the most direct and exact manner possible, with no surplusage—Waler Pater.)

(ग) भावों को व्यक्त करने के लिये बालक के पास पर्याप्त शब्द-भंडार रहना चाहिये जिससे वह आसानी और तत्परता से अपने काम में ला सके। शब्दों के अभाव में व्यक्ति गूगे के सिवाय और कुछ नही है। बहुत से लड़कों को लिखने के समय सर खुजलाते या कलम की नोक को ओठों तले दबाते या अन्य शारीरिक हरकत करते हुये देखा जा सकता है। यह शब्दों के अभाव में अभिव्यक्ति की विवशता है। अतएव शिक्षक को बालकों के शब्द-भंडार पर पूरा ध्यान देना चाहिये। और इसके लिये लैखिक और मौखिक अभिव्यक्तियों का पर्याप्त सहारा लेना वांछनीय होगा।

(घ) ऊपर कहा गया है कि बालकों के पास पूरा शब्द भंडार होना चाहिये। साथ ही, यह भी बात समझ लेनी चाहिये कि उनके पास पर्याप्त भाव-

कोष भी हो अतएव उनके भाव, कल्पना, तर्क को अलंकृत करने का सभी साधन शिक्षक को प्रयोग में लाना चाहिये।

(च) भाषा और भाव का भंडार बनाने और बढ़ाने के लिये आवश्यक है कि लिखित रचना के पहले ही पर्याप्त मात्रा में मौखिक अभ्यास कराया जाय। अतः शिक्षक को उन सभी स्थलों का चुनाव कर लेना चाहिये जहाँ मौखिक अभिव्यक्ति के अवसर उपलब्ध हो सकें। ऐसे सभी क्रियाशीलनों के लिये बालकों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये जिससे उनकी भाव-शक्ति का विकास हो, कल्पना शक्ति का विस्तार हो और वे तर्क करने की कला से अवगत हो सकें। इसके लिये सबसे अच्छी प्रणाली यह है कि बालक के सामने समस्यामूलक अवसर प्रस्तुत किये जायें जहाँ समस्या के समाधान के लिये बालक का भाव उत्तेजित होकर शब्द खोज सके। प्रथम दो वर्गों में व्यक्तिगत प्रश्न किये जायें यथा तुम्हारा नाम क्या है ? घर कहाँ है ? पिता का नाम क्या है ? घर में कितने लोग है ? तुम्हारी गाय क्या खाती है ? कितना दूध देती है ? कितने बछड़े हैं। कौन चारा खिलाता है ? आदि। ऐसे अवसर प्रस्तुत किये जायें जहाँ वह अपने दैनिक क्रियाकलाप का वर्णन कर सके, अपनी यात्रा-वर्णन सुना सके, विद्यालय, स्थानीय बाजार आदि का वर्णन कर सके। इसी प्रकार ऊपर की कक्षाओं में ऐसे समस्यात्मक प्रश्न किये जाये। इस प्रकार अनेक प्रकार के समस्यात्मक अवसर उपस्थित किये जा सकते है जैसे विद्यालय के अन्तर्गत प्रार्थना, सामूहिक सफाई, उद्योग-बागवानी और कताई, सांस्कृतिक बैठकों के अवसर आदि। इन क्रियाशीलनों में ऐसा अभ्यास कराया जाय जिसमें भाव और भाषा एक दूसरे के पूरक हों और सहयोग मे आ सकें।

(छ) पर्याप्त मौखिक कार्य का अभ्यास करा लेने के बाद लिखित अभिव्यक्ति का स्थान आता है। बालकों को पर्यवेक्षण का भी पूरा अभ्यास कराया जाना चाहिये। पर्यवेक्षण से बालको में स्थूल पदार्थो के देखने और अनुभवों के भीतरी तह तक पहुँचने का प्रशिक्षण मिल जाना निश्चित है।

(ज) लिखित रचना का कार्य प्रारम्भ कराने के बाद लड़कों को ऐसे विषय चुन कर दिये जायें जो उनके प्रतिवेश के हों और जिनमें उनकी रुचि हो। लेकिन जो भी विषय लिया जाय वह सुनिश्चित, निर्दिष्ट एवं सीमित हो। अर्थात् वह अनिश्चित और संदिग्ध न हो।

(ञ) रचना एक कला है और इस कला में सतत अभ्यास आवश्यक है। यह अभ्यास शिक्षक निबन्ध, लेख, पत्र, यात्रा-वर्णन आदि लिखवा कर करा सकते है।

(त) रचना शिक्षण में बालकों को पुस्तकों, समाचारपत्रों आदि का अध्ययन करना चाहिये क्योंकि इससे उनका भाव-भंडार और ज्ञानक्षेत्र बढ़ता है। भाषा का ज्ञान विकसित होता है। शैली से परिचय होता है जिससे स्वयं एक स्वतन्त्र शैली अपनाने में सहायता मिलती है।

रचना में सावधानी :—शिक्षक को रचना सम्बन्धी कार्यशीलनों में इन बातों पर ध्यान देना चाहिये।

(क) लड़को को शब्द के वास्तविक अर्थ का ज्ञान हो, वे उसका स्थानीय मान जानते हो।

आप उनके कौन है ?
आप है कौन उनके ?
उनके कौन है आप ?

इन तीनों वाक्यों का स्पष्ट अन्तर समझा जाना चाहिये। इस प्रकार शब्कों के प्रयोग में सावधानी बरतनी चाहिए।

(ख) भावो के अनुसार भाषा का प्रयोग सीखना चाहिये। कभी-कभी लेखक का भाव ठीक भाषा के उपयोग के अभाव में पाठक के पास पहुँच नही पाता, कभी-कभी तो अर्थ का अनर्थ भी हो जाता है।

(ग) बालक अस्पष्ट वाक्य का प्रयोग न करे और वे केवल स्पष्ट वाक्यों मे ही अपने विचार को पूर्ण रूप से व्यक्त कर सकें।

(घ) वाक्यों में किसी प्रकार की शिथिलता न दिखायी पड़े, साथ ही भाव या भाषा में किसी प्रकार की जटिलता न हो। अनावश्यक शब्द प्रयोग में न आयें। व्याकरण की दृष्टि से वाक्य शुद्ध और स्पष्ट हों जैसे क्रियाओं, संज्ञाओं, विशेषण, क्रियाविशेषणादि का उचित प्रयोग किया जाना चाहिये। यदि इनका ठीक अध्ययन नही रहेगा तो वाक्यों का भ्रामक अर्थ भी लगाया जा सकता है।

(च) मुहावरों, लोकोक्तियों, एवं सूक्तियों का यथास्थान उचित अर्थपूर्ण प्रयोग रचना की विशेषता मानी जायगी। इनके अनुचित प्रयोग से अर्थ बिगड़ता है और भावग्रहण ठीक से प्रभावपूर्ण नहीं होता है।

रचना के विशेष गुण :—रचना में विशेषता लाने के लिए शिक्षक को निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिये ।

(i) बालक जिस विषय पर भी रचना कर रहे हों उसका उन्होंने पूर्ण अध्ययन या पर्यवेक्षण कर लिया है । इसका अर्थ यह हुआ कि उन्होंने सम्बद्ध विषय के किसी भी आवश्यक अग या अंश को छोड़ा नही है । ऐसी अवस्था मे लेख या निबन्ध स्वयं मे पूर्ण होगा और वह अनेक तथ्यों की जानकारा दे सकेगा ।

(ii) अच्छी रचना की दूसरी विशेषता यह है कि उसमें विचारों का प्रकटीकरण क्रमबद्ध रूप से हुआ हो । प्रत्येक विचार के लिए एक अनुच्छेद की व्यवस्था, प्रत्येक अनुच्छेद की आपसी तारतम्यता और सम्बन्ध ऐसा हो मानों एक से ही दूसरा निकला हो । ऐसे क्रमबद्ध विचार अभिव्यक्त करने से इसका पाठकों पर एक स्थायी, क्रमबद्ध प्रभाव पडता है ।

(iii) रचना की तीसरी विशेषता यह कि वह भाव से गर्भित हो । जैसे-जैसे मनुष्य के भावो में प्रौढ़ता आती है उसकी रचनायें अधिक से अधिक उन्नत, और विकसित होती है ।

(iv) रचना की यह भी एक विशेषता है कि उसमें कल्पना का आकर्षण हो । यह विशेषतः उन्ही रचनाओं में होता है जो भावात्मक और विचारात्मक (reflective) प्रकृति की होती हैं । रचना का सम्बन्ध केवल स्थूल जगत से ही नहीं है वरन् भाव जगत से भी है । और वास्तव में उच्च कोटि की रचनायें पाठक को भाव और कल्पना जगत की सैर कराता हैं । अतएव शिक्षक को कल्पनात्मक कहानियों, निबन्धों और यात्रा-वर्णन आदि पढ़ने का अभ्यास कराना चाहिये ।

(v) रचना की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसकी शैली प्रभावोत्पादक हो । उसमें भाषा का आकर्षण हो, भाषा अलंकारमय हो लेकिन ऐसा नहीं कि अलंकार अलंकार न होकर भार बन जाय । उनमें मुहावरों आदि का उचित स्थान पर प्रयोग किया जाय । लेकिन सर्वप्रथम बात यह है कि रचना की एक मात्र विशेषता यह है कि वह इस ढंग से लिखी गई हो कि पाठक उसका अर्थ ठीक-ठीक समझ जाये ।

रचना की वास्तविक विशेषता यह है कि प्राथमिक कक्षाओं में वे कल्पना प्रधान हों, माध्यमिक विद्यालयों में भाव प्रधान एवं तर्क प्रधान हों । छोटी

आयु वाले बालकों की रचनायें विशेष तौर से सरल अर्थ व्यक्त करें और जैसे-जैसे उनकी आयु में विकास हो वे सरल से गूढ़ अर्थ, तर्क और विचार को को प्रकट करने वाली हों।

रचना के साधन :—यहाँ पर कुछ ऐसे साधनों का संकेत किया जा रहा है जिसे शिक्षक रचना-शिक्षण में सफलता के साथ अपना सकते है।

(क) छोटे-छोटे वाक्य दिये जायें और उनके एक शब्द का स्थान रिक्त रखा जाय। बालक उस रिक्त स्थान को अपने शब्द से पूरा करेंगे।

(ख) पठित विषय का प्रश्न किया जाय जिनका उत्तर बालक दे।

(ग) चित्र दिखाये जायें और उनसे सम्बद्ध प्रश्न किये जायें।

(घ) वाक्य के एक शब्द को हटाकर उसके स्थान पर कई शब्द दिखाये जायें और बालको से कहा जाय कि वे ठींक शब्द को बतावें।

(च) वाक्य के प्रारम्भ और अन्त के खण्ड को अलग-अलग कर दिया जाय, ऐसे कई वाक्य दिये जायें और बालकों से कहा जाय कि वे वाक्य-खण्डों का यथार्थ सम्बन्ध जोड़ें।

(छ) पाठ्य पुस्तक से नये शव्दों को निकाल कर उनके सहारे नये-नये वाक्य वनाये जायें।

(ज) अधूरा वाक्य दिया जाय और बालक उन्हें पूरा करें।

(झ) किसी अंश को देकर कहा जाय कि बालक उनसे सम्बद्ध प्रश्न तैयार करें या प्रश्नों का उत्तर देकर उनका प्रश्न ही कराया जाय।

(त) प्रतिदिन के क्रियाशीलनों और अनुभवों को लिपिबद्ध करने के लिये कहा जाय।

दैनिक चर्य्या लिखना, विद्यालय मे पढ़े गये विषय की चर्य्या लिखने को कहा जाय।

(थ) यदि मै यह होता—शार्षक की साधारण रचना की जाय। जैसे यदि मैं राजा होता, यदि मैं प्रधानमन्त्री होता, यदि मै हवाई जहाज का चालक होता·········आदि। इससे बालक की कल्पना शक्ति का विकास होता है।

(द) बालकों द्वारा कथोपकथन तैयार कराया जाय। इससे छोटे-छोटे अभिनय लिखने की प्रेरणा मिलेगी।

(ध) विद्यालय के क्रियाशीलन सम्बन्धी विवरण लिखा जाय जैसे बागवानी कार्य, कताई या अन्य उद्योग कार्य, सांस्कृतिक कार्य, विद्यालय का वार्षिक उत्सव आदि।

(न) विद्यालय के क्रियाशीलनों का वर्णन अपने मित्रों, सम्बन्धियों तथा अन्य लोगों के पास पत्र द्वारा भेजा जाय।

(प) विद्यालय के उत्सव का निमंत्रण पत्र स्थानीय, गणमान्य व्यक्तियों, अभिभावकों आदि को भेजा जाय। प्रधानाध्यापक के पास आवेदन पत्र (छुट्टी के लिये, तथा अन्य कार्य के लिये) भेजा जाय।

(फ) मनीआर्डर फारम तथा रसीद बहियो को भरने का प्रशिक्षण दिया जाय।

(ब) छोटी-छोटी कहानियों के लिखने का अभ्यास कराया जाय। पुस्तक से, या अन्य व्यक्ति द्वारा कही गयी कहानी या स्वयं अपनी कल्पना से स्वतंत्र कहानी लिखी जाय।

(भ) स्थानीय डाकघर, बाजार, विद्यालय, अन्य दर्शनीय स्थानों का परिचयात्मक वर्णन लिखने का अभ्यास कराया जाय।

(म) समाचार पत्र से आवश्यक समाचारो का प्रतिलेख लिखा जाय और स्थानीय समाचार को भी लिखा जाय।

(य) विद्यालय मे स्वतन्त्र हस्तलिखित या मुद्रित पत्रिका के लिये लेख, कहानी, यात्रावर्णन या अन्य वर्णन तैयार किया जा सकता है। इसके लिये विद्यालय में सम्पादक मंडल संगठित किया जाय जिसमें बालक सक्रिय भाग लें और शिक्षक उचित निर्देशन दें।

(र) सम्पादक को पत्र लिखा जाय, समाचार भेजा जाय और उनके संवाददाता का काम किया जाय।

(ल) बालकों को नाटक, छोटे-छोटे अभिनय पत्र, और कविता लिखने के लिये प्रोत्साहित किया जाय।

(व) पठित विषय का संक्षेप लिखने के लिये अभ्यास कराया जाय।

(श) मुहावरों, लोकोक्तियों और विशिष्ट शब्दों के प्रयोग में पर्याप्त अभ्यास कराया जाय। अपने शब्दों मे किसी पाठ की व्याख्या (paraphrasing) के लिये प्रोत्साहित किया जाय।

(ष) किसी पाठ को अनुच्छेद (paragraph) में लिखने का अभ्यास कराया जाय।

(स) वर्णनात्मक, विवरणात्मक (Narrative) विवेचनात्मक अथवा विचारात्मक (reflective) एवं भावात्मक (emotional) निबन्ध लिखने का अभ्यास कराया जाय। वर्णनात्मक निबन्ध में किसी वस्तु, दृश्य, स्थानादि का यथा तथ्य वर्णन, विवरणात्मक निबन्ध मे किसी व्यक्ति अथवा घटना विशेष का विवरण, विचारात्मक निबन्ध में किसी विषय पर स्वतन्त्र विचार प्रगट करना अभीष्ट रहता है। भावात्मक निबन्ध में भावुकता का बाहुल्य रहता है। इनमे हृदय का वेग खुलकर व्यक्त होता है।

बालकों को पत्र लिखने के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये। अन्य राज्यों और अन्य देशों के साथियों के पास पत्र लिख कर मैत्री स्थापित की जा सकती है (pen friendship)। ऐसे पत्र-लेखन से अभिव्यंजना शैली का विकास होता है। संयुक्त राष्ट्र संघ की शैक्षिक, वैज्ञानिक, सांस्कृतिक परिषद तथा अन्य शैक्षिक संस्थाओं द्वारा ऐसे सम्पर्क स्थापित करने का आयोजन किया गया है। विद्यालयों में ऐसे क्रियाशीलनों का पर्याप्त उपयोग वांछनीय है।

पत्र लिखने में शिक्षक को यह ध्यान रखना चाहिये कि बालकों को पत्र के चार अंगों—पत्र में पता, प्रशस्ति, पत्र का शरीर तथा पत्र की समाप्ति और पत्र पाने वाले का नाम का पूर्ण ज्ञान हो गया है। उसी प्रकार निबन्ध लिखने में भी उन्हें इसके अंगों—भूमिका, उपपत्ति, और उपसंहार का सम्यक ज्ञान करा देना चाहिये।

संशोधन कार्य :—रचना कार्य में संशोधन का क्या स्थान रहना चाहिये यह विवाद का विषय है। कुछ शिक्षाशास्त्रियों का विचार है कि प्रारम्भ से ही शिक्षक द्वारा रचना का संशोधन होना चाहिये। इसके विपरीत कुछ लोगों का विचार है कि संशोधन का स्थान गौण है; प्रधान उद्देश्य यह है कि बालक को रचना-कला की पूरी जानकारी हो जाय।

इस विवादास्पद विषय में न पड़ कर हमें प्रारम्भ में ही समझ लेना चाहिये कि रचना का वास्तविक उद्देश्य बालकों को प्रभावोत्पादक रचना (effective writing) के लिये उत्प्रेरित, प्रशिक्षित और अभ्यस्त करना है। प्रभावशाली रचना का तात्पर्य यह है कि रचना में वर्णन किये गये दृश्य या उपस्थित किये गये तर्क की ओर हमारा ध्यान स्वत: आकर्षित हो जाय, और उसका अर्थ-ग्रहण भलीभाँति किया जा सके। अतएव प्रभावोत्पादक रचना के लिये स्वयं बालकों को शुद्ध अभिव्यक्ति (correct expression) के लिये

उत्तरदायित्व ग्रहण करना चाहिये। यह शुद्धता विषय, भाषा, व्याकरण और शैली से सम्बन्ध रखती है। बालकों द्वारा रचना सम्बन्धी अशुद्धियाँ भी इन्ही शीर्षकों के अन्तर्गत होती है।

इन अशुद्धियों को दूर करने के लिये शिक्षक निरोधात्मक (Preventive) और सुधारात्मक (Corrective) उपाय अपना सकते हैं।

निरोधात्मक विधियाँ :—प्रारम्भिक कक्षाओं में पर्याप्त मात्रा में मौखिक कार्य का अभ्यास कराया जाय। जब शिक्षक स्वयं मौखिक कार्य में शुद्ध भाषा, व्याकरण, शैली आदि का ध्यान रखेंगे अर्थात् शब्दों का भावानुकूल प्रयोग करेंगे, अनुचित या भ्रामक प्रयोग से बचेंगे या व्याकरण के नियमों से नियंत्रित भाषा का प्रयोग करेंगे तो अभ्यास, संसर्ग और अनुकरण के नियमों के द्वारा अचेतन में ही बालकों में शुद्ध रचना का अभ्यास पड़ जायगा।

माध्यमिक कक्षाओं में बालकों को अच्छे साहित्य, शैलीयुक्त, कल्पना प्रधान आदि गुणों से विभूषित अनुच्छेदों या लेखों को पढ़ने के लिये उत्प्रेरित किया जाय। भाषा संसर्ग से ही शुद्ध भाषा का ज्ञान और अभ्यास पड़ता है। इससे शैली भी उन्नत और विकसित होती है।

सुधारात्मक (Corrective) :—हमारा विश्वास है कि यदि इन दो उपायों को काम में लाया गया तो रचना में शुद्धता और विशिष्टता अवश्य आयेगी। फिर भी लिखित कार्य के संशोधन (Correction) के लिये शिक्षक को अन्य विधियाँ अपनानी पड़ेगी।

(क) बालकों को जो भी लिखित कार्य दिया जाय उसे शिक्षक अवश्य देखें।

(ख) यदि वर्ग छोटा हो तो उन्हें प्रत्येक लड़के का रचना-कार्य देखकर संशोधन करना चाहिये और बालकों को उनकी गलतियाँ बतानी चाहिये। सभी लड़कों के सामान्य लाभ के लिये सामान्य गलतियों की चर्चा वर्ग में सामूहिक रूप से की जाय। यदि वर्ग बड़ा हो तो शिक्षक को उतना ही काय देना चाहिये।जतना वे स्वयं देख सकते है।

(ग) संशोधन का वास्तविक उद्देश्य यह हो कि बालक को अपनी गलती मालूम हो जाय। कभी-कभी शिक्षक गलतियों के लिये लड़कों को कठोर सजा देते हैं, या वर्ग में उनका उपहास करते हैं या उनकी ताड़ना करते हैं। लेकिन ये सभी विधियाँ अमनोवैज्ञानिक है और प्रभावहीन प्रमाणित होती है। यदि असावधानी के कारण गलती हुई है तो इसके लिये

शिक्षक बालक को सतर्क कर दें जिसमें भविष्य में वह सावधानी के साथ यह काम करे। लेकिन यदि लड़के न अज्ञानतावश गलती की है तो उसे समझा देना चाहिये। सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार करने से उसका फल अच्छा और स्थायी पडता है।

(घ) सामान्य गलतियों, जैसे व्याकरण की गलती, अक्षर-विन्यास की गलती आदि के लिये शिक्षक प्रत्येक बालक के लिये एक ग्राफ (graph) रखें जिसमें प्रगति या प्रत्यागति अंकित की जा सके। इससे रचना कार्य में अशुद्धि दूर करने में पर्याप्त सहायता मिलेगी।

(च) ऊपर की कक्षाओं में, विशेषत: १० वीं और ११ वीं में, शिक्षक की यह चेष्टा रहनी चाहिये कि विद्यार्थी अपनी रचना को कई बार स्वयं पढ़कर उसकी गलती निकालें। आपस में, रचनाओं को विद्यार्थीगण, देखकर भी बहुत सी गलतियाँ निकाल सकते हैं। यदि एक बालक दूसरे साथी की रचना देखकर उसकी गलती बता सकता है तो बालक के रचनाकार्य में प्रगति आ सकती है।

भाषा और व्याकरण की अशुद्धियों को दूर करने के अन्य उपाय व्याकरण के प्रकरण में बताये गये है। विषय और शैली के सम्बन्ध मे शिक्षक को बालकों के सामने अच्छी पुस्तकों के अतिरिक्त अच्छी पत्रिकाओं आदि के पढ़ने की व्यवस्था करनी चाहिये।

अध्याय १८

हिन्दी की पाठ्य-पुस्तकें

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में पाठ्य-पुस्तक उसकी आधारशिला है। पुरातन काल में कंठस्थ पद्धति से ही शिक्षा दी जाती थी। मुद्रण-कला के आविष्कार के पहले भी, जब पुस्तकों का सर्वथा अभाव था, यही पद्धति अपनायी जाती थी। लेकिन जब मुद्रण से पुस्तकें पर्याप्त सख्या मे उपलब्ध होने लगीं और विविध विषयों पर साहित्य का विकास हुआ तब शिक्षक तथा छात्रों के लिये समान रूप से पुस्तकें मिलने लगी। पाठ्य पुस्तक से भाषा, व्याकरण, रचना, पत्रलेखन, निबन्ध, कविता आदि के शिक्षण की व्यवस्था सुलभ हो गयी। और आज पाठ्यपुस्तक ही एक उत्तम, उपयोगी और आवश्यक साधन के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत है।

लेकिन जहाँ पाठ्य पुस्तक का इतना व्यापक महत्त्व और अर्थ (meaning) हैं, वही उसकी कमियों की ओर भी हमारा ध्यान सहज रूप से चला जाता है। पाठ्य पुस्तक से विषय की सीमा बँध जाती है, क्योंकि किसी भी पुस्तक मे विभिन्न रुचियों, विविध विषयों और अनेक प्रकार के बालकों के लिये उपयुक्त सामग्री का संकलन कल्पनामात्र है, व्यावहारिक नही। पाठ्य पुस्तक का प्रत्यक्ष सम्बन्ध परीक्षा से होने के कारण वह साध्य ही बन जाती है, साधन नहीं। अतः तेज, साधारण और निम्न बुद्धि वाले बालकों को समान रूप से लाभ नहीं पहुँचता। अतएव पाठ्य पुस्तक से हम विद्यार्थियों में अपेक्षित प्रगति और उपलब्धि (achievement) की आशा नही रख सकते। पाठ्य पुस्तक की इन्हीं विवशताओं को दूर करने के लिये अनुपूरक पुस्तकों, और द्रुतवाचन पुस्तकों (Rapid Reading Books) की व्यवस्था की गयी है। लेकिन वे भी एक प्रकार से उन्हीं दोषों से ग्रस्त हो जाते हैं क्योंकि इनका सम्बन्ध बालक के मानसिक विकास, साहित्यगत गुणागुणज्ञान तथा साहित्य के रसास्वादन से न होकर प्रधानतः (व्यवहार रूप मे ही) परीक्षा से होता है। फिर भी इतना तो निर्विवाद है कि पाठ्य पुस्तक एक ऐसा साधन है जो किसी भी अवस्था में पृथक नहीं किया जा सकता। हाँ, पाठ्य पुस्तक व्यवस्था में सुधार

लाना आवश्यक है। अतएव हिन्दी शिक्षण की सफलता की एकमात्र कुंजी यही है कि पाठ्य पुस्तक के सम्बन्ध में शोधों (Researches) को प्रोत्साहन देना चाहिये और निष्कर्षों के आधार पर अपेक्षित सुधार लाया जाय। नीचे की पंक्तियों में पाठ्य पुस्तकों के सम्बन्ध में सुधारात्मक विचार प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

पाठ्यपुस्तक का विषय :—हिन्दी पाठ्य पुस्तक के विषयों का चुनाव ऐसा हो जो बालक के प्राकृतिक और सामाजिक प्रतिवेश से लिये जायें और उन्हीं से सम्बन्ध रखते हों। लेख, कहानी, निबन्ध, नाटक, यात्रा-वर्णन, जीवनी, दोहे, कविता आदि में ऐसे विषयों का संकलन किया जाय। प्राकृतिक प्रतिवेश से नदी, आकाश, पहाड़, जंगल, भूमि, सागर, प्रकृति-वर्णन साधारण विज्ञान आदि के पाठ चुने जायें; और उसी प्रकार मानवीय प्रतिवेश से इतिहास, नागरिक शास्त्र, मानवीय भूगोल—गाँव, नगर, ग्रामपंचायत, शासनप्रणाली, जीवनी, संस्थाएँ आदि—पाठ चुने जायें। बालकों के घरेलू और विद्यालय के क्रियाशीलन—उद्योग, बागवानी, सफाई, आदि के पाठ चुने जा सकते हैं।

पुस्तक का विषय ऐसा हो जिससे बालकों की रुचि, रुझान और प्रवृत्ति का समुचित विकास हो सके। उनके मानसिक विकास और स्तर को ध्यान में रखते हुए ही विषय चुने जायें। इस उम्र के बालकों की मानसिक आवश्यकताओं, उपलब्धि और अपेक्षित विशेषताओं को ध्यान में रखकर ही पाठों का चुनाव संभव हो सकता है। मुहावरों और लोकोक्तियों आदि के प्रयोग मे भी इसी सिद्धान्त का पालन करना चाहिये। अर्थात् छोटी श्रेणियो में वैसे ही मुहावरे प्रयुक्त हों जो दैनिक व्यवहार में आया करते हैं। लेकिन उनमें क्रमश: नये-नये मुहावरों को प्रयुक्त करके बालकों की बोधगम्यता को बढ़ाना चाहि । जटिलता, कठिनता और क्लिष्टता का जो संकेत किया गया है उसका अर्थ यह कदापि न लगाया जाय कि विषय या भाषा बोझिल और दुरूह हो।

शब्दावली :—शिक्षाशास्त्रियों ने सुझाव दिया है कि पहली कक्षा में प्रवेश करने वाले छात्र को दैनिक प्रयोग में आने वाले परिचित कम से कम १५०–२०० शब्दों का भंडार रखना चाहिये। और इसी प्रकार ऊपर की कक्षाओं के बालकों के लिये नवीन शब्दों की एक सीमा निर्धारित की गयी है :—

वर्ग १—३०० नये शब्द
" २—३०० " "
" ३—४०० " "
" ४—४०० " "
" ५—५०० " "

अर्थात नये-नये शब्दों का विभिन्न पाठों में एक सुनिश्चित क्रमबद्ध अनुपात में विवरण करना चाहिये।

इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक उम्र के बालक के लिये विभिन्न तरह की पुस्तकें तैयार की जायें। ज्यों-ज्यों बालकों की उम्र और मानसिक स्तर में विकास होगा, त्यों-त्यों उनके लिये सरल से कठिन पाठों की व्यवस्था की जानी चाहिये। पुस्तकों की रचना ऐसी हो कि विभिन्न वर्गों और आयु के लिये निर्दिष्ट पुस्तका का समीक्षात्मक अध्ययन करने से यह मालूम हो कि बालकों के मानसिक विकास के लिये यह एक क्रमिक योजना है।

अतएव हमारा विश्वास है कि पाठो के चयन में बड़ी सतर्कता बरतने की आवश्यकता है। लेखक मंडल और संकलनकर्त्ताओ को बालकों की मानसिक आयु, सामाजिक और प्राकृतिक प्रतिवेश, रुचि आदि के साथ ही पाठों का उचित तालमेल बिठा कर पाठ का संकलन करना चाहिये।

सभी पाठों में एक उचित अनुपात होना चाहिये—पाठ प्रारम्भिक वर्गों में छोटे-छोटे और ऊँचे वर्गों में लम्बे हों। लेकिन पाठ अधिक लम्बा न होना चाहिये।

विविध विषयों के लिये—कहानी, नाटक, निबन्ध, यात्रावर्णन, पत्र, आत्मकथा, जीवन चरित्र, कविता—पर्याप्त स्थान मिलें। न तो किसी को अनावश्यक महत्त्व मिल जाय, और न कोई पाठ छूट ही जाय। इस सम्बन्ध में पाठ्यपुस्तक शोध संस्थानों से शिक्षकों, लेखकों और शासन को लाभ उठाना चाहिये। इस पर अन्यत्र भी वर्णन अभीष्ट है।

पाठ्यपुस्तक की भाषा :—पाठ्य पुस्तक की भाषा प्रारम्भिक कक्षा में सरल, सुबोध और सुगम्य हो, और उसमें क्लिष्टता नहीं आने पाये। माध्यमिक और ऊपर की कक्षाओं में भाषा में क्रमशः सरलता से जटिलता आनी चाहिये जिनमें बालकों को अर्थ ग्रहण करने के लिये कुछ परिश्रम करना पड़े। तब तक उनका मानसिक विकास भी काफी हुआ रहता है। शब्दों का चयन ऐसा हो कि प्रारम्भ में तद्भव, आगे चलकर तद्भव के साथ तत्सम और ऊपर चलकर शुद्ध साहित्यिक शब्द लाये जायें।

पुस्तक की पृष्ठ संख्या :—विहार सरकार ने प्रारम्भिक विद्यालयों के पाठ्क्रम के अन्तर्गत विभिन्न वर्गो के लिए पुस्तकों और उनकी पृष्ठ-संख्या का इस प्रकार निर्धारण किया है।

वर्ग—	कुल पृष्ठ संख्या	पुस्तक की संख्या
१ —	२४+३२ —	२४ पन्ने की एक प्राइमर और ३२ पन्ने का एक रीडर
२ —	१२८ —	६४ पन्ने का एक रीडर और ६४ पन्ने के दो सहायक रीडर
३ —	१६० —	८० का मुख्य रीडर और ४० के दो सहायक रीडर
४ —	२५६ —	१२८ का मुख्य रीडर और ६४-६४ के दो सहायक रीडर
५ —	२८८ —	१२८ पृष्ठों का मुख्य रीडर और ८०-८० पन्ने के दो सहायक रीडर

ऊपर की श्रेणियों में इसी अनुपात से रीडर और सहायक रीडर की पृष्ठ संख्या में वृद्धि होनी चाहिये। लेकिन इस संकेत को निदेश नहीं माना जाय, शोधों के निष्कर्षों से इनमे सुधार लाया जा सकता है।

पुस्तक की छपाई :—पुस्तक की छपाई का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है। इनसे बालको की रुचि वढ़ती है और पुस्तक प्रेम का यह भी एक आवश्यक प्रभावकारी कारण है। अतएव पुस्तक की छपाई अच्छी होनी चाहिये, उसका आकार आकर्षक होना चाहिये। मुखपृष्ठ पर चित्र का रहना लाभदायक है; विशेषत: प्रारम्भिक कक्षाओं के बालकों के लिये कागज अच्छी किस्म का हो और छपाई आकर्षक और साफ-साफ हो। पुस्तक में जिल्द दृढ़ और सुन्दर हो। पुस्तक के पाठों मे चित्रों का रहना अत्यावश्यक है। इनसे पुस्तकों में आकर्षण शक्ति आ जाती है। छोटी कक्षाओं में चित्र अधिक हों, ऊँची श्रेणियों में उनसे कुछ कम, महाविद्यालय की पाठ्यपुस्तकों में चित्र का रहना आवश्यक नही है। बालक, किशोर, युवक और प्रौढ़ की पुस्तकों में चित्र का स्थान क्रमश: कम होना चाहिये। टाईप बालक की आयु के अनुसार प्रयुक्त हो। छोटे-छोटे बालकों के लिये ४८ से ६० पाइन्टस् तक, और ऊँची श्रेणियों (१०–११) में १६-१२ तक का प्रयोग वांछनीय है। पुस्तक

का मूल्य अधिक न हो। उसका मूल्य लागत से कुछ ऊँचा हो जिसमें व्यवसायियों को लाभ भी हो। छपाई का प्रबन्ध शासन को अपने हाथ में ले लेना चाहिए या नहीं, यह विचारणीय है।

लेखन और प्रकाशन :—हिन्दी की पाठ्य पुस्तकों का चयन एक परिषद से कराना चाहिये जिसमें न केवल उच्चकोटि के विद्वान और शिक्षाशास्त्री ही रहें वरन् हिन्दी भाषा के अच्छे लेखक, मनोविज्ञ और प्राथमिक तथा माध्यमिक विद्यालयो के अच्छे और अनुभवी शिक्षकों को भी रखना चाहिये। यह बड़े ही खेद का विषय है कि जिन लोगों को वास्तविक कार्य करना है उनका प्रतिनिधित्व नहीं हो या नाम मात्र ही हो। ऐसे ही परिषद द्वारा विभिन्न वर्गों की हिन्दी पाठ्य पुस्तकों के विषयों और पाठों का अनुमोदन प्राप्त होना चाहिये।

पाठ्यपुस्तक शोध संस्थान :—यह साधारण बात है कि आज तक भारतीय भाषाओ की पाठ्य पुस्तक के निर्धारण में किसी वैज्ञानिक पद्धति को अपनाया नहीं गया है। केवल विदेशी शिक्षा प्रणाली के सिद्धान्तों पर ही इसका कार्यक्रम निभाया गया है। अतएव हिन्दी की पाठ्य पुस्तकों के लिये ही नही, भारतीय विद्यालयों के लिये सभी प्रकार की पाठ्य पुस्तकों के निर्धारण के लिये प्रत्येक राज्य में शोध संस्थान स्थापित किया जाय। यह हर्ष की बात है कि भारत सरकार का ध्यान इस ओर गया है और अब प्रत्येक राज्य में पाठ्य-पुस्तक शोध संस्थान (Text Book Research Bureau) खोले जा रहे है। इन संस्थानों के शोधों से लेखकों, प्रकाशकों और अन्य संस्थाओं को पर्याप्त लाभ होगा, क्योंकि इनके बहुमूल्य निष्कर्ष पाठ्य पुस्तक के विषय, पाठ के आकार-प्रकार, भाषा, शैली और छपाई के आधुनिकतम सिद्धान्त। के सम्बन्ध के होगे।

पाठ्य पुस्तक के चयन में भी विद्यालयों को स्वतन्त्रता दी जानी चाहिये। राज्य शासन केवल पुस्तकों की एक सूची तैयार कर दे और विद्यालय उनमें से किसी एक या दो को अपने लिए चुन लें।

———

अध्याय १९

पुस्तकालय

आज के युग में पुस्तकालय की आवश्यकता और महत्त्व प्रगट करने के लिये किसी तर्क की आवश्यकता नही है। अध्यापक या छात्र के लिये पुस्तकालय बहुत ही उपयोगी और लाभ का साधन है। अब हम एकमात्र पाठ्य-पुस्तक पर ही आश्रित नही रह सकते, क्योंकिउसकी विवशताओं का वर्णन पिछले अध्याय मे किया जा चुका है।

शिक्षक अपने पाठ की तैयारी के लिये अन्य पुस्तकों का सहारा लेता है, संदर्भ ग्रन्थ का अध्ययन उसके लिये अत्यन्त ही लाभप्रद साधन है। जिस तरह शिक्षक अपनी सामान्य योग्यता की वृद्धि के लिये, मनोरंजन के लिये, शिक्षण की आधुनिकतम विभिन्न विधियो की जानकारी के लिये. तथा विद्यालय के विकास के लिये अनेक क्रियाशीलनो का आयोजन करने के लिए पुस्तकालय का सहारा लेता है उसी तरह छात्र भी अपने ज्ञान के विस्तार के लिये, मनोरंजन के लिये, उत्सुकता की शान्ति के लिये तथा अपनी रुचियों के लिये पुस्तकालय के विभिन्न विषयों की पुस्तको का अध्ययन करता है। पुस्तकालय में नाना प्रकार के विषयों पर पुस्तकें संगृहीत रहती है जिनके पढ़ने से किसी जाति और देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक, और सांस्कृतिक परम्परा और भंडार की जानकारी प्राप्त होती है। उन पुस्तको के अध्ययन से न केवल वर्त्तमान वरन् भूतकाल की बातों की भी जानकारी होती है। अतएव किसी भी विद्यालय के लिये पुस्तकालय उसका आभूषण है और इसकी व्यवस्था प्रत्येक विद्यालय में होनी चाहिये। पुस्तकालय मे हिन्दी भाषा की अच्छी-अच्छी पुस्तकों का संग्रह रखना चाहिये।

विद्यालय में दो प्रकार का पुस्तकालय रहना चाहिये—केन्द्रीय पुस्तकालय और वर्ग पुस्तकालय।

केन्द्रीय पुस्तकालय की व्यवस्था ऐसी हो जहाँ अन्य पुस्तकों के अतिरिक्त हिन्दी भाषा की उत्तम-उत्तम पुस्तको का भी संग्रह रहना चाहिये। संदर्भ ग्रन्थ शिक्षकों या बुद्धिमान बालकों के उपयोग के लिये एक जगह रखी जायें।

उच्च कोटि के लेखकों की कहानी, आख्यायिका, उपन्यास, नाटक, यात्रा-वर्णन, जीवन-चरित्र, आत्म कथा, संस्मरण, शिक्षण-साहित्य, सन्त-साहित्य, भौगोलिक वर्णन, इतिहास, संस्कृति सम्बन्धी पुस्तकों का संकलन रहना चाहिये। पद्य साहित्य में गीत, कविता, खण्डकाव्य, और महाकाव्य का संकलन चाहिये। लक्ष्य यह हो कि सभी लेखकों, कथाकारों, उपन्यासकारो, कवियों की पूरी रचना का संकलन रखा जाय। केन्द्रीय पुस्तकालय से शिक्षक और छात्र समान रूप से लाभ उठा सके।

केन्द्रीय पुस्तकालय के अतिरिक्त सभी वर्गों मे वर्ग-पुस्तकालय की व्यवस्था लाभप्रद है। बालको की आयु, रुचि और योग्यता के दृष्टिकोण से बाल-साहित्य का संकलन रहना चाहिये। विदेशो में प्रत्येक आयु के बालकों के लिये मनोवैज्ञानिक आधार पर बाल-साहित्य की रचना की जा रही है। भारतीय भाषाओ में इस कोटि के साहित्य का पूरा अभाव है। भारतीय लेखकों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया जाता है, साथ ही प्रकाशको को भी ऐसी रचनाओं के प्रकाशन के लिये उत्साह दिखाना चाहिये। कथा, कहानी, छोटे-छोटे उपन्यास, यात्रा-वर्णन, आत्मकथा, जीवन-चरित्र, कविता आदि अर्थात् सभी विषयों पर अच्छी-अच्छी पुस्तकें रखी जाये जिनसे वर्ग के बालक उनसे पूरा-पूरा लाभ उठा सके।

पुस्तकों का चयन :—विद्यालय मे जो भी पुस्तकें मँगायी जायें उनके चुनाव में किसी एक शिक्षक का ही उत्तरदायित्व नहीं मानना चाहिये। वरन् सभी शिक्षकों और बुद्धिमान छात्रो का सम्मिलित प्रयास होना चाहिये। विद्यालय में प्रकाशकों द्वारा भेजे गये सूचीपत्र शिक्षकों को सुरक्षित रखना चाहिये और उनसे पूरा लाभ उठाना चाहिये। वर्तमान व्यवस्था में ऐसे सिद्धान्त का पालन नही हो रहा है। फल यह होता है कि जिनके लिये पुस्तक ली जाती हैं उनका कोई प्रतिनिधित्व नहीं रहता। यदि शिक्षकों को यह सुविधा दी जाय तो अच्छी-अच्छी पुस्तकों का संकलन सम्भव हो सकता है।

पुस्तकों का पंजीकरण :—जब पुस्तकालय में पुस्तकें आ जायें तो उन्हें एक पंजी में दर्ज कर देना चाहिये। एक दूसरी पंजी में विषयानुसार पुस्तकों का नाम, लेखक, प्रकाशक का नाम, खरीद की तिथि, मूल्य आदि का विवरण लिख देना चाहिये। वास्तव मे इस प्रकार का सूची पत्रीकरण (Cataloguing) एक कला है और ऐसी व्यवस्था करने से रुचि के अनुसार कोई भी व्यक्ति

पुस्तकों की जानकारी प्राप्त कर सकता है। स्वयं सूचीपत्र (Catalogue) का अध्ययन भी शिक्षाप्रद है।

पुस्तकों का उपयोग :—पुस्तकालय का वास्तविक महत्त्व इसी बात में है कि उसका सर्वाधिक उपयोग शिक्षक और छात्र करें। केन्द्रीय पुस्तकालय की व्यवस्था किसी शिक्षक को करनी चाहिये जो सप्ताह मे एक या दो बार पुस्तकों का वितरण निश्चित करें। इसके लिये समय निश्चित किया जब लोग पुस्तकें ले सकें और लौटा सकें। वर्ग पुस्तकालय की व्यवस्था वर्ग-मंत्री को ही करनी चाहिये। यहाँ भी पुस्तकों के लेने और लौटाने का समय निश्चित रहना चाहिये। पुस्तकों के विवरण के लिये पंजिका रखी जाय।

हिन्दी शिक्षण की सबसे बड़ी सेवा यही हो सकती है कि छात्रों और शिक्षकों को अपनी रुचि अनुसार विविध विषयों की पुस्तकों के पढ़ने में आनन्द और उत्साह उत्पन्न हो। निश्चय ही, जिस विद्यालय में पुस्तकालय का जितना अधिक उपयोग होगा वहाँ के लड़कों का मानसिक विकास और साहित्यगत रुचि उतनी ही अधिक होगी। अतएव निरीक्षक पुस्तकालय का ही निरीक्षण करके विद्यालय का वास्तविक मूल्यांकन कर सकता है। विद्यालय में शिक्षाविभाग या प्रकाशक के भेजे गये सूचीपत्र को सुरक्षित रखना चाहिये।

वाचनालय :—प्रत्येक विद्यालय में पुस्तकालय के साथ ही वाचनालय की व्यवस्था भी आवश्यक है। वाचनालय में हिन्दी के दैनिक समाचार पत्र और अन्य कोटि की पत्रिकाओं की व्यवस्था होनी चाहिये। लड़कों द्वारा नियमित रूप से समाचार पत्र पढ़ने का अभ्यास कराया जाय। वाचनालय केन्द्रीय स्थान पर हो और इसकी व्यवस्था का सारा भार विद्यार्थियों को ही सौंपना चाहिये।

विद्यालय में उपयोग के लिये बाल-पत्रिकाओं की एक सूची नीचे दी जा रही है :—

चन्दा मामा	हिन्दोस्तान	सरिता
बाल-सखा	आजकल	हिन्दी नवनीत
चुन्नू-मुन्नू	सन्मार्ग	धर्मयुग
बालक	अमर भारत	सरस्वती
बाल भारती	नवभारत	कल्याण आदि

इस प्रकार स्पष्ट है कि हिन्दी शिक्षण की सफलता के लिये पुस्तकालय की व्यवस्था वांछनीय ही नहीं, आवश्यक भी है।

अध्याय २०

हिन्दी शिक्षण के साधन

बहुत हाल तक पुस्तक को ही शिक्षण का एकमात्र साधन माना जाता रहा है। लेकिन पिछले १०० वर्षों में जिस गति से मनोविज्ञान और शिक्षाशास्त्र का विस्तार हुआ है, उससे अनेक ऐसे सिद्धान्त निकल पड़े है जिनके अध्ययन से यह प्रगट होता है कि शिक्षण के अनेकानेक साधन उपलब्ध हैं जिनका शिक्षक सफलतापूर्वक उपयोग कर सकते हैं। हिन्दी भाषा के शिक्षकों के लिये इन साधनों का अत्यन्त ही प्रभावशाली और स्थायी महत्त्व है; क्योंकि मानव के अभिव्यक्ति और भावग्रहण सम्बन्धी सभी क्रियाकलापों में इन साधनों का प्रधान उपयोग-भावों के आदान-प्रदान के लिये, (अभिव्यक्ति और ग्रहण) किया जाता है।

इन साधनो के उपयोग से बालक की रुचि, उत्साह और कार्यशीलता का विकास होता है। ये साधन विविध प्रकार की सामग्री का आयाजन करते है जिनके द्वारा बालकों की एकस्वरता (monotony) दूर होती है और उनका पूरा मनोयोग प्राप्त होता है। केवल पाठ्यपुस्तकों का सहारा विषयों को एक विशेष घेरे के अन्दर बान्ध कर सीमित कर देता है, लेकिन इन विविध साधनों का उपयोग बालक को एक स्वच्छन्द वातावरण में कार्य करने की प्रेरणा और उत्साह देता है। ऐसे साधनों के प्रयोग में बालक सक्रिय भाग लेते है। अतएव वे कर्म के द्वारा भी ज्ञान प्राप्त करते है। इन साधनों का प्रयोग आँखो और कानों के द्वारा भी बालक मे भावग्रहण की क्षमता उत्पन्न करता है। उनमें कम से कम समय लगता है और उनका प्रभाव भी स्थायी प से पड़ता है। उनके द्वारा बालको को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से भी शिक्षा दी जा सकती है। अतएव आज के विविध साधन शिक्षक और छात्र के लिये समान रूप से लाभदायक है। और यदि इनका सफल आयोजन किया गया तो हिन्दी भाषा की शिक्षा अत्यन्त ही महत्वपूर्ण और प्रभावशाली प्रमाणित होगी।

पिछले अध्यायों में इन बहुमूल्य साधनों का संकेत, वर्णन या विश्लेषण यथास्थान किया जा चुका है। प्रस्तुत अध्याय में उन्ही साधनों का संकलित रूप प्रस्तुत किया जा रहा है। इन साधनों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है।

(क) बालकों के स्वक्रियाशीलन के साधन :—पुस्तक, पुस्तकालय, वाचनालय, पत्रिका (विद्यालय या वर्ग), दैनिक चर्य्या, पत्राचार, बालसभा, कवि सम्मेलन, प्रतियोगिता–वाद-विवाद, भाषण, निबन्ध या कहानी लिखना—संग्रह (लेखों, कहावतों, कविताओ, लोकगीत आदि का), अभिनय, यात्राएँ।

(ख) शिक्षक द्वारा प्रयुक्त साधन :—

(१) *दृश्य साधन* :—श्यामपट, चित्र और चार्ट, मानचित्र, मॉडल, फ्लैशकार्ड, कार्टून, मूकचित्र (Silent pictures), एपडायस्कोप (Epidiascope), मैजिक लैन्टर्न भिऊ मास्टर (View master), भाषा विषयक लेख्य और स्लाइड।

(२) *श्रव्य-साधन* :—टेप रेकर्डर, ग्रामोफोन, लिंग्वाफोन, फोनोग्राफ, रेडियो।

(३) *श्रव्य-दृश्य-साधन* :—फिल्म, टेलिवीज़न

पाठ्य पुस्तक, पुस्तकालय और वाचनालय के सम्बन्ध में पिछले दो अध्यायों में सम्यक् विवेचन किया जा चुका है।

दैनिक चर्य्या :—बालकों को दैनिक चर्य्या लिखने के लिये प्रोत्साहन देना चाहिये। दैनिक चर्य्या में बालक के घर और विद्यालय के क्रियाशीलन लिखे जायें। शिक्षक वर्ग में उनकी दिनचर्य्या पढ़वा कर सुनें और यथासंभव सामूहिक या व्यक्तिगत शुद्धिकरण भी कर देना चाहिये। दैनिक चर्य्या लिखने से बालकों को अभिव्यक्ति का प्रशिक्षण मिलता है। रचना सम्बन्धी क्रियाशीलनों का अभ्यास पड़ता है।

पत्रिका :—अभिव्यक्ति को विकसित करने के लिये, साहित्य के प्रति रुचि जागरूक करने के लिये पत्रिका की व्यवस्था एक उपयोगी साधन है। प्रत्येक विद्यालय में पत्रिका के सम्पादन की व्यवस्था होनी चहिये। इसके लिये सम्पादक मंडल संगठित किया जाय जिसमें शिक्षकों और छात्रों का प्रतिनिधित्व होना चाहिये। लड़कों के लेखों-निबन्धों, चुटकुलों आदि की रचना, संकलन, सम्पादन और प्रकाशन को प्रबन्ध होना चाहिये। बालकों को रचना के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये। बालको की रचनाओं को शिक्षक

देख कर शुद्ध कर दें। विद्यालय में दो प्रकार की पत्रिका हो, एक पूरे विद्यालय के लिये और दूसरा वर्ग विशेष के लिये। वर्ग में भी छात्रों और शिक्षक का संपादक मंडल बनाया जाय। विद्यालय में दैनिक समाचार पत्र निकालने का प्रबन्ध किया जाय।

प्रतियोगिता :—सृजनात्मक एवं क्रियात्मक क्रियाशीलनों में प्रतियोगिता का स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसके द्वारा स्पर्धा भाव (Competetion) से बालक में उसकी प्रवृत्तियों का विकास होता है। साहित्य के क्षेत्र में हिन्दी के निबन्ध, कहानी, गीत, चुटकुले तथा अन्य रचनाओं के लिए प्रतियोगिता की व्यवस्था होनी चाहिए। साथ ही, सांस्कृतिक कार्यक्रम मे, वाद-विवाद और भाषण के लिए भी प्रतियोगिता और पुरस्कार की व्यवस्था वांछनीय है।

अभिनय :—हिन्दी भाषा सम्बन्धी उपलब्धियों के लिए अभिनय का किस प्रकार आयोजन करना चाहिए और उनसे कौन-कौन से लक्ष्य पूरे हो सकते हैं इनका सम्यक विवेचन नाटक-शिक्षण-विधि के अध्ययन में किया जा चुका है।

यात्राएँ :—निस्सन्देह, यात्राओ का शैक्षणिक महत्त्व है। इसमे किसी प्रकार का मतभेद आज नहीं है। जिन पाठो को शिक्षक वर्ग में पढ़ाने मे असमर्थ हैं, उनके विषय मे स्थूल पदार्थो, दर्शनीय स्थानों को दिखा देने से स्थायी प्रभाव पड़ता है। प्राकृतिक स्थलों, पेड़-पौधों के पर्यवेक्षण से पाठ का वास्तविक उद्देश्य पूरा हो सकता है। औद्योगिक कारखानों, खनिज पदार्थो, ऐतिहासिक स्थल, शैक्षिक प्रयोगों के स्थलों को वास्तविक दर्शन से बालकों के मानसिक परिधि का विस्तार और विकास होता है। शिक्षकों को चाहिये कि स्थानीय प्राकृतिक प्रतिवेश और सामाजिक प्रतिवेश के दर्शनीय स्थानों तथा राज्य और देश के विभिन्न रुचिकर स्थानों के दर्शन का आयोजन यात्राओं द्वारा कराये। ऊपर के वर्गो के लिये शिक्षक साहित्यिक स्थानो—हिन्दी साहित्यकारों की जन्म-भूमि तथा साहित्यिक संस्थाओं का दर्शन कराना चाहिये।

श्यामपट :—शिक्षक के लिये श्यामपट एक उपयोगी साधन है। इसके द्वारा शिक्षक बालकों को कठिन शब्दों का अर्थ, और भावार्थ बता सकता है। वह सांकेतिक शब्द लिख सकता है। प्रारम्भ में पाठ का शीर्षक, पाठ के अन्त में उसका सार और बीच में भी पाठ का भाव यथास्थान और यथासमय लिख कर बता सकता है। वह श्यामपट पर छोटे-छोटे प्रश्न भी लिख कर

बालकों से उत्तर पूछ सकता है। सारांश यह कि पूरे पाठ में श्यामपट शिक्षक का एक बहुमूल्य सहायक है जो उसे पग-पग पर स्पष्ट सकेत और सुझाव देता है। श्यामपट का उपयोग केवल शिक्षक ही नहीं, यथास्थान छात्र भी कर सकते हैं। श्यामपट पर चित्र बना कर दिया जा सकता है।

चार्ट और चित्र :—अक्षर-ज्ञान के विवेचन मे यह स्पष्ट किया जा चुका है कि प्रारम्भिक कक्षाओ मे चार्ट का क्या उपयोग हो सकता है। रंगीन चार्टस बना कर या छपा हुआ चार्ट का भी शिक्षक सफलता पूर्वक उपयोग वर्ग में कर सकते है। उपदेशात्मक वाक्यों, सुभाषितम् कविता, तथा अन्य सूचनाओं के लिए चार्ट का उपयोग वाछनीय है।

चित्र का भी उपयोग उसी तरह भाषा विषयक पाठों के लिये किया जा सकता है। बड़े-बड़े भावों को, क्रियात्मक रचनाओं, घटनाओं और अन्य संकेतों के लिये चित्र एक प्रभावोत्पादक साधन है। कम-से-कम समय में कठिन से कठिन भावों आदि को व्यकत किया जा सकता है। गद्य के पाठ, रचना, व्याकरण, कविता, कहानी के लिये चित्र का उपयोग लाभप्रद है। चित्र आकर्षक, रंगीन, स्पष्ट और रोचक हो तो इनका स्थायी प्रभाव निश्चित है। ऐसे चित्रों का संकलन कई तरह से किया जा सकता है। छपे हुए विशेष प्रकार के भाषा विषयक चित्र बाजारो मे मिलते है, प्रशिक्षण विद्यालयों मे उन्ही के आधार पर चित्र बनाये जाते है, समाचार-पत्र और पत्रिकाओ से भी बालक चित्रों का संकलन कर सकते है। इनसे बालकों की सौन्दर्यानुभूति का प्रशिक्षण होता है। साथ ही, कुछ चित्र ऐसे भी हों जो उपदेशात्मक हों। बालकों को ऐसे चित्रो के संकलन के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये। हिन्दी पत्र पत्रिकाओं से ऐसे चित्र उपलब्ध हो सकते हैं। हिन्दी साहित्यकारों का चित्र, साथ ही, भावात्मक चित्र और प्राकृतिक दृश्य के चित्र बड़े ही प्रभावोत्पादक साधन हैं। अक्षर विन्यास, व्याकरण और रचना के चार्ट काम में लाये जायें।

मानचित्र :—हिन्दी भाषा के कई पाठों में ऐतिहासिक, भौगोलिक आदि ज्ञान लेने के लिए मानचित्र की सहायता लाभप्रद है।

मॉडल (Models) :—मॉडल तीन आयाम (dimension) को व्यक्त करता है। यह गत्ते, प्लाइ वुड (ply wood), मिट्टी या लकड़ी का बनाया जाता है। इसका प्रयोग विषय का स्थूल ज्ञान दिलाने के लिये किया जाता है। किन्डर गार्टेन और मान्टेसरी प्रणाली में इन मॉडलों का बड़ा ही प्रभावोत्पादक उपयोग प्रमाणित हो चुका है। वस्तुतः ये मॉडल ही उनके सिद्धान्त

के प्रारम्भिक साधन है। भाषा विषयक ज्ञान देने में इन माँडलों का महत्त्व-पूर्ण स्थान है। अक्षर ज्ञान, शब्द ज्ञान तथा वस्तु ज्ञान देने के लिये इनका उपयोग किया जाता है। बड़े-बड़े स्थल पदार्थो का ज्ञान देने के लिये इनका उपयोग वांछनीय होगा यथा दामोदर घाटी योजना, कोसी योजना, टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी, ताजमहल आदि।

पत्राचार (Correspondence) :—अभिव्यंजना का एक सर्वसुलभ माध्यम पत्र लेखन भी है। यह एक स्वीकृत विधि है जिसके द्वारा हम अपने मित्रों, गुरुजनों, दूकानदारों, व्यवसायिक या अन्य संस्थाओं आदि के पास अपने विचार, माँग, और आवश्यकताएँ भेज सकते है। अतएव इस विधि का यथावत अभ्यास कराया जाना चाहिये। प्रधान शिक्षक, सहपाठी, स्थानीय संस्थाएँ, डाकघर, स्कूल, रेलवे, प्रखण्ड विकास कार्यालय, के पास पत्राचार के लिये क्रियाशीलनों का आयोजन हो। छुट्टी के लिये, आर्थिक सहायता के लिये, सूचना के लिये, अनुदान के लिये—वर्ग, विद्यालय या अपने गाँव की समस्याओं को व्यक्त करने के लिये इस साधन का उपयोग आवश्यक है।

बाल-सभा :—वर्ग पंचायत, बालसभा और बालकों के मंत्रिमण्डल का नियमित आयोजन होना चाहिये जिसमे बालक अपने विभाग, अपने वर्ग, अपने क्रियाशीलकों की प्रगति और आयोजन प्रस्तुत करें। लैखिक प्रगति पढ़ी जाय या मौखिक अभिव्यक्ति के ही कार्यक्रम अपनाये जायें।

कवि-सम्मेलन :—वर्ग में या विद्यालय में कवि-सम्मेलन का आयोजन किया जाय जिसमें बालक हिन्दी की कविताओं (स्व-रचित या दूसरे कवियों की) का पाठ करें। ऐसे समारोहों पर स्थानीय गणमान्य व्यक्तियों और कवियों को निमंत्रित करना चाहिये।

संग्रह :—छात्रों को लेखों, कहावतों, लोकगीत, सुभाषित आदि के मुद्रित चार्टस या साहित्यकारों के चित्रों को टांगने के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये। हिन्दी की अच्छी रचनाओं का सँग्रह बालकों की साहित्यगत रुचि का विकास करता है। पाण्डुलिपियों का संग्रह भी लाभदायक है।

फ्लैश कार्ड (flash card) :—भाषा-शिक्षण में, हिन्दी वर्णज्ञान देने में फ्लैश कार्ड का उपयोग करना लाभदायक है। अल्प अवधि के लिये कार्ड दिखाया जाता है जिसे छात्र साहचर्य से पहचानने के अभ्यस्त हो जाते हैं। इसका पूरा विवरण अभिव्यक्ति के अध्याय में दिया गया है।

कार्टून (Cartoon) :—कार्टून द्वारा व्यंग्यात्मक या हास्यात्मक भाव व्यक्त होते है। पत्र-पत्रिकाओं में ये बराबर प्रकाशित होते रहते है। शिक्षकों को इन कार्टून का भाव बताना चाहिये और छात्रों को ऐसे व्यंग्यात्मक चित्रों का संकलन करना चाहिये।

मैजिक लैन्टर्न :—फ्लैशकार्ड की तरह मैजिक लैम्प का भी प्रयोग होता है। इसमें छोटी-छोटी तख्ती (slides) पर चित्र या वाक्य, जिसका ज्ञान देना रहता है, लिखे रहते हैं उन्हें लड़कों के सामने घुमाकर दिखाया जाता है। बालक उसे देखकर अपना ज्ञान बढ़ाता है। इसमें शिक्षक को पहले अपना पाठ बताकर ही फलक (slides) दिखाना चाहिये। उन तख्तों की प्रतिच्छाया की भी व्याख्या करनी चाहिये।

ऐपिडायस्कोप (Epidiascope) :—मैजिक लैम्प की तरह यह भी एक साधन हैं जहाँ स्लाइड के बदले में कोई चित्र या पुस्तक के चित्र भी दिखाये जा सकते हैं। इसका प्रयोग बिजली से किया जा सकता है। मैजिक लैम्प और एपिडायस्कोप व्ययसाध्य साधन है और पाश्चात्य देशों में चाहे जितना भी इनका प्रयोग हुआ हो, यहाँ के लिये इन्हें कुछ और प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। सुसम्पन्न संस्थाओं में इसकी व्यवस्था हो सकती है।

चलचित्र—वर्तमान शताब्दी में शिक्षा के क्षेत्र में चलचित्र का व्यापक प्रयोग हो रहा है और इसका प्रचार भी पर्याप्त रूप से हो रहा है। मनोरंजन के लिए इससे बढ़ कर और कोई साधन नहीं है। आँखों से देखी घटनाओं और चित्रों का मस्तिष्क पर स्थायी प्रभाव पड़ता है। चलचित्र के अन्तर्गत वृत्त चित्र (Documentary), समाचार (News reel), व्यंग्य-चित्र (Cartoon) एवं अभिनय आते हैं। ये मूक और बोलते-चलतेचित्र (Talkies) होते हैं। इनके द्वारा दर्शनीय स्थानों का चित्र दिखाया जा सकता है। इनके द्वारा विषय, कथोपकथन, और दृश्य-सम्बन्धी ज्ञान बढ़ता है। लेकिन यह एक व्ययसाध्य साधन है फिर भा आजकल शिक्षा विभाग की प्रेरणा से बहुत से विद्यालयों में इसका प्रदर्शन होता है।

लिंग्वाफोन, ग्रामोफोन, फोनोग्राम—श्रव्य साधन में इनका स्थान महत्वपूर्ण है। पाश्चात्य देशों मे इनका उपयोग बहुतायत से पाया जाता है। इनसे बालकों में उच्चारण, बल, लय, स्वराघात आदि का अभ्यास कराया जा सकता है। विदेशी भाषा की शिक्षा में ध्वनि-प्रशिक्षण के लिये इसका

प्रयोग वांछनीय है। अहिन्दी भाषियों के लिए इसका प्रयोग लाभदायक हो सकता है।

टेप रेकर्डर (Tape Recorder)—टेप रेकर्डर में भाषाविदों की ध्वनियों का रिकार्ड तैयार किया जाता है और लड़कों के सामने उन्हें बजा कर सुनाया जाता है। बालकों की ध्वनियों का भी रिकार्ड तैयार करके इसी तरह सुनाया जा सकता है। इस तरह इनके उपयोग से लड़कों के उच्चारणादि का सुधार और प्रशिक्षण अपेक्षित है। बालक अपनी ध्वनियों को सुनकर उनका भी आवश्यक सुधार करता है। यह एक व्ययसाध्य साधन हैं।

आकाशवाणी (रेडियो)—आकाशवाणी मनोरञ्जन का एक प्रचलित साधन है क्योंकि इसमें संगीत, अभिनय आदि के विविध कार्यक्रमों का प्रदर्शन होता है। शिक्षा के क्षेत्र में भी इसे एक महत्वपूर्ण कर्ण-साधन के रूप में अपनाया गया है। समाचार, अभिनय, भाषण आदि मनोरंजनात्मक एवं शिक्षात्मक कार्यक्रम का आयोजन करके बालकों की भाषा-सम्बन्धी योग्यता तथा सामान्य बुद्धि का विकास किया जा सकता है। आकाशवाणी द्वारा बालकों के लिए कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते हैं। जिन विद्यालयों में आकाशवाणी की व्यवस्था है वहाँ इससे पर्याप्त लाभ उठाया जाता है।

टेलीवीजन (Television)—टेलीवीजन विज्ञान की आधुनिकतम देन हैं, जहाँ कार्यक्रम में भाग लेने वालों का चित्र भी दिखायी पड़ता है। यह एक व्ययसाध्य साधन है और विदेशों में भी इसे शिक्षा के लिए सीमित परिमाण में अपनाया गया है। यह एक प्रभावशाली मनोरंजनात्मक साधन है और भारतवर्ष में इसे अपनाने में अभी काफी विलम्ब है।

यंत्र-सम्बन्धी साधनों के प्रयोग और उपयोग में शिक्षक को यह ध्यान देना चाहिये कि वे साधन ही हैं, साध्य नहीं। अतएव मनोरंजन का उद्देश्य प्रमुख न रहे, वरन इसे शिक्षात्मक उद्देश्य के सहकारी के रूप में प्रस्तुत करना चाहिये। इसके उपयोग का विधिवत प्रशिक्षण शिक्षकों को देना चाहिए, और जिन विद्यालयों में इसकी व्यवस्था की जाय वहाँ इसके गहन प्रशिक्षण का प्रबन्ध करना चाहिये।

सारांश यह है कि शिक्षक उपरोक्त साधनों का प्रयोग भाषा-शिक्षण के क्रम में प्रभावशाली विधि से कर सकता है। श्रव्य-दृश्य साधनों के सम्बन्ध में

कहा गया है कि "वे सर्वोत्तम आकर्षण-प्रेरक हैं। वे प्रवल चालक और प्रोत्साहक हैं। वे किसी भी प्रशिक्षणावस्था में अभिरुचि, रुचि और चेतनत्व को उत्पन्न करते हैं। फलतः वे विद्यार्थियों को शीघ्रता से सीखने, अधिक स्मरण रखने, अधिक निश्चित सूचना प्राप्त करने, और विचारधारा को ग्रहण करने और समझने के योग्य बनाते हैं।"

"The best attention-compellers are Audio-visual aids The are potent starters and motivators. They add zest, interest and vitality to any training situation. As a result they enable students to learn faster, remember larger, gain more acute information and receive and understand delicate concepts and meaning." Preparation & use of Audio visual Aids by Haas and Packer.

अध्याय २१

आधुनिक प्रणालियाँ और हिन्दी-शिक्षण

रूसो (१७१२-१७७८) और पेस्तालाजी (१७४६-१८२७) ने शिक्षा में जिस क्रान्ति का सूत्रपात किया था उसके परिणाम स्वरूप अनेक नये सिद्धांतों और नयी प्रणालियों का प्रणयन प्रारम्भ हुआ। जिस प्रकार राजनैतिक क्षेत्र से कुछ पुरानी और परम्परागत व्यवस्थाओ को उखाड़-फेंकने और नवीन व्यवस्थाओं की स्थापना का प्रबल आन्दोलन चल पड़ा, उसी प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में भी परम्परागत सिद्धान्तो और विधियों का आमूल परिर्वतन किया जाने लगा। बालक, शिक्षक, पाठ्यविषय और पाठन-विधि के सम्बन्ध में अनेक नयी मान्यताये स्थापित की जाने लगी।

आधुनिक शिक्षण के अनुसार शिक्षा मे बालक की रुचि को ही प्रधान सिद्धान्त मानना चाहिए। पाठ्यविषय इतना रोचक हो जो बालक का ध्यान सहज मे ही अपनी ओर आकर्षित कर सके। विषय की वास्तविक उपयोगिता बालक के लिये हो और साथ ही प्रत्यक्ष क्रियाशीलता को ही शिक्षा का मूल सिद्धान्त मानना चाहिए। इधर १५० वर्षो से शिक्षाशास्त्री, मनोविज्ञ और शिक्षक बालक के वास्तविक स्वरूप, रुचि, झुकाव आदि के अध्ययन में अथक परिश्रम करते रहे है। अतएव हमारा ध्यान सहज ही हिन्दी भाषा के शिक्षण में इन आधुनिक प्रणालियों के आधारभूत सिद्धान्तों की ओर चला जाता है। प्रस्तुत अध्याय में आधुनिक-शिक्षण की पांच प्रमुख प्रणालियों का वर्णन करते हुये यह बताने की चेष्टा की जा रही है कि किस प्रकार शिक्षक उन प्रणालियो में हिन्दी भाषा की शिक्षा दे सकता है।

(क) **बालोद्यान** (Kindergarten) **या खेल** (Play way) **विधि :—** फ्रेडरिक विलहेल्म फायबेल (१७८२-१८५२) इस विधि के प्रणेता थे। उन्होंने क्रान्तिकारी रूसो और पेस्तालाजी के दार्शनिक और शैक्षिक विचारों से पूर्णरूप से प्रभावित होते हुए भी, अपने मौलिक विचारों से इस नवीन शिक्षा प्रणाली का प्रणयन किया और शिक्षा-जगत को यह सबसे अनुपम भेंट है।

फ्रायबेल के अनुसार बालक एक पनपते हुये पौध के समान है और शिक्षक क अच्छा माली । अतएव शिक्षक को भी, एक कुशल माली की तरह, पौधे रूपी बालक के उचित विकास के लिये अनुकूल वातावरण का आयोजन करना चाहिये और किसी प्रकार का वाह्य हस्तक्षेप और दबाव नही देना चाहिए। बालक की रुचियो, प्रवृत्तियो, और झुकाव को प्राकृतिक ंग से बढ़ने देना चाहिये । बालक स्वभाव से ही खेल का प्रेमी होता है । अतएव उसकी शिक्षा मे खेल को ही प्रमुख स्थान मिलना चाहिए । बच्चों के क्रीडा-गत क्रियाशीलनों के लिये प्रकृति से बढ़ कर कोई उपयुक्त स्थान नही, अतएव मुक्त और स्वच्छन्द वातावरण के लिये बालोद्यान की व्यवस्था करनी चाहिये । इसलिये इसे बालोद्यान विधि (Kindergarten Method) या खेल-विधि कहते है । फ्रायबेल यह मानते हैं कि सामाजिक पृष्ठभूमि में ही बालक की आत्म-क्रियाशीलता, आत्म-स्पष्टीकरण, आत्मज्ञान और आत्मविश्वास सम्भव है। भाषा-शिक्षक को इन आधारभूत सिद्धांतों को जानना और समझना चाहिए ।

फ्रायबेल ने अध्यापन के लिए तीन साधनों का उपयोग किया था। वे है—गान, उपहार, और कथा-कहानी या अभिनय ।

उहोंने स्वयं लगभग ५० गीतों का निर्देशन किया था और खेल या अन्य क्रियाओं में इनका आवश्यक सहारा माना है । उनका विश्वास है कि गान से बालक की आत्मा और उसके रागात्मक सवेगो का विकास होता है । लयात्मक गानों में बालक को पर्याप्त रूचि मिलती है । अतएव हिन्दी का शिक्षक भी ारम्भ में ऐसे छोटे-छोटे लयात्मक गानों का अभ्यास कराता है। ये गाने बालक के सभी प्रकार के क्रियाशीलनों से सम्बन्ध रखते हैं ।

उपहार(gifts) :—फ्रायबेल ने बालकों के क्रीड़ागत क्रियाशीलनों के लिए कुछ वस्तुएँ तैयार कीं और उन्हें उनको भेंट की । इसीलिए इन्हें उपहार कहते हैं । उपहारों की संख्या २० है और वे कई प्रकार के हैं यथा—रंगीन ऊन के ६ गोलें, लकड़ी के गोले, त्रिघात, बेलनाकार, छोटे-छोटे त्रिघातों का बना एक बड़ा त्रिघात, लकड़ी का छोटा-बड़ा आयत, कपड़ा,कागज,मनके,बांस, तार आदि के छोटे-छोटे सामान जो लड़कों के खेलने के लिए हैं । इन उपहारों द्वारा जो-जो कार्य किया करते हैं वे क्रियाएँ (Occupations) कही जाती हैं । इन उपहारों और माँडलों और उनके बने नये-नये आकारों का नाम जानने के लिए शिक्षक शब्द-ज्ञान करायेंगे—इनसे सम्बद्ध गीतों से भाषा का मौखिक

ज्ञान होता है। गाने से कविता में लय, स्वराघात का अभ्यास प्रारम्भ से ही किया जा सकता है। शुद्ध उच्चारण का अभ्यास होता है, कविताओं की तरफ रुचि बढ़ती है। उपहारों को जोड़ने-तोड़ने से भी शब्द और अक्षर-ज्ञान होता है।

कथा-कहानी—बालकों की कल्पनाशक्ति, रोचकता और मानसिक शक्ति के विकास के लिए अर्द्धवृत्ताकार बैठाकर कहानी कही जाती है। बालोद्यान विधि की यह एक प्रमुख विधि है जिसका पालन शिक्षक हिन्दी भाषा की कहानियों के कहने में कर सकते हैं।

बालोद्यान-विधि से बालक को भाषा की शिक्षा प्रभावपूर्ण विधि से दी जा सकती है। फ्राबेयल के अनुपम ग्रन्थ The Education of the Man (१८२६) से स्पष्ट होता है कि यह विधि ७ वर्ष के बच्चों तक के लिए पूर्णरूप से उपयोगी है। लेकिन भारतवर्ष की वर्तमान परिस्थिति में, आर्थिक उलझनों के कारण किंडर गार्टन की व्यवस्था प्रत्येक विद्यालय के लिए सम्भव नहीं है। फिर भी आदर्श रूप में ही, उसे सुसम्पन्न विद्यालयों में अपनाया जा सकता है।

(ख) मान्तेसरी विधि या स्वशिक्षा (Auto-education) **विधि :—** मेरिया मान्तेसरी (१८७०-६ मई, १९५२) के अनुसार बालक का सर्वांगीण विकास ही शिक्षा का मुख्य लक्ष्य है। उनका विश्वास है कि बालक स्वयं ही अपने जीवन का निर्माण करता है। उनका यह विश्वास विकलांग बालकों के चिकित्सा-क्रम में दृढ़ हुआ जो आज शिक्षा का सर्वमान्य सिद्धान्त के रूप में स्वीकृत हुआ है। उनके अनुसार शिक्षक को केवल एक सहायक के रूप में अनुकूल वातावरण प्रस्तुत करना चाहिए। अधिक-से-अधिक वह मार्ग प्रदर्शक का काम कर सकता है। और इससे अधिक उसे होना भी नहीं चाहिये। प्रवृत्तियां और रुचियां ऐसी हैं जिनमें वह प्रेरणा पाकर काम करता है। उसके लिए वास्तविक सामग्री उसका प्रतिवेश है जिसकी व्यवस्था शिक्षक करता है। अतएव उसकी शिक्षा, स्वयम उसकी स्वचालित क्रियाओं के द्वारा होनी चाहिए। इसीलिये इस विधि को स्वशिक्षा की विधि (Auto-education) कहते हैं। बालक को वयस्क बालक ही समझ कर पूरा प्रेम, सहानुभूति, ममता, धैर्य आदि का प्रदर्शन करना चाहिए और उनका पूरा आदर भी करना चाहिये।

मेरिया बालकों की ज्ञानेन्द्रियों तथा अन्य अवयवों का पर्याप्त पूर्व प्रशिक्षण और अभ्यास आवश्यक समझती हैं। इस कार्यक्रम के लिए उन्होंने शिक्षा - सामग्री का उपयोग बताया है। इनके द्वारा बालकों की आँखो, कानों तथा स्पर्श आदि के अनुभवों को प्रशिक्षित किया जाता है। इन साधनों के साथ बालक स्वेच्छा और स्वछन्दतापूर्वक खेलता है, नियत काम करता है तथा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। वह बार-बार गलतियाँ करके भी सीखता है। तात्पर्य यह है कि वह जो भी कुछ सीखता है वह स्वयम ही सीखता है। मेरिया के साधन, लकड़ी के विभिन्न आकार, गट्टा-पेटी, मीनार बनाने के सामान, लम्बी या चौड़ी सीढ़ी बनाने के सामान, लकड़ी के रंगीन डिब्बे आदि हैं। गत्ते पर या तख्ते पर कोमल और उभरे खुरदरे कागज के अक्षर साट कर स्पर्श-ज्ञान कराया जा सकता है। इसी प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय के प्रशिक्षण के लिये अलग-अलग साधन हैं। ये साधन इतने रुचिकर और उपयोगी हैं कि बालक-क्रियाओं में ही हिन्दी भाषा की शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। इन मॉडलों के देखने-छूने से इनके नाम जानने से शब्द भंडार बढ़ेगा। प्रारम्भ में बालक उभरे हुये अक्षरों के आकार को स्पर्श करके पहचानने लगते हैं, फिर बालू, कागज, गत्ता, लकड़ी, श्यामपट आदि पर हाथ घुमा-घुमा कर अक्षर बना सकते हैं और उन्हें रंग सकते है।

इस पद्धति में, शिक्षक आकार खिचवाते हैं, रेखायें खिचवाते हैं, गत्ते पर चिपकाये अक्षरों को छूकर ज्ञान करा सकते हैं। अक्षरों को परिचित कराके उन्हें पहचान कर निकालने का अभ्यास करा सकते हैं। फिर उच्चारण द्वारा शब्द को पहचान कर निकालने का अभ्यास कराया जा सकता है। पहले साधारण और मात्राविहीन और पीछे मात्रासहित शब्दों का ज्ञान कराया जाता है पढ़ने के लिये आदेशात्मक वाक्य वाले कार्ड का उपयोग दिखाने के बाद फिर उन्हें आदेश पालन का अभ्यास कराया जाता है। अक्षरों और शब्दों को लिखने का अभ्यास कराया जाता है। सबसे अन्त में वाचन का कार्य अभीष्ट है।

मान्तेसरी प्रणाली बालकों के लिये अत्यन्त ही रुचिकर है। क्रियाजनक व्यापार ही शिक्षा का माध्यम बनने के कारण प्रभावपूर्ण और उपयोगी है। ज्ञानेन्द्रियों और कर्णेन्द्रियों का पूरा अभ्यास कराया जाता है। फ्रायबेल के उपहार (Gitfs) के स्थान पर शिक्षा सामग्री (Apparatus) का उपयोग हैं, जो अधिक व्ययसाध्य है। इसका उपयोग आमतौर से सभी

विद्यालयों में नही किया जा सकता। यह प्रणाली १०–१२ वर्ष तक के बालकों के लिए उपयोगी प्रमाणित हो सकती है।

(ग) डालटेन योजना (Dalton Plon)—डालटेन योजना का प्रणयन अमेरिका में हेलेन पार्कहर्स्ट ने किया है। यहाँ का मूल नियम यह है कि बालकों को कार्य की पूरी स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। शिक्षक को केवल मार्ग प्रदर्शक के रूप में रहना चाहिए। बालको को अभिसंधान-कार्य (Contract-assignment) दे दिया जाय, उसके अभीष्ट साधन प्रस्तुत किए जाएँ, और उन्हें कार्य की स्वतंत्रता दे दी जये। बालक प्रयोगशाला में बैठकर एक अन्वेषक की भाँति आपका दिया गया काम करेगा।

इस योजना में शिक्षा देने का साधन—विद्यालय का विषय परक प्रयोगशाला, पर्याप्त सामग्री और बालकों को दिया गया निर्देशित पाठ है।

इस विधि से यदि शिक्षक हिन्दी पढ़ाना चाहें तो उन्हे बालकों को साप्ताहिक, पाक्षिक, या मासिक अभिसंधानकार्य दे देना चाहिए। कार्य का स्पष्ट आदेश होना चाहिए जैसे व्याकरण-कार्य, रचना-कार्य, कविता-कार्य आदि के अन्तर्गत कोई निश्चित शीर्षक। शिक्षक को यह भी पहले से सोच लेना चाहिए कि विद्यार्थियों को अपने क्रियाकलाप के क्रम मे किन समस्याओं का सामना करना पड़ेगा और उनका समाधान भी बता देना चाहिये। तत्पश्चात् विद्यार्थी प्रयोगशाला में बैठकर अपने निर्दिष्ट कार्य के विभिन्न सहायक उपकरणों का सहारा लेता है यथा संबन्धी पुस्तकों का अध्ययन, प्रयोग और अभ्यास आदि। वह स्वाध्याय करता है। अपने स्वाध्याय के आधार पर स्वतंत्र रचना भी करता है। यहीं उसका लैखिक कार्य होता है। अन्त में वर्ग में उस पर विचार-विमर्श होता है। पाठ पूरा कर देने पर प्रत्येक लड़के के लिए एक निश्चित ग्राफ पेपर (Graph Paper) पर—उसका प्राप्ताँक दिखाकर उसकी प्रगति दिखा दी जाती है। यह प्राप्ति-विवरण उसे कार्य करने की प्रेरणा देता है।

डाल्टनविधि १२ वर्ष के ऊपर के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी है। यहां स्वाध्याय पर ही अधिक जोर दिया जाता है। लेकिन लैखिक कार्य के आगे मौखिक कार्य अधूरा रह जाता है। भारतवर्ष मे इस विधि से प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी है। साथ ही साधन का अभाव है, प्रयोगशालाओं, विशेषकर विषयपरक प्रयोगशालाओं की कमी है। संशोधन कार्य के लिए भी पूरा समय नहीं मिलता।

फिर भी ऊँची कक्षाओं मे इस विधि के द्वारा हिन्दी भाषा की शिक्षा प्रदान की जा सकती है।

योजना विधि:—जॉन डिवी (१८५९–१९५२) के अनुसार शिक्षा बालक की भावी अवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नही वरन तत्कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दी जाती है और दी जानी चाहिए योजना विधि की व्याख्या करते हुए स्टीवेन्सन (Stevenson) ने कहा है कि अपनी प्राकृतिक व्यवस्था मे एक समस्यात्मक कार्य का पूरा करना ही योजना है (A project is a problematic act carried to its completion)। यहाँ क्रियाजनक व्यापार द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है और बालकों की क्रियात्मकता में रुचि रहने के कारण क्रीडाभाव से ही सब कुछ प्राप्त होता है। योजना विधि मे चार प्रमुख सोपान है—

(क) समस्या की उत्पत्ति (ख) समस्या के सम्बन्ध में विचार-विमर्श (ग) आवश्यक आयोजन, क्रियाएँ तथा तज्जनित ज्ञान की प्राप्ति और (घ) समस्या समाधान, उसका मूल्यांकन और सफलता पर आनन्दानुभव। यहाँ किसी प्रकार के विधिवत शिक्षण (Formal teaching) का स्थान नहीं है।

इस विधि के अनुसार हिन्दी भाषा की शिक्षा इस प्रकार दी जा सकती है। वर्ग के सामने विद्यालय दिवस मनाने की समस्या है। इसके लिए वर्ग में सामूहिक विचार विमर्श होता है। कार्य का आयोजन किया जाता है और वर्ग के सभी छात्र आपस मे कार्य-भार बाँट लेते हैं। इस प्रकार के सामूहिक विमर्श से बालकों की मौखिक अभिव्यंजना का अभ्यास पड़ता है।

तदनन्तर छात्र टोलियों में बँटकर समारोह के मनाने के लिए सम्बद्ध साहित्य—पुस्तक, पत्रिका आदि का अध्ययन करते हैं यह स्वाध्याय से या सस्वर वाचन से भी हो सकता है। इस अध्ययन से उन्हें विदित होगा कि समारोह के आयोजन मे उन्हें क्या करना चाहिये। कौन-कौन से कार्य-क्रम रखे जायेगे, सभापति के लिए किन्हें बुलाया जायगा, बाहर के किन-किन गण-मान्य व्यक्तियों को बुलाया जायगा इस सम्बन्ध में गोष्ठी बैठती है और कार्य-भार बाँटा जाता है, जैसे स्वागतभाषण तैयार करना और पढ़ना, कविता पाठ के लिए कविता चुनना, अभिनन्दन और उसके लिए पात्र चुनना, संगीत के लिए पात्र चुनना, साजसज्जा की व्यवस्था का भार, समारोह में सजावट आदि, धन्यवाद ज्ञापन के शब्दो और धन्यवाद देने का उचित प्रशिक्षण। इस प्रकार के अनेक- कार्यशीलनों को विद्यार्थी आपस में बाँट लेंगे, उनका

अभ्यास करेंगे। और उन्हें अपने दैनिक पाठ, दैनिक चर्य्या में लिखना पड़ता है। इस प्रकार स्वाध्याय, मौखिक अभिव्यक्ति और लैखिक कार्य करना पड़ता है। यह क्रम तब तक चलता रहता है जब तक समारोह समाप्त नहीं होता। इस प्रकार अपने समारोह मे प्रारम्भ से अन्त तक—आयोजन, कार्य-सम्पादन, सफलता प्राप्ति क्रियाशीलता के कारण उन्हें अपने आनन्द का अनुभव होता है। हिन्दी भाषा का शिक्षक इस पूरी योजना के क्रम में मौखिक, लैखिक, व्याकरण, रचना, कविता या अन्य पाठो का शिक्षण कार्य के द्वारा ही दे देने में सफल होता है। योजना वर्ग के अनुसार छोटी और बड़ी भी हो सकती हैं।

बुनियादी शिक्षा—बुनियादी शिक्षा जीवन की, जीवन के द्वारा और जीवन के लिये शिक्षा है; वह किसी भावी जीवन की तैयारी नही है। बुनियादी शिक्षा स्वाश्रयी शिक्षा है जो बालक को अपनी आवश्यकताओं—भौतिक और मानसिक आदि—को पूरी करने के योग्य बनाती है। बुनियादी शिक्षा किसी काम के माध्यम से ही ज्ञान प्राप्त कराती है, कोरी किताबी-ज्ञान से इसका कोई सम्बन्ध नहीं। अतएव बुनियादी शिक्षा में दस्तकारी, बालक का प्राकृतिक और सामाजिक प्रतिवेश तथा अनेक कार्यशीलनों के माध्यम से शिक्षा देने का मूल सिद्धान्त स्वीकृत है।

बुनियादी शिक्षा का मूलाधार उसकी समवाय पद्धति है। जिसके द्वारा "किसा भी उद्योग से अथवा जीवन की किसी भी क्रिया में या घटना के द्वारा या मनुष्य के सामाजिक तथा प्राकृतिक वातावरण के द्वारा बालकों को शिक्षा दी जाय।"* अतएव यहाँ परम्परागत शिक्षा की तरह कोई भी विषय अलग से पढ़ाया नही जाता। जिस प्रकार प्रत्यक्ष जीवन में, हमारे अनेक क्रियाकलापों और तज्जनित ज्ञान मे ऐसा विषयगत विभेद नही है एवं उनका एक सम्मिलित अनुभव प्राप्त होता है, उसी प्रकार विद्यालय मे भी कार्यशीलन एवं अनुभव आदि से बालक का विकास होता है। अतएव बुनियादी शिक्षा प्रणाली में हिन्दी भाषा की शिक्षा एक अलग विषय के रूप में न दी जा कर उपर की कही गयी विधियों द्वारा ही दी जाती हैं। हिन्दी भाषी क्षत्रों में हिन्दी भाषा माध्यम के रूप में ही स्वीकृत है जो बुनियादी शिक्षा का मूल सिद्धान्त ही है (मातृभाषा द्वारा शिक्षा)। अहिन्दी क्षेत्रों में भी यह उन्हीं क्रियाशीलनों, तज्जनित अनुभवों और ज्ञान की विधि से ही पढ़ायी जायगी।

---

* बुनियादी शिक्षा के अर्थ एवं सिद्धान्त, प्रेमनाथ सहाय. पृष्ठ १२०--१२१

कर्म द्वारा शिक्षा ग्रहण का सिद्धान्त हमें कार्य के सभी आवश्यक अंगों और अवस्थाओं के अध्ययन की ओर उत्प्रेरित करता है जिससे प्रस्तुत अध्याय के मूलोद्देश्य में बहुत बड़ी सहायता मिलेगी। कर्म द्वारा ज्ञान प्राप्ति की मुख्य अवस्थायें इस प्रकार हैं—(क) योजना बनाना (ख) योजना के अनुसार कार्य सम्पादन (ग) फल प्राप्ति का मूल्यांकन और (घ) तज्जनित अनुभव का लेखा-जोखा रखना। हिन्दी भाषा के शिक्षकों को इन चार अवस्थाओं का सम्यक अध्ययन कर लेना चाहिये।

बुनियादी शिक्षालय में योजना का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह योजना समूचे विद्यालय की बनती है, एक-एक वर्ग की बनती है। सामूहिक योजना बनती है और व्यक्तिगत—प्रत्येक छात्र और शिक्षक—की बनती है। प्रत्येक कार्य के लिये बनायी जाती है और उन कार्यों के पारस्परिक सम्बन्ध को ध्यान में रखते हुए उनमें एक अभिन्न सम्बन्ध भी जोड़ा जाता है।

मान लीजिये वर्ग के लिये वस्त्र सम्बन्धी स्वावलम्बन के लिये योजना तैयार करनी है। यह योजना वर्ष भर की बनेगी, फिर उसे माह में बाँट दी जायगी और उसी तरह प्रत्येक सप्ताह के लिए भी। यह लक्ष्य भी स्थिर कर लिया जायगा कि प्रति छात्र को कितने कपड़े की आवश्यकता होगी और इस प्रकार वर्ग को कितने गज कपड़े की जरुरत होगी। इसके साथ ही प्रति बालक को कितना सूत तैयार करना होगा जिसमें कपड़े का लक्ष्य पूरा किया जा सकेगा। कितनी रूई की जरूरत होगी आदि। सारांश यह कि वर्ग और बालक के लक्ष्य को स्थिर करने में उसकी आयु, आवश्यकता और साधनों की उपलब्धि पर विचार किया जायगा। योजना तैयार करने में विचार-विमर्श की आवश्यकता होगी। इससे बालकों की मौखिक अभिव्यक्ति का विकास होगा। विचार-विमर्श का सारांश प्रत्येक बालक अपनी दैनिक चर्य्या में लिपिबद्ध करेगा। यह उनकी अपनी भाषा और शैली में लिपिबद्ध होगा इसलिये लेखन-कार्य होगा और लैखिक अभिव्यक्ति का भी प्रशिक्षण मिलेगा। बच्चे सुन्दर-सुन्दर अक्षरों में अपनी दैनिक चर्य्या लिखेंगे। शिक्षक इनकी चर्य्या को पढ़वा कर या देख कर ही शुद्ध करेंगे और इस प्रकार रचना सम्बन्धी क्रियाशीलनों का अभ्यास पड़ेगा। शुद्ध-शुद्ध वाक्यों में अपने विचारों, अनुभवों, और सुझावों को व्यक्त करने का इससे सुन्दर अवसर और माध्यम कहां मिलेगा।

योजना तैयार होने पर प्रत्येक लड़के का निर्दिष्ट लक्ष्य उसे विदित हो जायगा और यह उसे पूरा करने के लिए प्रतिदिन कताई-कार्य करेगा। सूत का

लेखा-जोखा रखेगा । बालकों के कार्य की प्रगति की जाँच के लिए साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक और अन्त में वार्षिक जांच होगी । इन जाँच के कार्यक्रम में उसे लेखन और मौखिक कार्यों का अभ्यास करना पड़ेगा । इसके अतिरिक्त बालक कताई-बुनाई के सामान्य सिद्धान्त, विधियों और लक्ष्य-निर्धारण सम्बन्धी साहित्य का अध्ययन करेगा, अतएव उसका स्वाध्याय उसकी साहित्यगत योग्यता को और बढ़ायेगा । वर्ष के अन्त मे वर्ग का मूल्यांकन किया जायगा, और वर्ग का वार्षिक प्रतिवेदन तैयार किया जायगा । कताई सम्बन्धी लेखा-जोखा तैयार किया जायगा ।

उद्योग के क्रियाशीलन के अतिरिक्त भी वर्ग मे दैनिक समाचार वाचन, विद्यालय की पत्रिका का सम्पादन, साहित्यिक पर्वों के मनाने का आयोजन, सांस्कृतिक बैठकों का आयोजन और उसके लिए कार्यक्रम का तैयार करना, पुस्तकालय से हिन्दी साहित्य की अच्छी-अच्छी पुस्तकों का अध्ययन आदि क्रियाशीलनों में हिन्दी भाषा का शिक्षण सफलतापूर्वक दिया जा सकता है । बालक घरेलू वातावरण की घटनाओं, विद्यालय के वातावरण (सफाई, व्यायाम, सूत्रयज्ञ, दस्तकारी), मेला, बाजार आदि सार्वजनिक स्थानो का दर्शन, प्रकृति का वर्णन, आदि से भी हिन्दी भाषा का शिक्षक शिक्षा दे सकता है । भाषण, बातचीत, संगीत, अभिनय, चित्रों का बनाना, कहानियों का सुनना-कहना, आदि एसे क्रियाशीलन हैं जिन्हें अपना कर सफल शिक्षण की व्यवस्था की जा सकती है । इस प्रकार मनुष्य के आत्म-विकास के लिये अनेक साधन—प्राकृतिक और सामाजिक—उपलब्ध हैं जिनका उपयोग्य करके शिक्षा की उत्तम व्यवस्था की जा सकती है । विद्यालय के अनेक उत्सव ऐसे है जहाँ हिन्दा भाषा की शिक्षा के अनेक कार्यक्रम अपनाये जा सकते हैं ।

इस प्रकार बुनियादी शिक्षण प्रणाली मे हिन्दी भाषा पृथक विषय की तरह पढ़ायी नही जाती । उसका वास्तविक आधार बालक के दैनिक क्रियाशीलन और अनुभूतियां ही हैं । शिक्षक को केवल इतना भर चाहिए कि वह एक ओर तो इन विषयों का सम्बन्ध वालक के जीवन से जोड़े और दूसरी ओर उन सभी पाठ्य विषयों का पारस्परिक सम्बन्ध और समन्वय उपस्थित करादे । शिक्षक का वास्तविक उद्देश्य यह होना चाहिए कि बालक अपने भावों, अनुभूतियों और संवेगों को स्पष्ट रूप से बोलकर, लिखकर, औरों के सामने प्रस्तुत करने में सफल हो सके ।

अध्याय २२

पाठ-योजना

किसी भी कार्य को सफलता के साथ पूरा करने के लिए जो क्रम निर्धारित किया जाता है उसे योजना कहते है। देश की सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक अर्थात् सर्वाङ्गीण और सम्यक विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाओं के आधार पर कार्य किया जा रहा है। विद्यालय और वर्ग की प्रगति के ।लये, विषयों का क्रमबद्ध ज्ञान देने के लिए योजना की महत्वपूर्ण आवश्यकता है। अतएव विद्यालय के सभी कार्यशीलनों में योजना एक ठोस आधारशिला प्रस्तुत करती है।

शिक्षक को अपने विषय की योजना बना लेने से कार्य सम्पादन में सहायता मिलती है। समय, विषय, और बालको के मानसिक स्तर के सम्यक् ज्ञान के आधार पर योजना तैयार कर लेने से काम करने में सुविधा होती है, पग-पग पर मार्ग-दर्शन होता है, काम करने में क्रमबद्धता आती है और काम का अन्दाज मालूम होता जाता है।" अतएव सभी शिक्षको का यह कर्त्तव्य है कि अपने निर्दिष्ट कार्य की पूर्व योजना तैयार कर लें।

योजना के प्रकार :—विद्यालय में अध्ययन क्रम में मुख्यत: तीन प्रकार की योजना बनायी जाती है। (१) वार्षिक योजना (२) मासिक योजना। (३) दैनिक योजना। इसके अतिरिक्त अर्द्ध वार्षिक, पाक्षिक और साप्ताहिक योजना तैयार करने का भी परम्परा है।

वार्षिक योजना :—वर्ग के लिये पूरे वर्ष भर के लिए यह योजना बनायी जाती है। यह प्रत्येक विषय के लिए अलग-अलग भी हो सकता है या बुनियादी विद्यालयों की तरह समवायी पद्धति पर सभी विषयों की सम्मिलित योजना भी बनायी जा सकती है। वार्षिक योजना बनाने के क्रम में शिक्षक को यह ज्ञान हो जाता है कि वर्ष में काम के कितने दिन होंगे, काम का क्या लक्ष्य रखा जा सकता है, ि याशीलनों और साधनों का क्या स्थान होगा, काम मे कितना ज्ञान प्राप्त हो सकता है, कौन-सा अवसर

उपयुक्त होगा, काम करने में किन-किन बातों पर सतर्क रहना वांछनीय होगा। बुनियादी विद्यालयों में, जहाँ सम्पूर्ण ज्ञान का वास्तविक आधार बालक का सामाजिक, प्राकृतिक और औद्योगिक प्रतिवेश है—वहाँ शिक्षक को कार्यशीलनों की योजना बनानी होगी, उन क्रियाशीलनों के आयोजन में क्या खर्च पड़ेगा यह सोचना होगा और उसके लिये यह भी सोचना होगा कि किन-किन लोगों से सहायता लेनी पड़ेगी।

मासिक योजना :—वार्षिक योजना को माहवारी इकाइयों में बाँट दिया जाता है। मूल सिद्धान्त पहले तरह का ही होता है। यहाँ भी महीने भर के काम करने वाले दिनों का ज्ञान, सामग्री साधन की उपलब्धि, अवसर की खोज आदि है। मासिक योजना से सबसे बड़ा लाभ यह है कि यहाँ कार्य का लक्ष्य, सम्पादन का क्रम, कठिनाइयों की जानकारी आदि अधिक स्पष्ट और ठोस होता है।

दैनिक योजना :—उन्हीं नियमों पर दैनिक योजना बनायी जाती है। बुनियादी विद्यालय मे प्रत्येक दिन के कार्य-इकाई की योजना, तज्जनित समवायी ज्ञान का लक्ष्य, आवश्यक सामग्री की उपलब्धि आदि का ख्याल रख कर शिक्षक पूरे दिन की योजना बनाता है। यह योजना प्रातः से लेकर पुनः प्रातः तक, अर्थात् २४ घन्टे की होती है। आवासीय व्यवस्था नहीं होने पर भी ऐसी योजना विद्यालय के पूरे दैनिक कार्यक्रम के लिए एक ही जगह बनायी जाती है। प्रत्येक वर्ग के लिए, सामाजिक, प्राकृतिक या उद्योग सम्बन्धी कार्यशीलनों का आयोजन तथा तज्जनित समवायी ज्ञान दिखाते हुए ऐसी योजना बनायी जाती है। परम्परागत विद्यालयों में पृथक विषय के लिये पृथक योजना बनती है। क्योंकि प्रत्येक विषय के लिए पृथक समय निश्चित किया जाता है। इस दैनिक योजना को पाठ-टीका कहते हैं। वस्तुतः हर्बार्ट की पंचपदी योजना के आधार पर ही दैनिक योजना बनायी जाती है, चाहे वह बुनियादी विद्यालय के लिये हो या परम्परागत के लिये।

पाठ-टीका:—पाठ-टीका बनाने से यह लाभ होता है कि शिक्षक के सामने उसका उस दिन का स्पष्ट लक्ष्य सामने रहता है टीका बनाने में वह बालकों की मानसिक योग्यता, विषय का अपेक्षित निर्दिष्ट समय तथा तत्सम्बन्धी साधनों का ज्ञान रखते हुए उनका इस प्रकार सामंजस्य स्थापित करता है कि पाठ सफल होने में उसे किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती। उसके कार्य में दक्षता आती है और उसका आत्मविश्वास बढ़ता है। वह उपयोगी से

उपयोगी साधनों को जुटाने की क्षमता प्राप्त करता है, साथ ही उत्तम से उत्तम विधि को प्रयोग में लाता है। अतएव यह आवश्यक है कि हिन्दी भाषा के उत्तम शिक्षण के लिये शिक्षक को वार्षिक, मासिक तथा दैनिक पाठ योजना का पूरा ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। प्रशिक्षण संस्थाओं में पाठ-टीका तैयार कराने के लिए पूरा अभ्यास कराया जाना चाहिए तथा निरीक्षण के समय उनको सविस्तार जाँच होनी चाहिए।

पाठ टीका की तैयारी :—पाठ टीका को तैयार करने में शिक्षक को निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए।

(क) स्थान (विद्यालय का नाम), वर्ग, तिथि और समय का विवरण दिया जाना चाहिए।

(ख) आयोजित क्रियाशीलनों के समय का विभाजन दिखाना चाहिए, अर्थात् यह बताना चाहिए कि किस काम के लिए कितना समय दिया जायगा।

(ग) क्रियाशीलनों का विवरण अर्थात् शिक्षक को यह बताना चाहिए कि वह किस प्रकार की और किन-किन क्रियाशीलनों का आयोजन कर रहा है।

(घ) समवायी विषयों का विवरण—अर्थात् जिन-जिन विषयों का ज्ञान अभीष्ट है उसका सविस्तार वर्णन करना चाहिए।

(च) विधि का विवरण—वास्तव में पाठ टीका का यह मूल विषय है जहाँ यह दिया जाना चाहिए कि निर्दिष्ट समवायी ज्ञान किस प्रकार दिलाया जायगा। उस विधि का विवरण देना चाहिए।

(छ) वार्तालाप और सिंहावलोकन का विवरण:—इसके अन्तर्गत शिक्षक यह बतायेगा कि पाठ की वह पुनरावृत्ति किस प्रकार करेगा, अर्थात् प्राप्त ज्ञान पर पुनः एक बार विचार-विमर्श होगा। तथा यदि आवश्यक हो तो घर के लिये भी काम दिया जायगा।

(ज) श्यामपट और सामग्री का विवरण:—पाठ टीका तैयार करने में शिक्षक को यह भी विवरण देना चाहिए कि वह अपने पाठ की सफलता के लिए किस प्रकार के साधन को जुटायेगा और श्यामपट का कितना उपयोग करेगा।

यहाँ उन शीर्षकों का संकेत कर दिया जाता है जिन्हें पाठ टीका तैयार करने में ध्यान रखा जायगा।

संस्था वर्ग
विषय पाठ
तिथि समय
सामान्य उद्देश्य
विशेष उद्देश्य
सामग्री
पूर्व ज्ञान का अनुमान
भूमिका
उद्देश्य कथन
पाठप्रदान
पाठ पुनरावृत्ति
श्यामपट कार्य
गृह-कार्य

जहाँ पाठ का मूलाधार क्रियाशीलनों का आयोजन है, वहाँ पाठ-योजना का रूप इस प्रकार होगा :—

संस्था वर्ग
तिथि समय
पाठन सामग्री
सोद्देश्य संयोजन
संयोजन की व्याख्या
सामान्य उद्देश्य
विशेष उद्देश्य
समवायी ज्ञान
विधि-विवरण
(i) प्रश्नों के नमूने
(ii) श्यामपट कार्य
(iii) अवलोकन कार्य
पुनरावृत्ति के प्रश्न
गृह-कार्य

यहाँ विद्यार्थियों के संकेत के लिये पाठ टीका के कुछ नमूने दिये जाते है ।

विद्यालय— वर्ग—३ (तीसरा)

तिथि—५-५-६१.

समय—३० मिनट

पाठन-सामग्री—महात्मा बुद्ध के जीवन के प्रभावोत्पादक चित्रादि ।

सोद्देश्य संयोजन—सामाजिक प्रतिवेश (बुद्ध जयन्ती का स्कूल में आयोजन) ।

संयोजन की व्याख्या—हर वर्ष विद्यालय में बच्चे महापुरुषों की जयन्तिय मनाया करते है । वे महापुरुष है—गाधी, महावीर, कुँवर सिंह आदि । २९ अप्राल को बुद्ध जयन्ती के अवसर पर विद्यालय में तथा अन्यत्र उनकी जयन्ती मनाई गई । नाटक, कविता, गाना, भाषण के क्रियाशीलनों का आयोजन हुआ है । इसका पूर्व ज्ञान बच्चो को है । इसी के आधार पर बुद्ध की जीवनी का परिचय दिया जायगा ।

वर्ग व्यवस्था—बच्चों की छोटाई-बड़ाई का ध्यान रखते हुए पीछे में बड़े को क्रम से बैठायेंगे । उन्हे आस-पास की जगह साफ कर लेने कहेंगे । बच्चे तथा बच्चियाँ अपनी-अपनी पंक्ति अलग बनायेंगी । उनके पढ़ने-लिखने के सामान यथास्थान रहेगे ।

सामान्य उद्देश्य—कहानी के माध्यम से भगवान बुद्ध का परिचय देना ।

विशिष्ट उद्देश्य—बच्चों मे सत्य, अहिसा और परोपकार की प्रेरणा तथा भावना जगाना । भाषा से प्रेम आदि ।

समवायी-ज्ञान—मातृभाषा (बुद्ध जयन्ती)

यथा—पुराने जमाने में शुद्धोदन नाम के राजा थे । उनके एक पुत्र था । राजा का पुत्र राजकुमार सिद्धार्थ था । सिद्धार्थ दूसरे के दु:ख को देखकर दु:खी हो जाते थे । बचपन से ही दयालु थे । एक दिन की बात है कि मन बहलाने के लिए बाहर निकले । घूमते-घूमते अपनी फुलवारी में पहुँचे । अचानक उनकी दृष्टि एक तीर से घायल लहूलुहान हस पर पड़ी । तुरत उठाया, गले से लगा लिया । निकट के तालाब से पानी लाकर खून धोया । बेहोश हंस की वन्द आँखे खुल गई । सिद्धार्थ उसे लिये घर की ओर मुड़ गये । रास्ते में तुरत ही चचेरे भाई देवदत्त से भेंट हो गयी । देवदत्त ने अपने तीर से गिराये हंस को लेने का दावा किया । राजकुमार ने नहीं दिया । दोनों राजा के पास गये । अपनी-अपनी बातें कही । राजा ने न्याय में कहा—मारने

वाला से बचाने वाला का हंस के ऊपर विशेष हक है। देवदत्त की हार हुई और सिद्धार्थ की जीत। सिद्धार्थ ही आगे भगवान बुद्ध बने।

पाठन-विधि—बच्चे वर्ग में भगवान बुद्ध की कहानी सुनेंगे और प्रश्नोत्तर-प्रणाली द्वारा उपर्युक्त ज्ञान प्राप्त करेंगे।

प्रश्नों के नमूने—२६ अप्रील को हमलोगों ने किनकी जयन्ती मनाई थी? भगवान बुद्ध के बचपन का नाम क्या था? उनका स्वभाव कैसा था? वे घूमते-घूमते कहाँ पहुँचे? फुलवारी मे क्या देखा? हंस किस हालत मे पड़ा था? उसके लिए उन्होंने क्या किया? घर लौटते समय किससे भेंट हुई? देवदत्त से कौन-सी बातें हुई? वे दोनों कहाँ गये? राजा ने क्या न्याय किया? जीत किसकी हुई? तुम किसका पक्ष लोगे?

श्यामपट का कार्य—कठिन शब्दों को लिखकर उनके अर्थ बतायेंगे, जैसे-भेंट होना = मुलाकात होना। निकट = पास, नजदीक; विशेष = अधिक। जहाँ-तहाँ बीच-बीच में सीख भरी बातें श्यामपट पर लिखते जायेंगे।

अवलोकन-कार्य—शिक्षक सम्पूर्ण वर्ग मे घूम-घूमकर बच्चों की कठिनाई को दूर करेंगे।

पुनरावृति के प्रश्न—भगवान बुद्ध का हृदय कैसा था? धायल हंस को उन्होंने कैसे बचाया? देवदत्त हंस को क्यों नहीं पा सका? जीत किसकी हुई? अब तक विद्यालय में हमलोगों ने कौन-कौन सी जयन्तियाँ मनायीं?

गृह कार्य—बच्चे दूसरे दिन अपनी मातृभाषा की कापी पर इसे लिख कर लायेंगे।

विद्यालय— **वर्ग**—पाँचवा

तिथि—५-५-६१

समय—३५ मिनट

पाठन-सामग्री—ग्लोव, मानचित्र और धरती के विभिन्न दृश्यादि।

सोद्देश्य संयोजन—प्राकृतिक प्रतिवेश (बागवानी का कार्य)

संयोजन की व्याख्या—बच्चे प्रतिदिन बागवानी करते है। उनकी क्यारियों के पौधे जल और सूर्य की रोशनी पाकर लहलहाते हैं। अधिक गर्मी के कारण पौधे सूख जाते हैं। क्यारियों में दिया गया जल वाष्प बनकर उड़ जाता है। प्राकृतिक निरीक्षण के इस आधार पर पृथ्वी की पुरानी कथा कल्पता जागृत करके बतायी जायगी।

वर्ग-व्यवस्था—बच्चों को क्रमानुसार बैठाना और उनके पास की जगह पर सफाई देखना ।

सामान्य उद्देश्य—धरती की कहानी से कल्पना करने की जिज्ञासा उत्पन्न करना ।

विशिष्ट उद्देश्य—ग्लोब को धरती बताते हुए इसकी प्राचीनता की ओर बच्चों का ध्यान ले जाना तथा कल्पना और तर्क को बढ़ाना ।

समवायी ज्ञान—मातृभाषा—'बुढ़िया धरती' शीर्षक निबन्ध का ज्ञान देना । यथा—जिस धरती पर हमलोग रहते है वह इसी ग्लोव की तरह गोल है । यह बहुत पुरानी है । पुरानी धरती, आज जैसी देखते हैं, नहीं थी । वैज्ञानिकों का कहना है कि यह आग का गोला था । न आज जैसी हवा इस पर बहती थी, न पानी था । लाखों साल ऐसी हालत रही । फिर बादल के रूप में ठोस बन गई । बादल पानी के रूप में बरसा किन्तु सूर्य का प्रकाश अब भी न मिल सका । पानी पडने से धरती उबड़-खाबड़ हो गई । इस प्रकार कहीं गडढे और समुद्र बने । ऊँचे स्थान को हम रहने के लिए अपनाये । सूर्य की रोशनी, बादल के सभी टुकड़ें के बरस जाने पर, पृथ्वी पर आयी । तभी से सूर्य सुबह-सुबह धरती को अपने प्रकाश से रंग देता है ।

पा न-विधि—प्रश्नोत्तर प्रणाली ।

प्रश्नों के नमूने—धरती का आकार कैसा है ? धरती कबसे है ? यह पुराने जमाने में कैसी थी ? वैज्ञानिकों के अनुसार यह कैसी थी ? कैसी हवा बहती थी ? धरती की कायापलट कैसे-कैसे हुई ? जल कैसे बना ? सूर्य की रोशनी कैसे मिली ?

श्यामपट का कार्य—शिक्षक श्यामपट पर जिज्ञासा भरी बातों का उत्तर लिखते जायेंगे ।

अवलोकन कार्य—शिक्षक का ध्यान प्रत्येक बालक पर रहेगा । सभी की कापियों पर यह निबन्ध-खण्ड देखा जायगा ।

पुनरावृति के प्रश्न—जिस जमीन पर हमलोग रहते हैं उस जमीन को क्या कहते हैं ? पुरानी धरती और आज की धरती में क्या अन्तर है ? वैज्ञानिक इसके विषय में क्या कहते है ? हवा-पानी कैसा था ? सूर्य का प्रकाश कैसे मिला ?

गृह-कार्य—बुढ़िया धरती के बारे में जो कुछ बताया गया है उसे बच्चे अपनी-अपनी कापियों पर सुन्दर-साफ अक्षरों में लिखकर लायेंगे ।

———

विद्यालय—

वर्ग—नवम्

विषय—हिन्दी व्याकरण

पाठ—**समास के भेद**

तिथि समय

उद्देश्य—(क) सामान्य–हिन्दी व्याकरण के प्रति छात्रों में अभिरुचि उत्पन्न करना।

(ख) विशिष्ट—समास के भेदा का ज्ञान कराना।

शिक्षण-उपादान–चित्र एवं चार्ट :—

१–राम वन गमन का चित्र
२–काली एवं लाल मिर्चें
३–एक पथिक का चित्र
४–पंचवटी का चित्र
५–समास वृक्ष
६–बोध-गम्यता परीक्षा-पत्रक

सोपान	विषय-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्याम-पट्ट कार्य
(क) प्रस्तावना		वर्ग में प्रवेश करने के अनन्तर छात्रों की उपवेशनादिक व्यवस्था पर समुचित ध्यान देने के पश्चात् उनका ध्यान पाठ की ओर केन्द्रित करने के लिए 'समस्त' तथा 'असमस्त' शब्दों का पारस्परिक अन्तर उन्ही के द्वारा स्पष्ट करवाते हुए उनके पूर्वार्जित ज्ञान के आधार पर प्रस्तुत पाठ में प्रवेश करने का प्रयास किया जाएगा। समस्त तथा असमस्त दोनों प्रकार के शब्दों को कृष्ण-पट्ट पर लिखकर छात्रों से निम्नांकित प्रश्न करूंगा। शि०–अयोध्या का नरेश और अयोध्या-नरेश का अर्थ बतलाओ। छा०–दानों का अर्थ अयोध्या का राजा है।	१. अयोध्या का नरेश–असमस्त अयोध्या-नरेश–समस्त २. सुख और दुःख –असमस्त सुख-दुख–समस्त ३. राजा का पुरुष –असमस्त राजपुरुष-समस्त

सोपान	विषय-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्याम-पट्ट कार्य
		शि०—एक अर्थ होने पर भी दोनों शब्दो मे क्या अन्तर है ?	
		छा०—प्रथम उदाहरण मे अयोध्या और नरेश ये दोनों पृथक्-पृथक् है ।	
		द्वितीय उदाहरण मे अयोध्या और नरेश के बीच की विभक्ति हट गई है और एक पद बन गया है ।	
		शि०-क्या इन दोनो शब्दों मे परस्पर कोई सम्बन्ध है ?	
		छा०—अयोध्या का नरेश से और नरेश का अयोध्या से सम्बन्ध है ।	
		नरेश किसका ? अयोध्या का । अयोध्या के कौन ? नरेश ।	
		इस प्रकार दोनों पद परस्पर संबद्ध है । इसी प्रकार अन्य दो युगलों में भी पद परस्पर संबद्ध है ।	
		तत्पश्चात् शिक्षक बतला देगा कि इन उदाहरणो मे शब्दों में परस्पर सम्बन्ध होने के कारण मेल है । जब दो परस्पर सम्बन्धवाले पद आपस में इस प्रकार मिलते हैं कि पूर्व पद साधारणतया अपनी विभक्ति छोड़ देता है तो उसे समास कहते हैं ।	
(ख) उद्देश्य-कथन	समास के भेद	अतः सम्प्रति हमलोग देखें कि समास के कितने भेद होते हैं ?	
प्रस्तुतीकरण	प्रथम अन्विति	राम वन-गमन प्रसंग का चित्र प्रस्तुत करते हुए निम्नांकित प्रश्नोत्तरी द्वारा वार्त्तालाप का क्रम जारी रखा जायगा—	

सोपान	विषय-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्याम-पट्ट कार्य
		शि०—(चित्र की ओर संकेत कर) यह चित्र किसका है ? छा०—यह राम का चित्र है। शि०—राम कहाँ जा रहे है ? छा०—राम वन जा रहे है । शि०—यह किस स्थान का दृश्य है ? छा०—यह अयोध्या का दृश्य है । शि०—(दशरथ के प्रति संकेत कर) यह कौन है ? छा०—दशरथ । शि०—अयोध्या-नरेश राजा दशरथ किसके वियोग में मूर्छित है ? छा०—राम के वियोग में मूर्छित है । तत्पश्चात् शिक्षक छात्रों का ध्यान चित्र की ओर आकृष्ट कर पूछेगा कि इस चित्र में आप अयोध्या को देखते हैं कि नरेश को । छा०—नरेश को देखते है ? शि०—आप यहाँ अयोध्या के नरेश को देखते है कि अफीका, इङ्गलैड के नरेश को ? छा०—अयोध्या के नरेश को देखते हैं । तत्पश्चात् शिक्षक यहाँ बतला देगा कि 'अयोध्या' 'नरेश' के अर्थ को सीमित करता है । तदनन्तर शिक्षक छात्रों से पूछेगा कि यहाँ अयोध्या की 'प्रधानता' है या 'नरेश' का ? छा०—'नरेश' की प्रधानता है ।	

सोपान	विषय-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्याम-पट्ट कार्य
	तत्पुरुष समास	तत्पश्चात् छात्रों की सहायता से तत्पुरुष समास का लक्षण एवं उदाहरण कृष्ण-पट्ट पर अंकित किया जाएगा। तत्पुरुष के लक्षणों को कृष्ण-पट्ट पर अंकित करने के पश्चात् छात्रों को काला और लाल मिर्च दिखाते हुए शिक्षक पूछेगा कि यह क्या है ? शि०–आप लाल को देखते है या मिर्च को ? छा०–मिर्च को देखते है। तत्पश्चात् शिक्षक बतायेगा कि आप जो मिर्च देखते हैं उसका गुण उसके साथ लगा हुआ है। यहाँ 'काली' और 'लाल' मिर्च का विशेषण है।	**तत्पुरुष का लक्षण**– जिसमें पहला पद दूसरे पद के अर्थ को सीमित करता हो और दूसरा पद प्रधान हो, उसे तत्पुरुष समास कहते है। यथा—राजकुमार मगधराज
	द्वितीय अन्विति कर्मधारय समास	उसी तरह 'चन्द्रमुख' शब्द में भी 'मुख' उपमेय है और 'चन्द्र' उपमान है। तत्पश्चात् छात्रों के सहयोग से कर्मधारय समास का लक्षण श्याम-पट्ट पर लिखा जाएगा। एक पथिक का चित्र प्रस्तुत करते हुए शिक्षक छात्रों से पूछेगा कि इस चित्र में तुम क्या देखते हो ? छा०–एक पथिक के हाथ में लोटा और डोरी देखते हैं। शि०–लोटा देखते हैं कि डोरी देखते हैं ? छा०–लोटा-डोरी दोनों देखते हैं।	**कर्मधारय का लक्षण**— उपमान उपमेय अथवा विशेष्य विशेषण भाव में कर्मधारय समास होता है। यह तत्पुरुष का ही एक भेद है। जब तत्पुरुष समास में ही उपमान उपमेय अथवा विशेष्य विशेषण की प्रधानता हो जाती है तो उसे कर्मधारय समास कहते हैं। यथा नील-कमल

सोपान	विषय-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्याम-पट्ट कार्य
	द्वन्द्व समास	शि०—लोटा-डोरी मे किस पद की प्रधानता है ? छा०—दोनो पदों की प्रधानता है । तत्पश्चात् छात्रों की सहायता से द्वन्द्व समास का लक्षण एवं उदाहरण श्याम-पट्ट पर अंकित किया जायगा । तत्पश्चात् राम वनगमन-प्रसंग का चित्र प्रस्तुत करते हुए श्याम-पट्ट पर निम्नलिखित वाक्य लिखा जायगा— त्रिभुवन-स्वामी राम कहाँ जा रहें है ? छा०—जंगल जा रहे है । शि०—राम कहाँ के स्वामी हैं ? छा०—त्रिभुवन के स्वामी है । तत्पश्चात् शिक्षक बतायेगा कि यहाँ 'भवन' शब्द प्रधान है । शि०—त्रिभवन शब्द में पहला पद क्या है ?	द्वन्द्व का लक्षण— जिसमे दोनों पद प्रधान हो उसे द्वन्द्व समास कहते है । यथा—राजा-रानी, भाई-बहन
	द्विगु समास	छा०—पहला पद संख्यावाचक है । शिक्षक छात्रों की सहायता से बतायेगा कि जिसमें प्रथमपद संख्यावाचक हो और उत्तर-पद प्रधान हो, उसे द्विगु समास कहते हैं । तत्पश्चात् द्विगु समास का लक्षण एवं उदाहरण श्याम-पट्ट पर लिख दिया जाएगा ।	द्विगु का लक्षण— जिसमें प्रथम पद संख्यावाचक और उत्तर पद प्रधान हो, उसे द्विगु समास कहते हैं । यथा-त्रिभुवन पंचवटी

सोपान	विषय-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्याम-पट्ट कार्य
	तृतीय अन्विति	तत्पश्चात् वार्त्तालाप का क्रम जारी रखते हुए शिक्षक श्याम-पट्ट पर अधोलिखित वाक्य—मृगनयनी सीता दशमुख के द्वारा हरी गई—लिखकर पूछेगा कि इस वाक्य में कौन-कौन से सामासिक पद है ? छा०—मृगनयनी और दशमुख । शि०—मृगनयनी और दशमुख के अर्थ क्या है ? छा०—'मृग के समान आँखवाली' और 'दश सिरवाला' है । शि०—मृगनयनी और दशमुख इन दोनों शब्दों के विग्रह पर प्रकाश डालते हुए शिक्षक पूछेगा कि इन दोनों शब्दों मे किस पद की प्रधानता है ? छा०—किसी पद की नहीं ।	
	बहुव्रीहि समास	तत्पश्चत् छात्रों की सहायता से बहुव्रीहि समास का लक्षण एवं उदाहरण श्याम-पट्ट पर अंकित कर बहुव्रीहि समास की बारीकियों को समझाया जाएगा । तदनन्तर पंचवटी के चित्र की ओर संकेत कर शिक्षक निम्नलिखित वाक्य श्याम-पट्ट पर लिखेगा—लक्ष्मण प्रतिदिन पहरा देते हैं और राम-सीता की यथा शक्ति सेवा करते है । शि०—प्रस्तुत वाक्य में कौन-कौन सामासिक पद हैं ? छा०—यथाशक्ति और प्रतिदिन ।	बहुव्रीहि का लक्षण— जिसमें कोई पद प्रधान न हो और जो अपने पदों से भिन्न किसी संज्ञा का विशेषण हो, उसे बहुव्रीहि समास कहते हैं । यथा—दसमुख ।

सोपान	विषय-वस्तु	शिक्षण-विधि	श्याम-पट्ट कार्य
आत्मी-करण	अव्ययी-भाव समास	शि०—यथा और प्रति व्याकरण की दृष्टि से क्या है ? छा०—अव्यय है । शि०—इन पदों में कौन पद प्रधान है ? छा०—पहला पद प्रधान है । तत्पश्चात् छात्रों की सहायता से अव्ययीभाव समास का लक्षण एवं उदाहरण श्याम-पट्ट पर अंकित किया जाएगा । **प्रथम अभ्यास**—मैं छात्रों के समक्ष एक चार्ट उपस्थित करूँगा जिसमे कुछ वाक्य होंगे । प्रत्येक वाक्य मे एक-एक रेखांकित शब्द होगा । एक दूसरे चार्ट पर समासों के नाम लिखे होगे । रेखांकित शब्द जिस समास के उदाहरण होंगे उन्हीं के सामने उन समासों को अभ्यास के लिए छात्रों से लिखने के लिए कहा जाएगा । **द्वितीय अभ्यास**—एक-एक परीक्षण-पत्रक प्रत्येक छात्र को दिया जायेगा और पाँच मिनट के अन्दर उत्तर पूरा कर वापस करने को कहा जायगा पत्रकों को एकत्र कर अपने साथ लेता आऊँगा । **समास वृक्ष** आदि शिक्षण उपादान भी अपने साथ मै लिए रहूँगा जो लड़कों को दिखलाते हुए कहूँगा कि ऐसा मॉडल घर से बनाकर लाना ।	अव्ययीभाव का लक्षण—जिस समास में पहला पद अव्यय हो या कोई भी पद अव्यय न हो परन्तु समस्त पद क्रिया-विशेषण का काम करता हो, उसे अव्ययीभाव समास कहते है । यथा-प्रतिदिन, हाथोहाथ

परीक्षण-पत्रक

१—तत्पुरुष के लिए "त", कर्मधारय के लिए "क", बहुब्रीहि के लिए "ब", द्विगु के लिए "द्वि", द्वन्द्व के लिए "द्व" और अव्ययीभाव के लिए "अ" प्रत्येक सामासिक शब्द के सामने लिखा हुआ है। विग्रह के अनुसार जो समास ठीक जँचता हो, उस अक्षर को घेर दो। जैसे—कर्मधारय हो तो "क" को इस तरह (क) घेर दो।

१. मृगनयनी	त क ब द्वि द्व अ
२. कृशोदरी	त क ब द्वि द्व अ
३. लम्बोदर	त क ब द्वि द्व अ
४. लोटा-डोरी	त क ब द्वि द्व अ
५. राजपुत्र	त क ब द्वि द्व अ
६. कमलनयन	त क ब द्वि द्व अ
७. यथासाध्य	त क ब द्वि द्व अ
८ पंचवटी	त क ब द्वि द्व अ

अध्याय २३

हिन्दी शिक्षण की समस्यायें

अब तक इस पुस्तक में जो कुछ भी कहा गया है उसका मूलोद्देश्य यही है कि हिन्दी भाषा के शिक्षक को उन सभी बातों की जानकारी हो जाय जिनका वे अपने अध्यापनक्रम में सफलतापूर्वक उपयोग कर सकते हैं। इन वर्णित बातों के अतिरिक्त भी अनेक ऐसी बातें हैं जिनकी उपादेयता के लिये जिज्ञासु शिक्षक को अन्य विशद ग्रन्थों का सहारा लेना पड़ेगा। साथ ही अपनी योग्यता, अनुभव तथा लगन के आधार पर वे स्वयम् भी प्रयोग द्वारा कितनी ही महत्वपूर्ण बातों की उपादेयता प्रमाणित कर सकते हैं। अतएव हिन्दी भाषा के अनुभवी शिक्षक केवल इन्हें संकेत भर ग्रहण कर सकते हैं।

लेकिन साथ ही यह भी सत्य है कि शिक्षक को अपने कार्य सम्पादन क्षेत्र की उन कठिनाइयों और समस्याओं का भी अध्ययन आवश्यक है जिनसे एक ओर तो उन्हें अपनी भावी समस्याओं का पूर्व ज्ञान हो जायगा तथा दूसरी ओर वे उन्हें दूर करने की उन सभी उपयोगी विधियों की जानकारी भी प्राप्त कर सकेंगे। आशा है कि इस प्रकार उनके कार्यक्षेत्र में पर्याप्त मार्ग प्रदर्शन मिल सकता है। अस्तु प्रस्तुत अध्याय में इन्हीं समस्याओं का विवेचन अभीष्ट है।

यदि हम इन समस्याओं का विधिवत वर्गीकरण निम्न प्रकार करें तो वास्तविक स्थिति से सुगमतापूर्वक परिचय प्राप्त हो सकेगा।

अस्तु :

(क) शिक्षक की समस्यायें
(ख) विद्यार्थी की समस्यायें
(ग) प्रतिवेश की समस्यायें
(घ) वर्ग की समस्यायें
(च) परीक्षा की समस्यायें

(क) शिक्षक की समस्यायें :—हिन्दी भाषा के शिक्षण में प्रशिक्षित शिक्षकों का अभाव एक प्रमुख समस्या है। इसके कारण अपेक्षित सफलता नही मिल रही है। अप्रशिक्षित शिक्षक से तात्पर्य उन शिक्षकों से है जिन्होंने प्रशिक्षण महाविद्यालय में हिन्दी भाषा शिक्षण में विशेष प्रशिक्षण नही पाया है और फिर भी वे हिन्दी भाषा का शिक्षण कार्य कर रहे है। मातृभाषा होने के कारण यह भावना अब तक कार्य कर रही है कि हिन्दी क्षेत्रों में इसके शिक्षण में विशेष कठिनाई होने की कोई सम्भावना नहीं है। प्रशिक्षण महाविद्यालयो मे हिन्दी पद्धति के शिक्षण की व्यवस्था अभी हाल ही से हुयी है अतएव अप्रशिक्षित शिक्षको का अभाव स्वाभाविक ही है। हिन्दी मे विशेष योग्यता रखने (जैसे एम० ए० या आनर्स) वाले शिक्षको की भी बडी सख्या है लेकिन उनमें बहुतों को विधिवत प्रशिक्षण नही मिला है। अतएव यदि हम इस दृष्टि से देखें कि हिन्दी भाषा का शिक्षण एक विशेष कला-कौशल (Skill) की अपेक्षा रखता है तो निःसंदेह इस निष्कर्ष पर पहुँचेगें कि गहन प्रशिक्षण की नितान्त आवश्यकता है।

प्रशिक्षित शिक्षको में हिन्दी भाषा और साहित्य की ओर स्वाभाविक रूचि और वास्तविक प्रेम होना चाहिये। उन्हे हिन्दी भाषा के उत्तम, श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण ग्रथो—गद्य, पद्य आदि का अध्ययन करना चाहिए। वे अपने को सदा साहित्य के विभिन्न वादों (Isms) से परिचित रखा करें और इस प्रकार साहित्य की प्रगति से अद्यावधि सम्पर्क स्थापित रखें। इस तरह वे भाषा विकास के सिद्धान्तों, साहित्य की विभिन्न धाराओं तथा देश की विभिन्न परिस्थितियों का साहित्य पर पड़े हुये प्रभाव से अवगत रहेंगे।

हिन्दी शिक्षक को यह समझना चाहिये कि शिक्षण सम्बन्धी उसके सभी क्रियाशीलनों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध विद्यार्थी के मौखिक कार्य, वाचन, लेखन, अर्थ ग्रहण एवं समीक्षा से है। और इस प्रकार उसका कार्यक्षेत्र इतना महत्वपूर्ण और व्यापक है कि उसे विद्यार्थियों के चिन्तन (Thinking), को अधिक से अधिक उत्तम, अर्थपूर्ण और तथ्यपूर्ण बनाना चाहिये। विद्यालय के अध्ययन सम्बन्धी सभी क्रियाकलापों का मूलप्रेरणा विद्यार्थी की मातृभाषा हिन्दी है, अतएव इस दृष्टि से भी हिन्दी शिक्षक को अपनी योग्यता, प्रशिक्षण तथा अध्ययनशीलता के महत्वपूर्ण अंगों पर विचार करना चाहिये।

यदि हम हिन्दी भाषा को इस गौरवपूर्ण स्थान पर प्रतिष्ठित करते हैं और यह अनुभव करते हैं कि वह विद्यालय में पढ़ाये गये सभी विषयों की

मूल प्रेरणा ही है, तो निस्सन्देह हमे हिन्दी शिक्षक के गौरवमय स्थान को भी समझना पड़ेगा और तदनुकूल हमें उसके वेतन स्तर पर उचित ध्यान रखना पडेगा। यदि विज्ञान के युग मे वैज्ञानिकों एवं प्राविधिकों के वेतन-मान में सुधार लाया जा रहा है तो कोई कारण नहीं दिखाई पडता कि भाषा शिक्षण के शिक्षक को वह सुविधा प्राप्त न हो और वह उपेक्षित रहे।

विद्यालय में शिक्षको के क्रियाकलापों का पारस्परिक सामंजस्य और समायोजन नहीं होने से भी हिन्दी शिक्षरण को एक बडा व्यवधान का सामना करना पड़ रहा है। वस्तुस्थिति यह है कि अन्य विषयो के शिक्षक अपना कार्यक्षेत्र उस विषय से सम्बद्ध ज्ञान तक ही मानते है, अर्था् उनके विषय में हिन्दी भाषागत दोषों से कोई मतलब नही। उनके अनुसार हिन्दी भाषा के शिक्षण का पूरा दायित्व केवल हिन्दी के शिक्षक पर ही है। लेकिन इस धारणा को निर्मूल करने की परम आवश्यकता है। यदि सभी शिक्षक अपने विषयों में लड़कों की भाषा की शुद्धि अशुद्धि पर ध्यान नही देते, तो केवलमात्र हिन्दी का शिक्षक अपने कार्य मे सफल नही हो सकता। अत: सभी शिक्षकों को चाहिये कि अपने विषय के अध्यापन क्रम में भाषागत गुण दोषों की ओर पूर्णतः सतर्क रहें।

(ख) विद्यार्थी की समस्यायें :—अन्य शिक्षकों की तरह, हिन्दी शिक्षक को भी कई कोटियों के विद्यार्थियों के बीच काम करना पड़ता है। उनके साथ सामान्यत: तीक्ष्ण बुद्धि वाले और मन्दबुद्धि वाले विद्यार्थियों का सम्मिलित दल काम करता है। तीक्ष्ण बुद्धि वाले बालकों के पास काफी बुद्धि, स्मरणशक्ति, अर्थ ग्राह्यता गुण, तर्क-विवेचन की शक्ति, कल्पना आदि दैविक दान की तरह प्राप्त रहता है, अतएव ऐसे बालक शिक्षक के कार्य को सरल, सुबोध और सफल बना सकते हैं। मध्यम बुद्धि के लड़के शिक्षकों के सामने किसी प्रकार की कठिन समस्या के रूप में नही आते, उन्हें थोड़ा भी मार्ग प्रदर्शन कर देने से शिक्षक उन्हें अध्ययन का ओर प्रेरित कर सकता है और उनमें, अध्यवसाय के द्वारा, पर्याप्त प्रगति आ सकती है। लेकिन विद्यार्थियों का तीसरा वर्ग ऐसा है जो सदा ही शिक्षक का सरदर्द बना रहता है। यह उन मन्द बुद्धिवाले विद्यार्थियों का दल है जिनमें भाषा की दृष्टि से वाचन और लेखन की मन्दता पायी जाती है। शिक्षक की शिक्षरण-कला का वास्तविक कार्यक्षेत्र इन्हीं बालकों के बीच है जहाँ उन्हें अपनी ओर से काफी परिश्रम करना पड़ेगा।

वाचन और लेखन के सम्बन्ध में प्रर्याप्त विवेचन पिछले अध्यायों में यथास्थान किया जा चुका है, फिर भी प्रसंगगत विवरण यहाँ संक्षेप में दिया जा रहा है। ऐसे मन्द बालकों (backward childern) में प्राय: शीघ्रता से अक्षर लोप का शिकार, अशुद्ध उच्चारण, अर्थग्रहण की विवशता, वाचन गति का अभाव, धीरे-धीरे शब्दों और अक्षरो को तोड़कर पढ़ने की आदत, मौन-वाचन का अभ्यासाभाव, शब्द अन्धापन (word blindness) आदि पाये जाते है। शिक्षक के लिए निश्चय ही ये समस्यायें हैं।

वाचन की मन्दता:—वाचन की मन्दता के प्रमुख कारणों का इस प्रकार वर्णन किया जा सकता है:—

बालक का (क) शारीरिक दोष, (ख) मानसिक दोष तथा प्रातिवेशिक (environmental) दोष।

शारीरिक दोष:—बालक के शरीर में विकृति के कारण दृष्टि-दाष, श्रवण-दाष, तथा वाणी-दोष होता है। इसके साथ ही, उनके उचित अभ्यास और प्रशिक्षण के अभाव से भी वाचन-दोष पैदा होगा। शारीरिक दोष को दूर करने के लिए चिकित्सा की व्यवस्था करनी चाहिए तथा प्रशिक्षण से भी बहुत अंश में यह दोष दूर हो सकता है।

(ख) मानसिक दोष:—मानसिक असंतुलन (unbalance)। संवेगात्मक दोष, भय, चिन्ता, क्रोध आदि के कारण वाचन में मन्दता आती है। अतएव ऐसे लड़कों के मानसिक असंतुलन को दूर करना चाहिए। पढ़ने के समय भय, चिंता तथा क्रोध का वातावरण दूर रहना चाहिए। वाचन में कड़ा नियन्त्रण, व्यर्थ का आदेश, गलती पर शारीरिक दण्ड, प्रेम और सहानुभूति का अभाव आदि ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियाँ है जिन्हें दूर करके ही वाचन की मन्दता मिटाई जा सकती है।

(ग) प्रातिवेशिक दोष:—इसके अन्तर्गत बालक के घर का आर्थिक और सामाजिक स्तर, शैक्षिक स्तर, भोजन और आवास की व्यवस्था आदि कारण आते है। विद्यालय में शिक्षकों का व्यक्तिगत ध्यान और सम्पर्क का अभाव, शिक्षकों की कमी और उनका शीघ्रता से स्थानान्तरण, उत्तम शिक्षाविधियो के प्रयोग का अभाव आदि ऐसी परिस्थितियाँ हैं जिनसे बालकों का वाचन-दोष जल्द दूर नहीं हो सकता।

लेखन की मन्दता:—कुछ लड़कों में लिखाई की मन्दता भी पायी जाती जाती है जिनका मुख्य कारण अक्षर विन्यास की अशुद्धियाँ या असमर्थता, या

मन्दता, शब्द-भंडार की कमी, संवेगात्मक दोष आदि पाये जाते हैं। बहुत से बालकों में बाये हाथ से लिखने की आदत पड जाती है; लिखाई में अपेक्षित गति का अभाव भी पाया जाता है। इसके लिए लेखन, अक्षरविन्यास, रचना कार्य और मौखिक कार्य का अभ्यास कराना चाहिए।

हिन्दी शिक्षक को वाचन और लिखाई की मन्दतावाले बालको का सामना करना पड़ेगा। इस प्रकार की मन्दता को दूर करने के लिए शिक्षक को आधुनिक मनोविज्ञान और शिक्षाशास्त्र के निष्कर्षो और शोधों से लाभ उठाना चाहिये।

(ग) प्रतिवेश की समस्याएँ :—विद्यार्थी का प्रतिवेश उसका घर, साथी तथा विद्यालय है। भाषा सामाजिक संसर्ग का एक बहुमूल्य साधन है अतएव हिन्दी भाषा के शिक्षण में इस सामाजिक प्रतिवेश का स्थान अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है।

इस दिशा में पहली कठिनाई यह है कि हिन्दी शिक्षा का माध्यम भी है और उसकी मातृभाषा भी। मातृभाषा में इसके अन्तर्गत कई बोलियाँ है जो घरों, बाजारों, साथियों तथा अन्य सामाजिक स्थलों पर बोली जाती है। कुछ ही ऐसे स्थल हैं जहाँ विशुद्ध हिन्दी का व्यवहार देखा जाता है जैसे विद्यालय मे अध्यापन-क्रम में, सभाओं और गोष्ठिओं में तथा शिक्षित जन-समुदाय के बीच आदि। कभी-कभी तो अध्यापन-क्रम में और शिक्षित समुदाय के बीच बात-चीत के सिलसिले मे भी घरेलू बोली का व्यवहार पाया जाता है। अतएव निश्चित है कि बालक पर हिन्दी के इन दो रूपो—घरेलू और पुस्तकीय—का प्रत्यक्ष प्रभाव पडता है।

ऐसे प्रयोगों का फल यह होता है कि भाषागत उपलब्धियों में बालको में उच्चारण का दोष, उपयुक्त शब्दों का प्रयोगाभाव, मुहावरों का अनुचित प्रयोग व्याकरण (लिंग, बचन, क्रियापद आदि) के दोष पाये जाते हैं। देशज शब्दों का-प्रयोग अभ्यास जल्द दूर नही होता। बात-चीत के क्रम मे यहाँ तक कि लेखन में भी, वाक्यों का विकृत रूप प्रयुक्त होने लगता है।

इस प्रकार के दोष केवल उन्हीं उपायों से दूर हो सकते हैं जिनसे शिक्षक, शिक्षित जन समुदाय और पढा-लिखा परिवार विशुद्ध हिन्दी व्याकरण सम्मत हिन्दी का व्यवहार करने का अभ्यास करें। मौखिक कार्य में इस दिशा में पूरा ध्यान देकर यह दोष दूर किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त पुस्तकों के पढ़ने में रुचि, समाचारपत्रादि के नियमित वाचन तथा लिखित

अभिव्यक्तियों के अभ्यास से हिन्दी शिक्षक अपने कार्य क्षेत्र के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि तैयार कर सकते हैं।

(घ) वर्ग की समस्याएँ :—इस वर्ग में वे समस्याएँ उपस्थित होती हैं जिनका सम्बन्ध हिन्दी प्रयोगशाला या वर्गकक्ष (Classroom), तथा पाठ्य-पुस्तकों के साथ है।

हिन्दी भाषा की शिक्षण की सफलता इस बातप र निर्भर करती है कि उसके लिए विद्यालय में और वर्ग मे उचित वातावरण तैयार किया गया या नहीं। उचित वातावरण से तात्पर्य उन उत्ताम विधियों से ही नहीं है जिनका उपयोग एक अनुभवी और कुशल शिक्षक करता है। वरन उस विशिष्ट वातावरण से भी है जो हिन्दी भाषा की तरफ बालकों का ध्यान प्रेरित कर सकने की क्षमता रखता हो।

इसके लिए स्पष्टतः प्रथम आवश्यकता उस भौतिक वातावरण से है जिसका आयोजन हिन्दी शिक्षक सरलता के साथ कर सकता है। यदि स्थान उपलब्ध हों तो हिन्दी का एक विशेष और पृथक वर्ग कक्ष (Class room) होना चाहिए। माध्यमिक विद्यालयों मे विषयगत वर्ग कक्षा की व्यवस्था बहुत हीं उपयोगी और लाभप्रद प्रमाणित होगी।

हिन्दी के वर्ग कक्ष में हिन्दी के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि और अनुकूल वातावरण उपलब्ध करना शिक्षक का प्रथम कर्त्तव्य है। उसका वातावरण ऐसा हो, उसके विविध साधन और उपकरण ऐसे हों जिनके कारण वर्ग मे प्रवेश करते ही एक विशेष आनन्द—काव्यानन्द—की अनुभूति हो। इसके लिए दीवालों पर साहित्यकारों के रंगीन या सादे चित्र टाँगें जायें, उनकी रचनाओं से सम्बद्ध भावात्मक और कल्पनाप्रधान चित्र भी टाँगे जायें। प्राकृतिक दृश्यो तथा साहित्य के मर्मस्थलों के दृश्यों का प्रभावोत्पादक चित्र टाँगना बड़ा ही लाभप्रद होगा। अच्छी-अच्छी कविताएँ, कण्ठस्थ करने वाली पंक्तियाँ आदि भी चार्ट पर या दीवाल पर लिखी जायें। साथ ही अन्य भारतीय और विदेशो भापाओं और साहित्यों के साहित्यकारों का चित्र टाँगना चाहिए। प्रमुख कवियों और लेखको की कृतियों का भी मोटे-मोटे अक्षरों में चार्ट बनाकर टाँगना चाहिए। हिन्दी साहित्य का इतिहास भी लेखकों और कृतियों के नाम के साथ चार्ट पर दिखाये जा सकते है।

इस प्रकार का चार्ट दिखाने से किसी भी दर्शक को हिन्दी के क्रमबद्ध इतिहास, हिन्दी के प्रमुख साहित्यकारों और उनकी रचनाओं का स्पष्ट ज्ञान

हो जायगा। इनमें से बहुत सी सामग्री तो ऊँचे वर्ग के छात्र सुलेखन और चित्रांकन के कार्यक्रम मे तैयार कर सकते है और कुछ बाजार से खरीद कर लाये जा सकते हैं। अच्छी-अच्छी पत्रिकाओं की सूची भी टांगी जाय।

इनके अतिरिक्त हिन्दी-कक्ष में उन सभी साधनों को जुटा कर रखना चाहिए जिनका वर्णन हिन्दी-शिक्षण के सहायक साधन—श्रव्य, दृश्य और अन्य साधन—के अध्याय में किया जा चुका है। हिन्दी-कक्ष मे हिन्दी पुस्तकालय की व्यवस्था होनी चाहिए।

हिन्दी शिक्षण की सफलता के लिए उत्तम पुस्तकों की व्यवस्था आवश्यक है जिसका सम्यक् विवेचन पाठ्य पुस्तक के अध्ययन में किया जा चुका है।

(च) परीक्षा की समस्यायें:—शिक्षण की सम्पूर्ण जांचके लिए परीक्षा का आयोजन एक आवश्यक विधान माना गया है। वर्तमान पद्धति के अनुसार—(क) निबन्धात्मक परीक्षा (Essay type test), विषयनिष्ठ जाँच (objective test), मूल्याकन (assessment) व्यवस्था तथा अन्य मौखिक और लैखिक क्रियाशीलनों का आयोजन हुआ करता है। बुद्धि परीक्षा (Intelligence test), अभिरुचि जाँच (aptitude test), निदानात्मक परीक्षा (Diagnostic test), और उपलब्धि जाँच (Achievement test) का भी विधान स्वीकार किया गया है। परीक्षा प्रणाली में आवश्यक सुधार अपेक्षित है।*

निबन्धात्मक परीक्षा के सम्बन्ध में काफी विवाद है कि उन्हें हटा दिया जाय। इस विवादास्पद विषय मे न पड कर इतना बताना अभीष्ट है कि उसमें आवश्यक सुधार लाना चाहिए। प्रश्न ऐसे चुने जायें जो सरल, स्पष्ट तथा निश्चित उत्तर की अपेक्षा रखते हों। प्रश्नों का उद्देश्य यह हो कि वे विद्यार्थी की अभिव्यक्ति-सम्बन्धी योग्यता की जाँच कर सकें यथाभाव-कोष और भाषा-कोष तथा इनका समन्वय करने वाली शैली-व्यवस्था।

प्रारम्भिक कक्षाओं मे मौखिक जाँच पर बल देना चाहिए। माध्यमिक श्रेणियों में निबन्धात्मक परीक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। इनके अतिरिक्त सभी स्तरों पर विषयनिष्ठ जाँच का विधान हो। इनके लिए सत्यासत्य (True-False) जाँच, बहु विकल्प (Multiple choice test), प्रत्या-ह्वान जाँच (Recall test), युगलीकरण जाँच (Matching test),

---

* विशेष विवरण के लिए लेखक की शिक्षा सिद्धान्त प्रवेशिका नामक पुस्तक देखें।

आदि का उपयोग वांछनीय होगा। साथ ही दैनिक कार्यक्रम के लेखन सम्बन्धी और वाचन सम्बन्धी क्रियाशीलनों पर जोर दिया जाय। बालकों के शब्दभंडार, अर्थबोध, व्याकरण ज्ञान, अक्षर-विन्यास और पाठ्य पुस्तक की पाठ्य-सामग्री की जाँच के भी प्रश्न किये जायें।

वाह्य (External) और आभ्यंतर (Internal) परीक्षा की भी व्यवस्था आवश्यक है। आभ्यंतर परीक्षा में बालक के वर्ष भर की—मौखिक और लैखिक अभिव्यक्ति के क्रियाशीलन की जाँच होनी चाहिए। वाह्य परीक्षा में उसकी लैखिक और मौखिक अभिव्यक्ति की भी जाँच परमावश्यक है क्योकि, भाषा का वास्तविक उद्देश्य बालको में अभिव्यक्ति के इन दोनों भेदों की क्षमता उत्पन्न और विकसित करना है। अंक प्रदान करने में संख्या के स्थान पर संकेत देने का विधान भी चल पड़ा है।

परीक्षा के सम्बन्ध मे इतना ही समझना चाहिए कि "दक्षता की जाँच के रूप मे परीक्षाओ की आवश्यकता है। वे इस विचार के हैं कि उन परीक्षाओ —जिनमें भिन्न-भिन्न परीक्षकों द्वारा परीक्षण के पश्चात् समान(Indenti-cal) उपलब्धि ज्ञात होती है—के अतिरिक्त परम्परागत निबन्धात्मक परीक्षा भी रखी जानी चाहिए।" हिन्दी शिक्षक को इस मन्तव्य से पर्याप्त लाभ उठाना चाहिए।

यदि हिन्दा का शिक्षक अपने कार्य सम्पादन के क्रम में अपनी समस्याओं की ओर जागरूक रहेगा और उत्तमोत्तम विधियों को अपनायेगा तो निस्सन्देह अपने लक्ष्य की पूर्ति में वह शतप्रतिशत सफल होगा। प्रत्येक शिक्षक को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि राष्ट्रीय भावात्मक एकता के लिए हिन्दी के सफल शिक्षण से उत्तम अन्य कोई सेवा नही होगी।

"...examination as a test of efficiency are necessary. They are futher of opinion that in addition to those examinations which yield identical results when applied by different examiners (e. g. New Type or objective examination) the traditional "essay" examination should be preserved."—An Examination of Examinations, International Institute Examination Enquiry by Hartog and Rhodes, p 10.

अध्याय २४

अहिन्दी भाषियों के लिए हिन्दी-शिक्षण

अब तक हिन्दी शिक्षण की जिन समस्याओं का वर्णन किया गया है उनके अतिरिक्त, लेकिन अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण समस्या यह है कि अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में और अहिन्दी भाषियों के लिये हिन्दी-शिक्षण की व्यवस्था किस प्रकार की जाय। यह केवल स्थानीय या प्रादेशिक समस्या नही है, वरन् राष्ट्रीय पैमाने की समस्या है जिसका समाधान भी राष्ट्रीय स्तर पर निकालना चाहिये। वे समस्यायें इस प्रकार है :—

(क) राष्ट्रभाषा हिन्दी का स्वरूप;

(ख) राष्ट्रभाषा की पाठ्य पुस्तकें तथा

(ग) राष्ट्रभाषा की शिक्षण-विधि।

(क) राष्ट्रभाषा हिन्दी का स्वरूप :—आज हिन्दी हमारे सामने तीन रूपोंमें आयी है। यह एक बड़े जन-समुदाय की मातृभाषा है। इन क्षेत्रो में यह प्राथमिक, माध्यमिक, महाविद्यालीय और विश्वविद्यालीय स्तर पर शिक्षा का माध्यम है। हिन्दी भाषी क्षेत्र में यह राजभाषा के पद पर आसीन है जहाँ इसी के माध्यम से शासन सम्बन्धी और अन्तराजकीय विचार विनिमय होता है। यह भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा है। अतएव इसे आगे बढ़ाने के लिये प्रत्येक भारतवासी को प्रयत्नशील रहना चाहिए। अहिन्दी क्षेत्रों में इसे राष्ट्रभाषा के रूप मे सीखने का व्यापक महत्व है।

इस सम्बन्ध में एक न्यायोचित प्रश्न है कि क्या हिन्दी का वर्तमान स्वरूप राष्ट्रभाषा के प्रचार और विकास के लिए उचित पृष्ठभूमि या वातावरण उपलब्ध कर रहा है? क्या उसका स्वरूप ऐसा हो पाया है जिसे अहिन्दी भाषी सरलता, सुगमता और आसानी से ग्रहण कर सकें, पढ़ लिख सकें, समझ सकें और उसे विचार विनिमय का प्रमुख माध्यम बना सकें? क्या राष्ट्रभाषा हिन्दी आज अधिक बोझिल, दुरुह और क्लिष्ट नही बनती जा रही है। हिन्दी पर अहिन्दी भाषियों का यह आरोप शतप्रतिशत निराधार नही है। हमे यह स्वीकार करना चाहिये। हिन्दी की क्लिष्टता आज कई कारणों से स्पष्ट है।

(i) हिन्दी के नये शब्दों के निर्माण में संस्कृत को आधार मान कर भी उसमें सरलता और सुगमता का अपेक्षा क्लिष्टता और कठिनता का पुट देने की ओर विशेष झुकाव है।

(ii) उन विदेशी शब्दों को भी, जो प्रयोग परम्परा से सार्वजनिक तौर से स्वीकार कर लिए गये हैं, अपनाया नही जा रहा है। इसके विपरीत उनके लिये भी क्लिष्ट पर्यायवाची शब्द बनाये जा रहे हैं। यह अनुदारता हिन्दी के समुचित विकास के लिये न्यायो।चत नही कही जा सकती।

(iii) हिन्दी का व्याकरण युगानुसार सरल, सुग्राह्य और सुगम नही बनाया जा रहा है। हिन्दी का लिंग विधान इतना क्लिष्ट है कि वह संज्ञा और सर्वनाम के अतिरिक्त विशेषण, क्रियापद आदि में भी व्याप्त है। इस क्लिष्टता का फल यह है कि अहिन्दी भाषियों को अपार कठिनाइ होती है और हिन्दी भाषा के सीखने में यह एक बड़ा व्यवधान है।

अतएव आज की प्रमुख समस्या यह है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी का वास्तविक स्वरूप सावधानी से निश्चित किया जाय। उसके व्याकरण को भी अधिक सरल बनाने की आवश्यकता है। राष्ट्रभाषा का मूलाधार तो संस्कृत को मानना ही पड़ेगा, और यह इस प्रकार सस्कृत मूलक भारतीय भाषाओं के साथ अपना परिवारिक सम्बन्ध भी स्पष्ट रूप से अक्षुण्ण बनाये रख सकती है। दक्षिण भारत की भाषाओं में विशेषत: तमिल, तेलुगु, कनाडी और मलयालम में तामिल साहित्य, संस्कृत साहित्य के आधार पर बना है और उसके भावों से भरा पड़ा है। मराठी का आधार भी संस्कृत ही है। अतएव हिन्दी का इन सभी भाषाओं से बहुत नजदीक सम्बन्ध है औरउनसे पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित होना निश्चित है। "इसमें (हिन्दी में) बंगला का वैभव है, गुजराती का संजीवन है, मराठी का चूहल है, कनाड़ी की मधुरता है और संस्कृत का अजस्र स्त्रोत है। प्राकृत ने इसका श्रृङ्गार किया है ओर उर्दू ने इसके हाथ मेंहदी लगाई है। यह आर्यो के स्वर मे गाती है और अनार्यो की ताल में नाचती है। हिन्दी राष्ट्रभाषा है"[1]

लेकिन यह देखा जा रहा है कि राष्ट्रभाषा के प्रचार में गलत रास्ता अपनाया जा रहा है। शब्दों के निर्माण में एक सर्वसुलभ सिद्धान्त न

१. हिमालय हिन्दी सदन, दार्जिलिंग के चौथे वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर श्री गोपाल सिंह नेपाली का पढ़ा गया लेख (१५,६, १९३५)

अपना कर, क्लिष्ट सिद्धान्त अपनाया जाता है । इस प्रकार, हिन्दी जितना ही संस्कृत के निकट जाने का दावा कर रही है वह उतनी ही तेजी से आधुनिक भारतीय भाषाओं से अपना सम्बन्ध तोड़ती हुई दूर होती जा रही है । हिन्दी की सफलता इसी बात पर निर्भर है कि वह व्यापक हो और सबो के लिये सुलभ बनायी जाय ।

इस दिशा में हिन्दी के तद्भव शब्द, चलते फिरते सर्वसम्मत विदेशी शब्दों और मुहावरों को ज्यों का त्यों अपना लेना चाहिये । संस्कृत के तत्सम शब्दों को किसी सीमा तक ही अपनाना चाहिये नये-नये शब्दों के निर्माण में दुरूहता की आयोग सरलता का लक्ष्य रखा जाय ।

हिन्दी की सरलता से तात्पर्य यह है कि वह बोलचाल की भाषा के रूप में हमारे सामने आये । भाषा के विकास की यह सबसे बड़ी कसौटी है । आज स्वयंम संस्कृत को सरल बनाने का प्रबल आन्दोलन है । यह कितना हास्यास्पद है कि संस्कृत तो सरल बने और हिन्दी कठिन और जटिल । आज हिन्दी को जबरदस्ती संस्कृतमय बनाने का अनुचित उद्योग हो रहा है । हिन्दी के हितैषियों को यह तथ्य स्वीकार करना चाहिए । हिन्दी के व्याकरण को भी अधिक सरल, और संशोधित बनाया जाय । उसके लिंग विधान में भी अविलम्ब सुधार लाना चाहिए । या तो लिग विधान अन्य भाषाओं की तरह बनाया जाय या लिंग का विधान पूर्णतः स्पष्ट किया जाय ।

यह सत्य है कि आज की हिन्दी के वास्तविक स्वरूप को निश्चित करना तो भाषाविदों और साहित्यकारों का गुरूतर कार्य है । लेकिन साथ ही यह भी सत्य है कि शिक्षकों का बड़ा समुदाय भी इस काम में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकते है । लक्ष्य यह है कि अहिंदी क्षेत्रों मे हिन्दी के व्यापक प्रचार के लिए और उसे उन क्षेत्रों में लोक प्रिय बनाने के लिए सम्मिलित प्रयास करना आवश्यक है ।

(ख) **हिन्दी की पाठ्य पुस्तकें** :—अहिन्दी भाषियों के लिए किस प्रकार की पाठ्य पुस्तकेंरखी जायें यह भी हमारे शिक्षाशास्त्रियों और शिक्षकों के लिए एक विचारणीय प्रश्न है । इस सम्बन्ध में हमारा विनम्र सुझाव है कि पाठ्य-पुस्तकों का स्तर हिन्दी भाषियों की पुस्तकों की अपेक्षा कुछ सरल किया जाना चाहिए । पाठ्यपुस्तकों में ऐसे विषय रखें जायँ जो स्थानीय और प्रादेशिक-वातावरण की विशेषताओं को मुखरित कर सकें । ग्रामगीत, लोककथा इतिहास, भूगोल, देशप्रेम के गीत, निबन्ध, आत्मकथा, साहित्यकारों से परिचय

महान पुरुषों का जीवन आदि को स्थान मिलना चाहिए। सारांश यह कि भौतिक, सामाजिक और उद्योग सम्बन्धी प्रतिवेश से पाठ सम्मिलित किये जाएं।

(ग) शिक्षण विधि :—हिन्दी शिक्षण के लिए इस समस्या का यही अंग अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि हम अहिन्दी भाषियों को किस तरह हिन्दी पढाएँ। अहिन्दी भाषियों के लिए हिन्दी एक विदेशी भाषा के रूप में सामने आती है। अतएव एक कुशल शिक्षक उन सभी विधियों को भी अपनाता है जो विदेशी भाषाओं के पढाने मे प्रयुक्त होती हैं।

प्रत्यक्ष-विधि (Direct Method) :—विदेशी भाषा के शिक्षण में प्रत्यक्ष-विधि की उपयोगितासर्व मान्य है। प्रश्नोत्तर और वार्त्तालाप के माध्यम से बालकों को लैखिक की अपेक्षा मौखिक अभिव्यक्ति के विकास के लिए अभ्यास कराया जाता है। इसके लिए बालक की मातृभाषा का भी न्याययुक्त और प्रवीणता के साथ प्रयोग वाछनीय माना गया है। इसके अन्तर्गत स्थानीय प्रतिवेश को प्रमुख स्थान मिलना चाहिए और बालक के दैनिक जीवन से सम्बद्ध पाठ लिए जायें। इस विधि से बालकों के मस्तिष्क पर शब्दों और वाक्यों की छाप पड़ जाती है। उन्हें हिन्दी मे ही भाव व्यक्त करने का पर्याप्त अवसर मिलना चाहिए। उच्चारण आदि के द्वारा हिन्दी का ठोस-ज्ञान होगा।

अनुवाद-विधि (Translation Method) :—हिन्दी के शिक्षण में अनुवाद विधि भी उपयोगी प्रमाणित होगी। इसके अनुसार बालक के दैनिक जीवन के क्रियाशीलनों की इकाई ली जाय और उनका हिन्दी में अनुवाद करके पढ़ाया जाय। यहाँ लैखिक और मौखिक कार्य साथ-साथ कराया जायगा। मातृभाषा मे हिन्दी के शब्दों और वाक्यों का अनुवाद करके समझने में आसानी होगी। इसके द्वारा बालक को दोनों भाषाओं का ज्ञान साथ-साथ होता है और तुलनात्मक ढंग से हिन्दी के शब्दों और मुहाविरों को समझने में आसानी होती है। प्रारम्भिक कक्षाओं मे शब्दानुवाद और ऊपर की कक्षाओं में भावानुवाद की ही प्रणाली अपनायी जायगी।

रचना-विधि (Structural Method) भाषा सीखने की विधियों में रचना-विधि आधुनिकतम विधि है और इसका सफलता पूर्वक प्रयोग विदेशी भाषाओं के सीखने मे किया जा रहा है। इसके अन्तर्गत वाक्य रचना के

आधार पर पाठ दिया जाता हैं। अंग्रेजी के लिए तो एक संस्थान और प्रशिक्षण केन्द्र इस देश में खोले जा रहे है। हिन्दी के लिए भी ऐसी संस्थाओं की स्थापना आवश्यक है। अंग्रेजी मे रचना विधि के आधार पर कई पाठ्यपुस्तकें भी लिखी जा रही है। हिन्दी के लिए भी ऐसी पुस्तकों का लेखन और प्रकाशन आवश्यक है। रचना विधि में समान रचना वाले वाक्यों के अभ्यास पर विशेष बल दिया जाता है। इस प्रकार बालकों को पूरा अभ्यास कराया जाता है। उच्चारण सभी भाषाओं के सफल शिक्षण का मूल सोपान है। रचना-विधि से उच्चारण, बोलने की शैली, शब्दों की आवृत्ति आदि का अभ्यास अपेक्षित है। इनका आधार उपयोगिता, पाठन सरलता, आवतन और विस्तार होता है। पाठ सरल से कठिन की ओर जाता है। चित्रों का प्रयोग बहुलता के साथ किया जाता है। लेखन और पाठन कार्य साथ-साथ चलता है। लिग्वाफोन आदि साधनों का उपयोग लाभदायक है। अहिन्दी भाषियों के लिए रचना-विधि एक उपयोगी विधि है।

अतएव स्पष्ट है कि अहिन्दी क्षत्रों में हिन्दी को लोकप्रिय बनाने के लिए हमारे शिक्षा शास्त्रियों, शिक्षकों और वैयाकरणों का ध्यान अपेक्षित है। इसके लिये यह भी है कि देश की सभो भाषाओं के साहित्यकारों की सम्मिलित गोष्टी बुलायी जाय। इस प्रकार का एक स्थायी परिषद भी संगठित किया जाना चाहिये। ऐसे परिषद से यह लाभ होगा कि सभी भाषाओं के हार्दिक सहयोग से हिन्दी अधिक लोकप्रिय बनेगी और स्वयम् हिन्दी से अन्य भाषाएँ भी उन्नत और अलंकृत हो सकेंगी। "वास्तव में सरकार ने पिछले तीन वर्षों में हिन्दा से अन्य भाषाओं की उन्नति में काफी सहायता दी है और इसका अच्छा असर भी हुआ है।" इस प्रकार की साहित्यिक परम्परा की समानता राष्ट्रीय एकता का शक्तिशाली साधन है। उसी प्रकार देश के सभी क्षेत्रों के हिन्दी-शिक्षकों की भी समय पर बैठकें बुलायी जायें जहाँ हिन्दो शिक्षण पर व्यापक विचार किया जा सकता है और उन्नत विधियां अपनायी जा सकती हैं। ऐसे सम्पर्क और सहयोग से हिन्दी की अभूतपूर्वसेवा होगी।

यदि लगन और उत्साह से काम लिया गया तो आज जिस भावात्मक एकता की समस्या के समाधान के निमित्त हमारे नेतागण और समाजशास्त्री चिन्तित है उसकी पूर्त्ति हमारी शिक्षण-संस्थाओं के द्वारा आसानी से हो सकती है। "क्योकि राष्ट्रीय चरित्र निर्माण में भाषा की अपेक्षा अन्य् कोई साधन है सक्षम और शक्तिशाली नहीं है।"

परिशिष्ट (क)

Syllabus for Teachers Training Colleges in Bihar

Methods of Teaching

Modern Indian Lanugage

Languageiits nature and ehief characteristic; Importance of the teaching of the mother-tongue; Modern devolopments in the art of teaching the mother-tongue; Oral work-speech writing. Reading its mechanism-Reading for intensive study and reading for pleasure; written work-Reproduction after oral composition, composition excercises, Free composition, creative writing; the teaching of grammar-structural aspect of the language; the teaching of Poetry, Prose, Essay, Short story and Drama Appreciation.

Syllabus for Junior and Senior Training Schools in Bihar

Methodology of teaching

Method of teaching mother tongue :—

Functions of language teaching; reasons for teaching mother tongue; foundation of language teaching-different aspects of oral self-expression, language teaching in junior grades, teaching of silent reading and reading aloud. Correction of provincialisation, Poetry teaching, Story telling, teaching of spelling, creative writing, teaching of handwriting' recitation, Functions of composition, corrections of excercises in Composition. Principles ot teaching applied grammar.

———
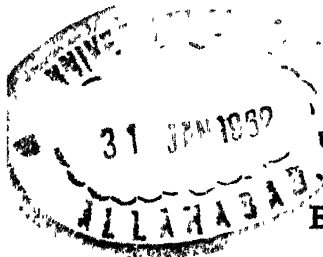
परिशिष्ट (ख)

BIBLIOGRAPHY

१. अभिनव भाषा विज्ञान—आचार्य नरेन्द्र नाथ
२. हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास—हरिऔध जी
३. भारतीय शिक्षा का इतिहास और आधुनिक शिक्षा-शास्त्री
—मनमोहन सहगल और हेमराज निर्मम
४. भारतीय ज्योतिष—सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश
५. भारत की भाषाएँ और भाषा सम्बन्धी समस्यायें—सुनीति कुमार चाटुर्ज्या
६. आजादी का १२वाँ वर्ष—अखिल भारतीय कांग्रेस का प्रकाशन
७. हिन्दी उर्दू और हिन्दुस्तानी—पद्म सिंह शर्मा
८. प्राचीन भारतीय लिपिमाला—गौ० ही० ओझा
९. हिन्दी भाषा और साहित्य—श्यामसुन्दर दास
१०. तुलनात्मक भाषा विज्ञान—डा० मंगलदेव शास्त्री
११. प्राचीन शिक्षण विधियाँ और हरबार्ट की पंचपदी शिक्षण-विधि
—रामखेलावन चौधरी
१२. भाषा शिक्षा की रूपरेखा—ल० ना० गुप्त
१३. बुनियादी शिक्षा में समवाय—श्री द्वारिका सिंह
१४. नाट्य पद्धति द्वारा शिक्षण—चन्द्रशेखर भट्ट
१५. मातृभाषा और उसकी शिक्षण-विधि—सोहनलाल शर्मा और शास्त्री
१६. हिन्दी शिक्षण-विधि—रघुनाथ सफाया
१७. हिन्दी भाषा का इतिहास—धीरेन्द्र वर्मा
१८. भाषा कैसे पढ़ावें—योगेन्द्र नाथ शर्मा
१९. भाषा-शिक्षण-विधि—उमाशंकर श्रीवास्तव
२०. भाषा-शिक्षण-पद्धति—लज्जाशंकर झा

परिशिष्ट (ग)

BIBLIOGRAPHY

1. A students, History of Education in India (Naik & Nurullah)
2. History of the Indian National Congress. (Pattabhi Sitaramaiya)
3. Medium of Instruction—M. K. Gandhi
4. All men are Brothers—M.K. Gandhi (UNESCO)
5. The story of my Experiment with Truth. —M. K. Gandhi.
6. The Teaching of Reading. —E. W. Menzel
7. The Educational Philosophy of Mahatma Gandhi M. S. Patel.
8. The Technique of Correlation—A. B. Solanki
9. The Teaching of English in India —Prof. S. N. Sahay.
10. Suggestions for the Teaching of Mother Tongue in India (W M. Ryburn)
11. Teaching Poetry (O U P)
12. Teaching the Mother Tongue in Secondary Schools. P. Gurrey
13. Expression in Speech & Writing. —E. A. G. Lamborn
14. Teaching of English in England —Board of Education, London
15. Suggestions for teaching of English in India.
16. The Teaching of Primary Reading. —E. W. Dolch

17. The improvement of Reading. A. I. Gates
18. The Applied Psychology of Reading.
—F. D. Brooks
19. Remedial cases in Reading--W. S. Gray
20. How to Read Better and Faster--N. Lewis
21. Learning to Read,—A. F. Mackenzie
22. Children who cannot Read--M. Monroe
23. Silent Reading,—J. A. O. Brien
24. Silent & Oral Reading—C. R. Stone
25. One Hundred ways of Teaching Silent Reading
--N. B. Smith
26. Hindi Through English--S. N. Sinha
27. Mass Media ond Education, Edited by,
—N. B. Henry
28. Audio-visual Aids—Edgar Dale
29. Education in India--To-day and To-morrow
—S. N. Mukherjee
30. Comparative Education —N. Hans

Report

1. Calcutta University Commission Report.
2. Indian Education Commission Report
3. Hartog committee Report
4. University Education Commission Report
5. Secondary Education Commission Report
6. सरकारी भाषा आयोग का प्रतिवेदन
7. An Examination of Fxaminations.
--Hartog & Rhodes

Periodicals

1. Young India
2. Hind Swarrajya
3. Hārijan